श्रीः ।

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत

ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्तदर्शन.

अर्थात्

उत्तरमीमांसा.

भिक्षुकृत—सूत्रभावार्थप्रकाशिकानामक

भाषाटीकासहित.

सुमेरपुरवासी

श्रीरघुवंशशर्मशास्त्रिद्वारा संशोधित.

वही

हरिप्रसाद भगीरथजीने

मुम्बईमें

"निर्णयसागर" छापखानेमें बा. रा. के द्वारा छापके प्रसिद्ध किया.

आवृत्ति दूसरी.

संवत् १९६७—सन १९१०.

सन १८६७ के २५ वें ऐक्टके अनुसार रजिस्टरी कराके इसके समस्त अधिकार प्रकाशकने स्वाधीन रक्खे हैं.

भूमिका.

इस असार संसारमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक जो चार पदार्थ हैं उन सबमें मोक्षही सर्वोत्तम है; क्योंकि आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक नामक त्रिविध तापोंकी निवृत्तिपूर्वक निरतिशयानन्दरूपात्मक नित्य तथा अनावृत्तिरूप पदार्थको मोक्ष कहते हैं. परंतु देह व इन्द्रियादिकोंविषे अहंता, ममतारूप अभिनिवेश होनेके कारण कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक अनात्म धर्मोंको जो आत्माके धर्म मानते हैं तथा इसीप्रकारके अनेक कुतर्कोंसे जिनका चित्त व्यग्र होरहा है ऐसे पुरुषोंको मोक्षलाभ होना असंभवही है, इसमें किसीप्रकारका संदेह नहीं है. किं बहुना, ऐसे पुरुषोंको तर्कचतुर, श्रुत्यर्थविवेचक सद्गुरुकी शरण गये विना उपनिषत्सहस्रभी यथावत् आत्मतत्त्वका बोध नहीं करासकते; अतएव, ऐसे पामर पुरुषोंका उद्धार करनेकी इच्छासे परम कारुणिक महर्षि भगवान् वेदव्यास मुनिने अद्वैतब्रह्मात्मक श्रुतियोंके अर्थका यथार्थ निर्णय करनेके लिये अनेक न्यायोपबृंहित सूत्रोंसे अध्यायचतुष्टयात्मक **"उत्तरमीमांसा"** अर्थात् **"वेदान्तदर्शन"** अथवा **"ब्रह्मसूत्र"** नामक यह प्रबन्ध रचा. व्यासवाणी **"लघ्वी गुर्वर्थगह्वरा"** अर्थात् अल्पाक्षरा, अर्थबहुला होनेके कारण दुर्विज्ञेय है, ऐसा जानकर भगवत्पाद **श्रीशंकराचार्य** स्वामीने अपनी कुशाग्रबुद्धिसे उस (वेदान्तदर्शन)पर **"शारीरकभाष्य"** बनाया. वह अत्यन्त गूढगम्भीरार्थ होनेके कारण उसके द्वाराभी सर्व साधारण विद्वानोंको यथावत् अर्थ समझनेमें बड़ी कठिनता पड़ती थी, यह सोच विचारके एक भिक्षुने शांकरभाष्यकी छायासे इस (वेदान्तदर्शन)पर सरल हिन्दीभाषामें **"सूत्रभावार्थप्रकाशिका"** नामक यह सरल और सुविस्तृत भाषाटीका बनाकर हमारे समीप भेजी. हमने इस टीकाको उत्तम तथा लोकोपकारिणी जानकर हमारे मित्र विद्वद्वर्य, षड्दर्शनप्रविष्ट, सुमेरपुरनिवासी, **'आवसथी'** आस्पदधारी श्रीपण्डित—**देवकीनन्दनात्मज शास्त्रिरघुवंशशर्मा**द्वारा मूलके साथ यथास्थान संयुक्त कराकर अनुवादकके उत्कट अनुरोधसे भाषाके रूपमें अपेक्षित सुधार न करते हुए केवल तात्पर्यपर लक्ष्य देकर मूल व टीका दोनों बड़े परिश्रमसे शुद्ध कराके इस ग्रन्थको ऐसे उत्तम कागज और सुवाच्य टाइपमें छापके प्रसिद्ध किया है. इसमें प्रत्येक अध्यायोंके प्रत्येक पादमें कितने व कौन २ से अधिकरणसूत्र हैं तथा कितने व कौन २ से गुणसूत्र हैं और उनमें प्रसंग क्या है, यह जाननेके लिये प्रत्येक अध्यायके प्रत्येक पादके आरंभमें अधिकरणसूत्र, गुणसूत्र तथा उन सूत्रोंका प्रसंग सूचित करनेवाली

अनुक्रमणिकाभी लगायी गयी है, तथा पाठकोंको सुगमता होनेके लिये औरभी एक सुलभता की गयी है कि अकारादिवर्णसमाम्नायके क्रमसे **"सूत्रावलोकनप्रकार"** अर्थात् सूत्रसूचीभी इस ग्रंथके पृष्ठभागमें ऐसी सुंदर लगायी गयी है कि जिससे जो सूत्र देखना हो उसकी आदिका अक्षर मालूम होनेसे वह तत्कालही मिल जाता है. ढूंढ़नेका कुछभी परिश्रम नहीं करना पड़ता. ऐसे २ अनूठे प्रकारोंसे संयुक्त होनेके कारण सर्व साधारणको इस ग्रंथके गूढतत्त्वका समझना अधिकांशमें सुलभ होगया है, ऐसा कहनेमें कोई संदेह नहीं है. **अद्वैतकौस्तुभ व वेदांतपरिभाषा आदि** वेदांतके अनेक प्रकरणग्रंथोंमें ग्रंथकारोंने जो सूत्रप्रकरण लिखे हैं उनमें अनेक सूत्रोंके अर्थ नहीं लिखे हैं और सूत्रोंका अर्थ टीका विना ठीक ठीक होता नहीं. इसलिये यह **सूत्रभावार्थप्रकाशिका** टीका जिस पठन पठनवाले महात्माके पास होगी वह प्रयत्न विनाही सूत्रका अर्थ कर लेगा. अब हम इस विषयमें विशेष लिखना नहीं चाहते; क्योंकि विद्वज्जन स्वयम् अनुभव कर लेंगे.

इस ग्रंथपर और भी भाषाटीकायें छपी हैं परंतु उन टीकाओंसे पाठकोंको हानिके सिवाय लाभ किसीप्रकारका नहीं है; क्योंकि उनकी यह गति है कि मूल तो आम कहता है, टीका इमली कहती है. महाशयो ! आप स्वयं विचार कर देखो कि ऐसी टीकाओंके अवलोकनसे पाठकोंको हानिके सिवाय क्या कभी किसी प्रकारका लाभभी हो सकता है ? कदापि नहीं. हमारी समझमें तो ऐसी टीकाओंका देखना एक अथाह श्रमके समुद्रमें डूबना है. अतएव, सदसद्विवेकी महाशयोंसे हमारी यही प्रार्थना है कि हमारी इस टीकाको तथा श्रमजनक अपर टीकाओंको मिलाके देखें और भलाई बुराईको समझें तथा सुबोधदायिनी हमारी टीकाका आद्योपान्त अवलोकन कर अपना लाभ उठावें और हमारे अपार परिश्रमको सफल करें.

पुनः सहृदय महाशयोंसे सविनय निवेदन यह है कि दृष्टिदोषसे रहे हुए प्रमादोंको सदयहृदय होकर क्षमा करें.

विद्वद्गुणग्राही

हरिप्रसाद भगीरथजी.

कालकादेवीरोड, रामवाड़ी—मुंबई.

द्वितीयावृत्तिविषयक विज्ञप्ति.

दार्शनिक विषय परिपक्व विचारशून्य विषयी जनोंको तत्काल अपने जालमें फँसानेवाले आपातरमणीय अर्थात् आरंभमधुर और परिणाममें विषमय विषयोंकी कामिन्यादि सामग्रीसे संगठित शृंगारादि कल्पित रसोंसे रहित होनेके कारण साधारण जनोंको स्वभावहीसे तादृश प्रियकर नहीं होता; इसीसे प्रायः दर्शनग्रन्थ प्रकाशित ही नहीं होते. यदि भाग्यसंयोगसे कभी एकाध प्रकाशित हुआ भी तो ग्राहकोंके अभावसे पड़े २ सड़नेके सिवाय दूसरा आविष्करण होनेकी नौबत नहीं आती. परंतु परम कृपालु परमेश्वर और गुणग्राही पाठकोंकी असाधारण कृपासे इस भाषानुवाद—समलंकृत "ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्तदर्शन" की सहस्रों प्रतियां बातकी बातमें बिककर इसकी द्वितीयावृत्ति प्रकाशित होनेका यह शुभ अवसर उपस्थित हुआ है, इसके लिये प्रकाशक सर्वशक्तिमान् परमात्मा और अपने अनुग्राहक ग्राहकोंको अनेकशः धन्यवाद देते हुए उनका सदाके लिये अत्यंत उपकृत होकर, सदैव इसी प्रकार कृपा करनेकी सबहुमान प्रार्थना करता है.

प्रथम प्रयत्न होनेके कारण अथवा मनुष्य-स्वभावसिद्ध प्रमादि अन्यान्य कारणोंसे प्रथमावृत्तिमें जो २ दोष रहगये थे वे तो सब इस आवृत्तिमें बड़ी सावधानीके साथ बहुतही उत्तम रीतिसे सुधारे ही गये हैं, किन्तु और भी अधिकांश सुधार करनेके साथ २ कई नये २ ऐसे उपयुक्त विषय युक्त किये गये हैं कि जिनसे अब इसकी सुन्दरतामें पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक अधिकता होगयी है; इससे विचारशील वाचक महाशय इसपर पूर्वके समानही अथवा अबकी बार किसी अंशमें उससे भी कुछ अधिक प्रेमभाव प्रकट कर प्रकाशकके और मेरे गुरुतर परिश्रमको सफल करते हुए हम लोगोंको प्रबल प्रोत्साहन देनेमें अपनी अनुपम उदारताका पूर्ण परिचय दिये विना न रहेंगे ऐसा हमको दृढ विश्वास है. उपसंहारमें सारासारविचारचतुर उदारमना महाशयोंसे बारबार यही प्रार्थना है कि यद्यपि अबकी बार बहुत सुधार किया गया है तो भी मनुष्यस्वभावानुसार यदि फिर भी इसमें किसी प्रकारका विकार रहगया हो तो क्षमा करनेकी कृपा करें.

सुमेरपुर-उन्नाव,
व. नि. बम्बई.

शास्त्री रघुवंशशर्मा आवसथी.

अथ सूत्रावलोकनप्रकारः प्रारभ्यते ।

पृष्ठाङ्काः । सूत्राणि ।

(अ)

१ अत्र तच्छब्दं विहाय "साभाव्यापत्तिः" इति पाठो दृश्यते पुस्तकान्तरे । तेन द्रष्टृसौकर्याय सकारक्रमेऽपि "साभाव्यापत्तिः" इत्येतल्लिखित्वैवेदमेव सूत्रं पुनर्न्यस्तम् । तत्सकारादिपाठस्फूर्तिमता सकारक्रमेऽवलोकनीयम् ।

इति सूत्रावलोकनप्रकारः समाप्तः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीतानि

ब्रह्मसूत्राणि ।

भावार्थप्रकाशिकाभाषाटीकासहितानि ।

तत्र प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः १ ।

टीकाकारकृत मङ्गलाचरण और उपोद्धात ।

दोहा—तातपर्य सब वेदका, जिसमैं कहें महान् ॥
हरकर पुनः विरोधको, सोई कीन विधान ॥ १ ॥
जिसे अर्थ पुनि कहे हैं, साधन बहुत प्रकार ॥
दोप्रकार फलरूप जो, बहुविध ताहि जुहार ॥ २ ॥

इस ग्रंथके चार अध्याय हैं. तहां प्रथम अध्यायमें सर्व वेदोंका ब्रह्मविषे तात्पर्य सिद्ध किया है. दूसरेमैं सर्व वादियोंकी शंकाको दूर करके, सर्व वेदोंका ब्रह्ममेंही तात्पर्य सिद्ध किया है. तीसरेमें साधनोंका विचार है. चतुर्थमें दो प्रकारके फलका विचार है. तिन चारों अध्यायोंके चार चार पाद हैं.

दोहा—द्विविध लिंग हैं जाहिके, ध्येय ज्ञेय पुन जोय ॥
तिस परमात्मा देवको, वंद जोर कर दोय ॥ ३ ॥

तहां प्रथम अध्यायके प्रथम पादमें स्पष्टलिंगयुक्त वाक्यनका विचार है, दूसरे पादमें अस्पष्टलिंगयुक्त वाक्यनका विचार है. ते वाक्य उपास्य ब्रह्मके बोधक हैं. तीसरेमें ज्ञेय ब्रह्मबोधक अस्पष्टलिंगयुक्त जे वाक्य तिनका विचार है. चतुर्थमैं संदेहवान् जे पद तिनकरके युक्त जे वाक्य तिनका विचार है. तहां प्रथम पादके एक अधिक तीस सूत्र हैं. अल्प जिनके अक्षर होवें तथा अर्थ बहुत होवे तिनको सूत्र कहे हैं. सो सूत्र दो प्रकारके होवे हैं. एक अधिकरणरूप होवे हैं, एक गुणरूप होवे हैं. इस प्रथम पादमें एकादश अधिकरणरूप सूत्र हैं. बीस गुणरूप हैं. तथाहि—

सूत्रसंख्या ।	अधिकरण ।	गुण,	प्रसंग.
१	अ०	+	ब्रह्ममीमांसाविधान.

सूत्रसंख्या ।	अधिकरण ।	गुण	प्रसंग.
२	अ०	+	ब्रह्मलक्षणविचार.
३	अ०	+	सर्वज्ञतामें प्रमाण.
४	अ०	+	समन्वयविचार.
५	अ०	+	सांख्यमतखण्डन.
६	+	गु०	सां०
७	+	गु०	सां०
८	+	गु०	सां०
९	+	गु०	सां०
१०	+	गु०	सां०
११	+	गु०	सां०
१२	अ०	+	पुच्छवाक्यविचार.
१३	+	गु०	पु०
१४	+	गु०	पु०
१५	+	गु०	पु०
१६	+	गु०	पु०
१७	+	गु०	पु०
१८	+	गु०	पु०
१९	+	गु०	पु० सूर्य.
२०	अ०	+	नेत्रगतपुरुषविचार.
२१	+	गु०	ने०
२२	अ०	+	आकाशशब्दवि०
२३	अ०	+	प्राणशब्दवि०
२४	अ०	+	ज्योतिःशब्दवि०
२५	+	गु०	ब्रह्मछंदनिषेध.
२६	+	गु०	गायत्रीब्रह्मग्रहण.
२७	+	गु०	ज्योतिर्ब्रह्मग्रहण.
२८	अ०	+	प्राणशब्दविचार.
२९	+	गु०	प्रा०
३०	+	गु०	प्रा०
३१	०	गु०	प्रा०

दोहा–जिसमें विषय पुनि संशय, पूर्वपक्ष तिमि गान ॥
उत्तर तथा प्रयोजन, अधीकरण तिस जान ॥ १ ॥

अर्थ–जिस सूत्रमें विषय १, संशय २, पूर्वपक्ष ३, उत्तरपक्ष ४, प्रयोजन ५, यह पंच कहे जायं सो अधिकरणरूप सूत्र कहलाता है. तिससे भिन्न जो सूत्र सो गुणरूप कहलाता है. जिसमें संदेह होवे सो विषय कहलाता है. इस ग्रंथमें सूत्रका अक्षरार्थ मात्र लिखेंगे, तिस अर्थके उपयोगी अर्थात् सूत्रोंका अक्षरार्थ जितनेमें स्पष्ट होवे उतने विषयवाक्यादिकोंको लिखेंगे. सर्व अधिकरणसूत्रोंके विषय संशय आदि पूर्वोक्त पांचोंको नहीं लिखेंगे और तिनको क्रमसें भी नहीं लिखेंगे।

अव०–इस लोकके भोगोंसे जे और परलोकके भोगोंसे जे विरक्त हैं और मोक्षके लिये इच्छावाले हैं तिन अधिकारी पुरुषोंके लिये परमकृपालु मुनि व्यास भगवानने सर्व वेदांतोंका साररूप यह वेदांतशास्त्र किया है, तहां यह प्रथम सूत्र है–

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ १ ॥

अथ। अतः। ब्रह्मजिज्ञासा।

ये सूत्रके पदच्छेद हैं. ब्रह्मजिज्ञासा इस पदमें 'ब्रह्म, ज्ञा, सन्' ये तीन पद हैं. साधनचतुष्टयप्राप्तिके अनंतर 'अथ' पदका अर्थ है. 'अतः' यह पद हेतुका वाचक है. 'ब्रह्म' पद नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त पूर्ण चेतनका वाचक है. 'ज्ञा' यह पद ज्ञानमात्रका वाचक है. 'ज्ञा' पदमें अजहत् लक्षणा मानके विवरण मतानुसारी 'जन' ज्ञा पदको अभेदज्ञानका वाचक मानें हैं. 'सा' यह पद इच्छाका वाचक है. 'सा' पदके विचारमें जहत् लक्षणा मानें हैं. 'सा' पदके आगे विवरणानुसारी कर्तव्य पदका अध्याहार करें हैं. कर्तव्यपदसे नियमविधिका अंगीकार करें हैं. और आचार्य श्रीवाचस्पतिमतानुसारी कर्तव्यपदका अध्याहार नहीं करें हैं और विधि भी नहीं मानें हैं.

सूत्रवाक्यार्थ आगे होवेगा। बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्याय चतुर्थ ब्राह्मणमें–

"न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति।
आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥"

यह कहकर आगे यह वाक्य है—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इति। यह सूत्रका विषयवाक्य है. श्रुत्यर्थ–हे मैत्रेयी! आत्मा दर्शनके

योग्य है, श्रवणके योग्य है, मननके योग्य है, चिंतनके योग्य है. इति। इस वचनमें आत्माके साक्षात्कारार्थ ज्ञानका साधन करके श्रवणका विधान किया है. सर्व उपनिषद्वाक्यनका अद्वितीय ब्रह्ममें जो तात्पर्यनिश्चयअनुकूल युक्तिविचार सो श्रवण कहलाता है. सो युक्तिविचाररूप वेदांतशास्त्र आरंभ करने योग्य है वा नहीं यह सूत्रमें संदेह है. सर्वजगा पूर्वपक्ष और सिद्धांत-पक्षकी युक्ति ये दो संशयमें बीज होवे हैं. तहां यह पूर्वपक्ष है, कि जिसमें संदेह होवे सो विषय कहिये हैं, ब्रह्ममें संदेह नहीं "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" जा वाक्यमें ब्रह्मरूपसें ब्रह्म प्रसिद्ध है. और 'अहम्'जा प्रतीतिसें जीवरूपकरके ब्रह्म प्रसिद्ध है, यातें ब्रह्मको निश्चित होनेसें ताको विषय कहिना संभवे नहीं. और ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेपर भी मुक्ति होवे नहीं अर्थात् ज्ञान होनेपर भी संसार बना रहे है यांते शास्त्रका कुछ प्रयोजन भी प्रतीत होता नहीं, यांते शास्त्रका आरंभ करनेयोग्य नहीं. इस पूर्वपक्षमें यह सिद्धांत है कि 'अहम् अहम्' जा प्रतीतिसें भेद भान होवे है, और "तत्त्वमसि" जा वाक्यसें अभेद भान होवे है, यांते संशय संभवे है. और प्रारब्धके भोगसें संसारकी प्रतीति संभवे है यांते ज्ञान होनेपर अज्ञानकी निवृत्ति तथा आनंदप्राप्तिरूप प्रयोजन भी संभवे है. यांते शास्त्रका आरंभ करना ही योग्य है. इति। उक्त श्रोतव्य श्रुतिके अनुसार सूत्रका यह वाक्यार्थ सिद्ध हुआ कि चतुष्टयसाधनवान् अधिकारीको कर्मफल अनित्य होनेसें ब्रह्मज्ञानार्थ विचार कर्तव्य है. इति। ज्ञानको मोक्ष-की साधनता और वेदांतका विचार्यत्व सिद्ध होवे है. तिसके अंगीकार कियेसें सूत्रका यह अर्थ सिद्ध हुआ कि कर्मफल अनित्य होनेसें अधिकारीको मोक्ष-साधनरूप ब्रह्मज्ञानार्थ वेदांतविचार कर्तव्य है. इति। और मिश्र वाचस्पतिके मतमें कर्मफल अनित्य होनेसें चतुष्टयसाधनोंके अनंतर ब्रह्मज्ञानकी इच्छा होवे है. ज्ञान विचारसाध्य है, यांते विचारकर्तव्यता सिद्ध होवे है. इति। जे इस वेदांतविचारको अंगीकार नहीं करें तिनके मतमें अपरसाधनसाध्य मुक्ति सूत्रका फल है. सिद्धांतमें विचारके संभवसें ब्रह्मज्ञानसाध्य मुक्ति सूत्रका फल है. वा ग्रंथका आरंभ और अनारंभ सिद्धांत और पूर्वपक्षका फल है ॥ १ ॥

अव०-प्रथमसूत्रमें ब्रह्ममीमांसाका विधान किया है. सो मीमांसा लक्षण-विचार, प्रमाणविचार, समन्वयविचार, अविरोधविचार, साधनविचार, व फल-विचारके भेदसें अनेक प्रकारकी है. तहां ब्रह्मकी प्राधानता होनेसें प्रथम ब्रह्मका लक्षण करें हैं।

जन्माद्यस्य यतः ॥ २ ॥

जन्म । आदि । अस्य । यतः । इति प० ।

इस सूत्रमैं तत् पदका अध्याहार करके इसका यह अर्थ होता है कि इस प्रपंचका जन्म, पालन, भंग, जिससैं होवे है सो ब्रह्म है. इति ।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति
यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति तत् विजिज्ञासस्व तत् ब्रह्म"

यह श्रुति सूत्रका विषयवाक्य है ।

अर्थ–जिस वस्तुसे ये सर्व भूत उपजें हैं, जिसमैं स्थित हैं, जिसमैं मृत होकर प्रवेश करें हैं, तिसकी तुम जिज्ञासा करो, सोई ब्रह्म है. इति । इस श्रुतिमैं जे जन्मादिक कहे हैं ते ब्रह्मके लक्षण हैं, वा नहीं यह तहां संशय है । जन्मादिक प्रपंचके धर्म हैं, ब्रह्मसैं तिनका संबंध नहीं, यांते जन्मादिक ब्रह्मका लक्षण नहीं यह पूर्वपक्ष है । तहां यह सिद्धांत है कि जे जन्मादिक कहे हैं ते ब्रह्मके तटस्थ लक्षण हैं, व सत्यादिक स्वरूपलक्षण हैं, यांते उक्त दोष संभवे नहीं. जो प्रथम अधिकरणका फल है सोई इस अधिकरणका फल है. जहां कर्ममैं लक्षण प्राप्त होवे तहां प्रयोजन नहीं कहा जाय. "ब्रह्मजिज्ञासा" इस वाक्यमैं कर्ममैं षष्ठी है यांते प्रथम सूत्रका जो प्रयोजन है सोई इसका प्रयोजन है. इति ॥ २ ॥

अव०–पूर्व ब्रह्मको जगतका कारण कथन किया है, सो कारणता सर्वज्ञता विना संभवे नहीं यांते ब्रह्ममैं सर्वज्ञता सिद्ध होवे है. तिस अर्थात् सिद्ध सर्वज्ञताको पर हेतुसैं सिद्ध करें हैं ।

शास्त्रयोनित्वात् ॥ ३ ॥

शास्त्रयोनित्वात् । इति प० ।

अर्थ–शास्त्रपद वेदका वाचक है, योनि नाम कारणका है, वेदका जो योनि होवे सो कहिये वेदयोनि, अर्थात् वेदका ईश्वर कर्ता है, तो वेदका कर्ता होनेसे भी ब्रह्म सर्वज्ञ है. बृहदारण्यकोपनिषदि "एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतत् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोको व्याख्यानान्यनुमानानि प्रमाणभूतानि" यह श्रुति सूत्रका विषयवाक्य है. श्रुत्यर्थ-यह नित्यसिद्ध जो ब्रह्म उसके निःश्वाससे उत्पन्न ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आंगिरस, इतिहास, पुराण, श्लोक, व्याख्यान अनुमान, ये

प्रमाणभूत हैं. इति। ब्रह्म वेदका कर्ता है वा नहीं यह तहां फिरभी संशय है। "वाचा विरूपनित्यया" इस श्रुतिमें वेदको नित्य सुना है. यांते ब्रह्म वेदका कर्ता नहीं, विरूप नाम हे देव! नित्य जो वाणी ताकर स्तुतिकी प्रेरणा कर. यह श्रुतिका अक्षरार्थ है. इति। तहां यह सिद्धांत है- "तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इस श्रुतिमें यज्ञपदसे ब्रह्मका ग्रहण है, तासे वेदकी उत्पत्ति कही है. यांसे ब्रह्म वेदका कर्ता है। जो उक्त श्रुति वेदको नित्य कहे है सो अर्थवादरूप है, यासे वेद नित्य सिद्ध होवे नहीं. इति। सूत्रका दूसरा यह अर्थ है कि शास्त्र नाम वेद, योनि नाम प्रमाण होवे जिसमें सो शास्त्रयोनि कहलाता है।"औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" इस श्रुतिमें ब्रह्म उपनिषदकरके वेद्य प्रतीत होवे है। और "न अवेदवित् मनुते तं बृहन्तम्" इस श्रुतिमें स्पष्ट ही अपरप्रमाणविषयत्वका ब्रह्ममें निषेध भान होवे है. यांते अनुमानप्रमाणसिद्ध ब्रह्म नहीं, किंतु वेदप्रमाणसिद्ध है. अनुमान अनुकूल तर्कमात्र है. इति ॥ सर्वज्ञतासिद्धि उक्त सूत्रमें सिद्धांतका फल है और सर्वज्ञताकी असिद्धि पूर्वपक्षका फल है. इति॥३॥

अव०-उपनिषदोंमें अधिकारीकी प्रवृत्ति होनी यह सिद्धांतमें उत्तर अधिकरणका फल है. अप्रवृत्ति पूर्वपक्षका फल है. सर्व वेदांत कर्मकर्तादिकोंका बोधक है, वा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त ब्रह्मका बोधक है? यह तहां संदेह है कि, ब्रह्म तो ग्रहण त्यागके योग्य नहीं और नित्यसिद्ध है. तांका बोधक वेदांतको मानेंगे तौ निष्प्रयोजनत्व और सापेक्षत्व रूप दोष प्राप्त होवेगा, यांते उक्त दोषके निषेधार्थ वेदांतको कर्मकर्ताका बोधक और देवताद्वारा कर्मका बोधक मानना चाहिये. इस पूर्वपक्षमें भगवान् सूत्रकार स्वसिद्धांत करें हैं—

तत्तु समन्वयात् ॥ ४ ॥

तत् । तु । समन्वयात् इति । प० ।

अर्थ-'तु' पद पूर्वपक्षनिषेधार्थक है. सम्यक् जो होवे अन्वय सो कहिये समन्वय अर्थात् सर्व वेदांतका ब्रह्ममें तात्पर्य है. यांते 'तत्' नाम ब्रह्म सर्व वेदांतकरके प्रतिपाद्य है. कर्मकर्तादिक प्रतिपाद्य नहीं. रज्जुसर्पकी नांई स्वरूपके ज्ञानसे अनर्थकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध है. और ब्रह्म रूपादिकसे रहित है. वेदांत विना अपर प्रमाणका विषय नहीं. अपर प्रमाणका विषय होवे तौ वेदांतवचनको सापेक्षतारूप दोष होवे, ब्रह्म अपर प्रमाणका विषय नहीं यांते निष्प्रयोजनता और सापेक्षतारूप दोषकल्पना असंगत है. याते षड्लिंगनसे सर्व

वेदांतका ब्रह्ममेंही तात्पर्य है.—तथाहि—"सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" "एकमेवाद्वितीयम्" यह छांदोग्यके षष्ठ प्रपाठकमें कहा है. "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह ऐतरेयके आरंभमें कहा है. "तदेतद् ब्रह्म अपूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम् अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः इत्यनुशासनम्" यह बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्याय पंचम ब्राह्मणमें कहा है—"ब्रह्मैव इदम् अमृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण अधश्च ऊर्ध्वं च प्रसृतम् ब्रह्मैव इदं विश्वम् इदं वरिष्ठम्" यह द्वितीयमुंडकसमाप्तिमें कहा है। श्रुत्यर्थ—

हे सौम्य! हे प्रियदर्शन! जो यह प्रगट जगत् है सो उत्पत्तिसैं पूर्व सत्यस्वरूप जो इसका कारण तत्स्वरूप था। एक नाम सत्यसैं भिन्न अपर कार्य रंचक नहीं था. जैसे मृत्तिकासैं निमित्तकारण कुलाल भिन्न है तैसे सत्यसैं कोई भिन्न होवेगा, इस शंकाके निषेधार्थ अद्वितीय कहा है. इति। आत्मा नाम व्यापकका है इति। जो यह चराचर है, सो ब्रह्मरूप है. सो ब्रह्म अपूर्व है. पूर्व कारण नहीं होवे जिसका तांको अपूर्व कहें हैं. अर्थात् अकार्यरूप है. अपर नाम कार्यके वास्ते जो न होवे सो अनपर कहिये हैं अर्थात् अकारणरूप है. अनंतर पदसैं एक रसका ग्रहण है, बाह्य नाम अनात्माका है. सो नहीं होवे जिसके सो अबाह्य अंगीकृत है. अर्थात् अद्वितीयका ग्रहण है. अयंपद अपरोक्षताबोधक है. यह अपरोक्ष आत्मा ब्रह्मरूप है. जो सर्वका अनुभव करे सो सर्वानुभू कहिये। पुरस्तात् नाम अज्ञानकालमैं अज्ञानीको अब्रह्मकी नांई भान होता था. सो यह सर्व अमृत नाम ब्रह्मस्वरूप है. इति। जे कर्मकर्तादिद्वारा वेदांतको कर्मबोधक माने हैं. पूर्व तांका मत खंडन करके आगे जे उपासनाबोधक वेदांतको मानके उपासनासैं मुक्ति मानें हैं तिनका मत खंडन करें हैं—"तत् तु समन्वयात्" इति॥ ब्रह्ममें सर्वका समन्वय है यांते तत् ब्रह्म साक्षात् वेदांत-करकेप्रतिपाद्य है. इति। मोक्ष उपासनाकरके साध्य नहीं. तथाहि—उपासनामें अनेक प्रकारकी न्यूनाधिकता है, यांते मोक्षमें भी न्यूनाधिकता होवेगी. और अनित्यता सिद्ध होवेगी. कर्मके फलभोगकालमें शरीर अवश्य चाहिये, तिस विना भोग होवे नहीं, याते मोक्षकालमें शरीर अवश्य सिद्ध होवेगा. किंच "अशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः" यह छांदोग्यमें कहा है. "अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेषु अवस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति" यह कठकी द्वितीया वल्लीमें कहा है "असं-

गो हि अयं पुरुषः" यह जनकप्रति बृहदारण्यकके पष्ठ अध्यायके द्वितीय ब्राह्मणमैं कहा है. उक्त वचनमैं स्वाभाविक शरीररहित आत्मा भान होवे है यांते धर्मजन्य शरीररहित कहें तौ संभवे नहीं. श्रुत्यर्थ—आत्मा शरीररहित है. तांको सुख दुःख स्पर्श नहीं करें हैं. मोक्ष तुम्हारे मतमें धर्मका फल है. सो प्रिय शब्दका अर्थ है. श्रुतिमें तांका निषेध किया है. यांते तांके मानेसे श्रुतिकथित निषेध असंगत होवेगा. इति । वास्तवमें स्थूलशरीरसें आत्मा रहित है. अनित्य शरीरमें अवस्थित नाम नित्य है, तिस महान् विभु आत्माको जानके धीर पुरुष शोक नहीं करे हैं. इति । एक मूर्त पदार्थ दूसरे मूर्त पदार्थसे संबंधवान् होवे है. आत्मा परिपूर्ण है. मूर्त पदार्थ नहीं, यांते मूर्तरूप स्थूल सूक्ष्म किसी पदार्थसें भी संबंधवान् नहीं, यांते आत्मा अकर्ता है. इति ॥ स्वाभाविक अशरीर मोक्षरूप ब्रह्मविषे सुखदुःखस्पर्शके अभावको यह श्रुति दिखावे है. "अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यात्रास्मात्कृताऽकृतात् अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत् तत्पश्यसि तद्वद इति ।" यह श्रुति कठकी द्वितीया वल्लीमें है । अर्थ-धर्मसें और धर्मफल सुखसें, अधर्मसें और अधर्मफल दुःखसें, कृत नाम कार्यसें, अकृत नाम कारणसें, भूत नाम अतीतसें, भव्य नाम भावीसें, वर्तमानसें, अन्यत्र नाम अन्यत् है, अर्थात् इन सर्वसें स्पर्शरहित है. इसप्रकारके जिस स्वरूपको तुम देखें हैं, तिसको हमारे प्रति कहो. यह यमराजके प्रति नचिकेताका वचन है. इति । किंच-जो मोक्षको कर्मनका फल मानेंगे तौ यथा स्वर्गादि अधिकारीको ग्रहण योग्य नहीं तथा मोक्ष भी उपादेय नहीं सिद्ध होवेगा. और उत्तर श्रुतिवचनोंका बाध होवेगा "स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" यह वाक्य तृतीय मुंडकमें है । "भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे" यह द्वितीयमुंडकवाक्य है । "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन" यह तैत्तिरीयके नवमें अनुवाकमैं कहा है। "यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत् विजानतः । तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः" यह ईशावास्यमें कहा है. "तत् हैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवं सूर्यश्च" यह आरण्यकमें कहा है. श्रुतिअर्थ-जो ब्रह्मको स्वस्वरूप जाने है, सो ब्रह्मस्वरूप होवे है. पर जे हिरण्यगर्भादिक ते हैं अवर जिससे सो परावर कहिये अर्थात् परमात्माका ग्रहण है, तिस परमात्माके साक्षात्कार कियेसें इस आत्मवेत्ताके हृदयकी ग्रंथि अर्थात् चित् जड ग्रंथि निवृत्त होवे है. और सर्वसंशय विनाश होवे हैं. और जिन कर्मोंका फल

नहीं भोगा ते कर्म विनाश होवें हैं. इति। ब्रह्मके स्वरूपानंदको जानता हुआ किसीसे भी भयको प्राप्त होता नहीं. इति। जिस अवस्थामें आत्मवेत्ताको सर्वभूत आत्मस्वरूपही होवे हैं तिस आत्मामें वा तत्कालमें एकत्व नाम अभेददर्शी पुरुषके शोकमोहादि संसारका अभाव होवे है. इति। तत्पदका लक्ष्य जो ब्रह्म प्रत्यक्रूपसें स्थित सो 'अहम् अस्मि' इस प्रकार देखता हुआ ऋषि वामदेव इस दर्शनसें अविद्यानाशद्वारा परब्रह्मको 'प्रतिपेदे' नाम प्राप्त हुआ है. तिस दर्शनमें स्थित हुए उसने मैं मनु हौं मैं सूर्य हौं इत्यादि मंत्र कहे हैं. इति। उक्त सर्व वचन ज्ञानकालमेंही मोक्षको कहे हैं और कर्मोंका फल कालांतरमें होवे है. इति। किंच "त्वं हि नः पिता योऽस्माकम् अविद्यायाः परं पारं तारयसि" यह प्रश्नके षष्ठ प्रश्नमें कहा है. "सोऽहं भगवो मन्त्रवित् एवास्मि न आत्मवित् श्रुतं हि एव मे भगवद्दृशेभ्यः तरति शोकमात्मवित् सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवान् शोकस्य पारं तारयतु" यह छांदोग्यके सप्तम प्रपाठकके आरंभमें कहकर समाप्तिमें यह कहा है—"तस्मै मृदितकषायाय तमसः पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः" ये उक्त वचन ब्रह्मविद्याको अविद्यानिवृत्तिद्वारा मोक्षकारणता दिखावें हैं. अविद्यानिवृत्ति ज्ञानविना होवे नहीं यातें मुक्ति उपासनाकरके साध्य नहीं। श्रुतिअर्थ—भारद्वाजादि षट् ऋषि पिप्पलाद गुरुको वंदना करके कहें हैं कि आप हमारे पिता हो, विद्याकरके अजर अमर ब्रह्मरूप देहके जनक हौ, याते अविद्यारूप समुद्रसें 'पारम्' नाम अपुनरावृत्तिरूप पारमें विद्यारूप नावसें हमको प्राप्त करो. इति। श्रीनारदजीने सनत्कुमारसे कहा है कि हे भगवन्! मैंने सर्वविद्या पढ़ी हैं सो मैं मंत्रवेत्ताही हौं आत्मवेत्ता नहीं हौं. मैंने तुम्हारे तुल्य जे महात्मा हैं तिनसें सुना है कि आत्मवेत्ता शोकको तरे है. सो मैं अनात्मवेत्ता होनेसे शोक करता हूं यांते शोकवान् मुझको शोकसागरसें पार करो. इस प्रकार नारदकरके प्रेरित सनत्कुमारने शुद्ध चित्तवान् नारदजीको अविद्यासे पर परमात्मतत्त्वका उपदेश किया है. इति। यद्यपि 'ब्रह्म वेद०' इत्यादिक वाक्यनका कर्म प्रतीत होवे है यांते ब्रह्मको विधेय मानना चाहिये; तथापि ब्रह्म प्रयत्नसाध्य नहीं यांते विधेय नहीं. और ब्रह्मको कर्म कहना भी संभवे नहीं. क्योंकि, ब्रह्म ज्ञानरूप क्रियाका कर्म है वा उपासनांरूप क्रियाका कर्म है? इन दोनोंही पक्षोंका श्रुति निषेध करे है, यांते दोनोंही संभवें नहीं. तथाहि—"अन्यदेव तत् विदितात् अथो अविदितादधि"॥ यह केनके प्रथम खंडमें कहा है. इसमें ज्ञानरूप क्रियाके कर्मत्वका निषेध किया है. और तहांही—"यद्वाचा अन-

भ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" इस वाक्यमें उपासना क्रियाके कर्मत्वका निषेध किया है. तत् नाम ब्रह्म विदित जो कार्य व अविदित जो कारण तिन दोनोंसें अन्यत् है. जो ज्ञानका विषय होवे सो विदित कहिये. 'अथो' यह पद और 'अधि' यह पद निश्चयवाचक है. इति। जो वाणीकरके नहीं कहा जाय, वाणी जिसकर कहे है तिसको तैं ब्रह्म जान, जे उपाधिविशिष्ट देवतादिक उपास्य हैं, तिनको तैं ब्रह्म नहीं जान. इति । और उत्तरवचनसे भी ब्रह्मको कर्म कहिना असंगत है। "यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः । अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्" । यह केनके द्वितीय खंडका वाक्य है. "येन इदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाम्। विज्ञातारम् अरे केन विजानीयाम्" यह वाक्य चतुर्थ अध्यायके पंचम ब्राह्मणमें बृहदारण्यकमें कहा है. उक्त वाक्यनमें भी ब्रह्मको ज्ञानका अविषय कथन किया है. श्रुतिअर्थ–ब्रह्म अविषय है ऐसा जिसको निश्चय है तिसको ब्रह्म सम्यक् ज्ञात है और जिसको ब्रह्म ज्ञानका विषय है ऐसा निश्चय है तिसको ब्रह्म अज्ञात है. इस अर्थका अर्द्ध श्रुतिमें अनुवाद है. इति । अरे मैत्रेयी ! जिस वस्तुकरके इस चराचरको जाने हैं तिसको किसकरके जानें, विज्ञाताको किसकर जानें. इति । किंच मोक्ष स्वरूपसे अनादि है. याते विधेय क्रियाकरके उत्पाद्य नहीं. गीतामें अविकार्य कहा है याते मोक्ष विकार्य नहीं, नित्य प्राप्त है याते आप्य नहीं. निर्गुणस्वरूप है याते संस्कार्यरूप नहीं । निर्गुणनिर्दोषतामें यह वचन प्रमाण है । "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" यह श्वेताश्वतरके षष्ठ अध्यायमें कहा है. "स पर्यगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरं शुद्धम् अपापविद्धम्" यह ईशावास्यमें कहा है। श्रुतिअर्थ—शिवादित्रय मूर्ति नहीं किंतु एक है, जड़ नहीं किंतु प्रकाशस्वरूप है. सर्वभूतनमें मायाकरके गूढ नाम छिपाहुआ है, याते प्रतीत नहीं होता. सर्वमें व्यापक है. तटस्थ नहीं किंतु सर्वके अनंतर आत्मास्वरूप है. सर्वभूतनमें स्थित है तौभी क्रियाका कर्ता नहीं. किंतु कर्मका साक्षी है, सर्वभूतनका अधिवास नाम अधिष्ठान है. सर्वकर्तारूप जीवनका भी साक्षी है. चेता नाम चेतनस्वरूप है. ज्ञानादि गुणोंसे रहित है. केवल नाम दृश्यसे रहित है. इति । सो आत्मा 'पर्यगात्' नाम व्यापक है. शुक्र नाम दीप्तिमान् है. अकाय नाम लिंगशरीरसे रहित है. अव्रण नाम छिद्ररहित है. अस्नाविर नाम

नाड़ियोंसे रहित है. अव्रण अस्नाविर इन दो विशेषणोंसे स्थूलशरीरसें रहित कथन किया है. शुद्ध नाम रागादि गुणोंसें रहित है. अपापविद्ध नाम धर्माधर्मसें रहित है. इति । पूर्व श्रुतिमें संस्कार्यरूप मोक्षका निषेध किया है, याते कर्तव्य विधिका अंगरूप करके ब्रह्मका उपदेश संभवे नहीं. इति ! ब्रह्म और आत्माके अभेदविषयक जो ज्ञान ताको स्वतंत्र मोक्षकी कारणता श्रुति दिखावे है, याते विधिकी अपेक्षा नहीं. तथाहि—"**आत्मानं चेत् विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्**" यह वाक्य बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मणमें है.

अर्थ—यह परमात्मा 'अहम् अस्मि' इस प्रकार अपरोक्षरूपसें जो कोई जाने तौ अपनेसें भिन्न किस फलकी इच्छा करता हुआ किसकी कामनाके अर्थ शरीरको तपावे. इति । यद्यपि शरीरकालमें अशरीरत्वका अभाव है, याते मोक्षको धर्मजन्य कहिना संभवे है; तथापि सशरीरत्व मिथ्या है, याते स्वाभाविक अशरीरत्व है; याते मोक्ष धर्मजन्य नहीं. तथाहि श्रुति—"**तद्यथा अहिनिर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीत एवमेव इदं शरीरं शेते अथ अयम् अशरीरः अमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एवेति**" यह बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्याय चतुर्थ ब्राह्मणमैं जनकके प्रति याज्ञवल्क्यका वचन है। "**सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव सवागवागिव समना अमना इव सप्राणोऽप्राण इव**" यह अपर जगा भी कहा है.

अर्थ—जीवन्मुक्त पुरुष देहको जाने है तौभी पूर्ववत् तिसका संसार रहे नहीं. इस अर्थमें श्रुति दृष्टांत कहे है. यथा—सर्पकी केंचली बिलमें प्रत्यस्ता नाम फेंकी हुई मृता नाम पूर्ववत् आत्मरूपसे नहीं ग्रहण करी हुई पड़ी रहे है, तैसे आत्मवेत्ताका शरीर पूर्ववत् आत्मरूपसे नहीं ग्रहण किया हुआ स्थित रहे है. केंचलीके समान शरीरको कहकर सर्पतुल्यता आत्मवेत्तामें श्रुति दिखावे है—यथा उतारी त्वचाको 'अहम्' ऐसे सर्प नहीं माने है, अथ नाम तथा जीवन्मुक्त भी देहको मैं यह हूं ऐसे मानता नहीं, याते आत्मवेत्ता अशरीर कहलाता है. देहके अभिमानसे मृत्यु होवेहै. ज्ञानीको देहाभिमान नहीं याते अमृतरूप है. जीववत् चेष्टा करेहै याते ज्ञा-

१ अर्थात् शरीर,उपाधिकृत दुखसें दुःखी तथा शरीरतापसें तापवान् नहीं होता.

नीको प्राण कहा है. अर्थात् साक्षी है. सो ब्रह्मरूप है. तेजः नाम ज्योतिः—स्वरूप है. इस श्रुतिमें स्थूलदेहको मिथ्या दिखाया है. इति। वास्तवसें चक्षुरहित है तौभी बाधित नेत्रादि अनुवृत्तिसें नेत्रवान् प्रतीत होवे है. इसी प्रकार आगे भी जाना चाहिये. इस श्रुतिमें लिंगदेहको मिथ्या दिखाया है, याते सर्व वेदांतका साक्षात् ब्रह्ममैं तात्पर्य है, विधिद्वारा नहीं; यह सिद्ध हुआ ॥ ४ ॥

अव०—पूर्व चार सूत्रोंकरके ब्रह्मको सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जगत्कारण वेदांतप्रतिपाद्य कथन किया है. सो ब्रह्म चेतन है वा अचेतन है यह तहां संदेह है. तहां यह सांख्यका पूर्वपक्ष है कि ब्रह्म तो कूटस्थ है याते ज्ञान और क्रियाशक्तिवान् ब्रह्म नहीं याते सो जगतका कारण नहीं. और प्रधान त्रिगुणरूप है. त्रिगुणरूप होनेसें तामें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति संभवे है, याते प्रधान जगतका कारण है. सो प्रधान सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् है. तिसका सर्व वेदांत अनुवाद करैं हैं. इस मतका भगवान् सूत्रकार खंडन करैं हैं—

ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥ ५ ॥

ईक्षतेः। न। अशब्दम्। इति ॥ प० ॥

अर्थ—'सांख्यपरिकल्पितं प्रधानं जगत्कारणं न संभवति। अशब्दत्वात्। अर्थात् अवेदप्रामाणिकत्वात्'। अवेदप्रामाणिकमें हेतु कहें हैं—'सांख्यपरिकल्पितं प्रधानम् अवेदप्रामाणिकं भवति। ईक्षतेः अर्थात् ईक्षितृत्वश्रवणात्' इति। "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय।" यह छांदोग्यश्रुति ईक्षितृत्वमें प्रमाण है. ईक्षितृत्व इच्छा वा ज्ञानविशेष है. प्रधान जड़ है. जड़में इच्छादि संभवे नहीं, याते प्रधान वेदप्रामाणिक नहीं. वेदप्रमाणविना ताको जगतका कारण कहिना संभवे नहीं. इति। प्रधान उपासना इस अधिकरणके पूर्वपक्षमें फल है और ब्रह्मात्माअभेदज्ञान सिद्धांतमें फल है. इति ॥ ५ ॥

अव०—ननु इच्छामात्रसें ब्रह्मको जगतका कारण मानें तौ प्रधानमैं भी कारणता संभवे है. तथाहि—"तत्तेज ऐक्षत, ता आप ऐक्षन्त"—या श्रुतिनमैं अ चेतनरूप जल तेजमैं इच्छा सुनी है याते जड़ प्रधानमैं गौण इच्छा मानके प्रधानको कारण मानना संभवे है, इस शंकाका सूत्रकार समाधान करैंहैं—

गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ॥ ६ ॥

गौणः। चेत्। न। आत्मशब्दात् ॥ इति प० ॥

अर्थ—चेत् नाम जो प्रधानमें गौण इच्छा मानें तौ संभवे नहीं. तथाहि—

छांदोग्यके षष्ठ प्रपाठकमें यह श्वेतकेतुप्रति उद्दालकका वचन है " तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय" "तत्तेजोऽसृजत" "तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेय" "तदपोऽसृजत" "ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहि ता अन्नम् असृजन्त" यह दूसरे खंडमैं कहकर आगे तृतीय खंडमैं यह कहा है "सा इयं देवता ऐक्षत हन्ताऽहम् इमाः तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" इति ॥

अर्थ–'तदैक्षत' जा श्रुतिसें पूर्व "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" यह वाक्य है. इसमें जो सत् पदका वाच्य है सो 'तदैक्षत' या श्रुतिमें तत्पदसें ग्रहण है. तिसमें मैं एकसें अनेकरूप होऊं यह इच्छा हुई तिससे तेजको रचा तिस तेजमें इच्छा हुई कि मैं एकसे अनेकरूप होऊं, तासे जलको रचा, तिसमें इच्छा हुई कि मैं एकसें अनेक रूप होऊं, तव जलसे अन्नको रचा. इति । तिस देवताकी इच्छा करके अव अर्थात् महाभूतउत्पत्तिअनंतर हम तीनों देवता अनेन नाम पूर्वसृष्टिअनुभूत प्राणधृतिहेतुसें जीवेनात्मना नाम तत्रूपसें प्रवेश करके देवतावोंकी उत्पत्तिके अनंतर नामरूपको प्रगट करूं इति । इस श्रुतिमें आत्मा शब्द सुना है. जो पूर्वभूतत्रयकी उत्पत्तिसें प्रधानका ग्रहण होवे तौ 'जीवेनात्मना प्रविश्य' यह कथन असंगत होवेगा. आत्मा शब्द स्वरूपका वाचक है। चेतन जीव अचेतन प्रधानका आत्मा नहीं और ब्रह्ममैं जीववाचक आत्माशब्दका प्रयोग संभवे है. और अंतमैं "स य एषोऽणिमैतदात्म्यम् इदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" या वाक्यमैं श्वेतकेतु जीवका आत्मासैं तादात्म्य उपदेश किया है, याते चेतनसे चेतनके अभेदकी शंका रंचक नहीं । श्रुतिअर्थ–जो सत्य वस्तु है सो यह अणिमा नाम अणु है. एतत् नाम यह चेतन होवे आत्मा जिसका सो ऐतदात्म्य कहिये अर्थात् जगतका ग्रहण है. इस सर्व चराचरका आत्मा चेतनही है. सो आत्मा सत्य है अर्थात् परमार्थस्वरूप है. सो सर्वका आत्मा है. हे श्वेतकेतु, तुम भी संसारी नहीं हो किंतु सोई सत्यपदका वाच्य ब्रह्म तुम हौ. इति । उक्त श्रुतिमैं आत्मा शब्दका ग्रहण किया है, याते तेज जलकी नांई प्रधानमें गौण इच्छा संभवे नहीं. पूर्व जिस श्रुतिमें जलतेजविषे इच्छा कही है तहां तेज जलउपहित परमात्मामें इच्छा अंगीकृत है. मुख्य तेजजलमें इच्छा माननेसें चेतनसें सर्वसृष्टिकथन असंगत होवेगा. इति ॥ ६ ॥

---

१ मायाउपाधिकको मायाके वशसैं पूर्वसृष्टि अनुभूतत्व और स्मरण संभवे है.

अव०-ननु यद्यपि आत्माशब्द मुख्यवृत्तिसें प्रधानका वाचक नहीं तथापि गौणवृत्तिसें प्रधानका वाचक माननेसे हानि नहीं, इस शंकामें कहें हैं—

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ॥ ७ ॥

तत्निष्ठस्य । मोक्षोपदेशात् ॥ इति ॥ प० ॥

अर्थ-तत्त्वमसि वाक्यसें चेतन श्वेतकेतुको ब्रह्मनिष्ठताका उपदेश करके यह उपदेश किया है। "**तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ संपत्स्ये**" इति! जो अचेतनको सत् शब्दका वाच्य मानें तो तत्त्वमसि वाक्यका यह तात्पर्य सिद्ध होवेगा—हे श्वेतकेतो, तैं चेतन अचेतनस्वरूप है इति। इसको सुनके 'अहम् अचेतनोऽस्मि' याविध चिंतन करता हुआ मोक्षसे पतित होता और अनर्थको प्राप्त होता है. याते शास्त्र उन्मत्तप्रलापमात्र सिद्ध होता है,सो अनिष्ट है; याते आत्मा शब्द चेतनका वाचक है, जड प्रधानका वाचक नहीं। श्रुतिअर्थ—आत्मवेत्ताको तहांपर्यंतही चिर है अर्थात् देहादि अनुवृत्ति है, जहांतक प्रारब्ध कर्म शेष है; 'अथ' नाम प्रारब्धक्षयअनंतर **संपत्स्ये** नाम संपत्स्यते अर्थात् विदेहमुक्त होवे है. इति॥ ७ ॥

अव०-ननु स्थूलारुंधतीन्यायसें प्रधानके उपदेशद्वारा आत्माका उपदेश मानना चाहिये, इस शंकाका उत्तर कहें हैं.

हेयत्वावचनाच्च ॥ ८ ॥

प० हेयत्वावचनात् । च । इति प० ।

अर्थ०-स्थूलारुंधतीन्यायसे उपदेश तौ बने किंच अनात्मा प्रधानको सत्पदका वाच्य मानके जो आत्मा है सो तैं है, याविध उपदेश करके तिस उपदेशके श्रवणसैं अनात्मवेत्ता होकर तिस अनात्मा प्रधानमैं निष्ठावान् नहीं होवे यह मानके मुख्य आत्माके उपदेशकी इच्छासे शास्त्र प्रधानको हेयत्वकरके कहता, सो प्रधानका निषेधक वचन कोई प्रतीत होवे नहीं यांते प्रधानके उपदेशद्वारा भी आत्माका उपदेश संभवे नहीं और एकके विज्ञानसैं सर्वके विज्ञानकी प्रतिज्ञाका विरोध होवेगा. तथाहि "उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाऽश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतम् अविज्ञातं विज्ञातम्। कथं नु भगवः स आदेशो भवति इति। यथा सोम्य एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिका इति एव सत्यम् इति" इस वाक्यमैं

एकके विज्ञानसें सर्वके विज्ञानकी प्रतिज्ञा करी है. प्रधानके ज्ञानसैं सर्वविकारोंका व सुनाका ज्ञान संभवे नहीं। श्रुतिअर्थ–हे श्वेतकेतो ! जा वस्तुके शास्त्रसैं श्रवण कियेसैं असुना भी सुना जाय, जिसको तर्कसें मनन कियेसैं जो नहीं मनन किया सो मनन होवे, जिसके जानेसैं जो नहीं जाना सो जाना जाय, सो आदेश नाम शास्त्रगम्य वस्तुका उपदेश अप्राक्ष्यः नाम पूछा था. यह पिताके वाक्यका अर्थ है। हे भगवन्! एक वस्तुके सुनेसैं सर्वके श्रवणका उपदेश कैसे होवे है, अपरके ज्ञानसें अपरका ज्ञान होवे नहीं यह श्वेतकेतुके वचनका अर्थ है। पिताका उत्तर-हे सोम्य ! यथा एक मृत्तिकापिंडके ज्ञानसें मृत्तिकाके सर्व विकार अर्थात् कार्य ज्ञात होवे हैं. यद्यपि मृत्तिकापिंडका ज्ञान हुए भी तत्कार्यका ज्ञान होना संभवे नहीं, तथापि जो विकार है अर्थात् कार्य है सो वाचारंभण है अर्थात् वाक्यावलंबन मात्र है, वास्तवमें वाणीसें भिन्न नहीं. 'नामधेयम्' यह तहां हेतु है. नामधेय कहिये नाममात्र है अर्थात् अर्थसें रहित है. यद्यपि घटका मृत्तिकासैं अभेद मानेसैं घटनाश हुए मृत्तिकाविनाश होना चाहिये तथापि घट मृत्तिकासैं भिन्न नहीं किंतु तासैं अभिन्न है. और मृत्तिका घटसैं भिन्न है यांते दोष नहीं. उक्त अर्थही श्रुतिमें "मृत्तिका इत्येव सत्यम्" या वाक्यसैं कहा है. इति ॥ ८ ॥

अव०–'सदेव' इस वाक्यमैं जो सत्पद है ताका वाच्य प्रधान नहीं यह पुनः सूत्रसैं सिद्ध करेहैं—

स्वाप्ययात् ॥ ९ ॥

स्वाप्ययात् । इति ॥ प० ॥

अर्थ०–'स्व' नाम आत्मामैं 'अप्ययात्' नाम लय सुना है, सो लयस्थान आत्मा सत्शब्दका वाच्य है; जो प्रधानको सत्पदका वाच्य मानें तौ चेतन अचेतनमैं लय होवे है. जाविधं विरोध सिद्ध होवेगा। 'तत्र स्वमपीतो भवति' यह श्रुति आत्मामैं लयको दिखावे है। अर्थ–तत्र नाम सुषुप्तिकालमैं स्व नाम आत्मामें अपीतो नाम लय होवे है. यह श्रुतिका अर्थ है। यांते सत्पदका वाच्य चेतनही जगत्का कारण है. इति ॥ ९ ॥

गतिसामान्यात् ॥ १० ॥

गतिसामान्यात् ॥ इति । प० ॥

अर्थ–सर्व वेदांतमैं चेतनविषे कारणत्वप्रतीति तुल्य होवेहै. कहूं चेतन का-

रण कहूं अचेतन कारण जाविध विरोध प्रतीत होवे नहीं, किंतु सर्व वेदांतमें चेतनही कारण प्रतीत होवे है. तथाहि—"एतस्मात् आत्मन आकाशः संभूतः आकाशात् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः" यह तैत्तरीयकी ब्रह्मानंदवल्लीमें लिखा है. "आत्मन एष प्राणो जायते" यह प्रश्नके तृतीय प्रश्नमें कहा है. इति । आत्मापदसें चेतनका ग्रहण है. प्राणपद हिरण्यगर्भका वाचक है. इति ॥ १० ॥

किंच ।

श्रुतत्वाच्च ॥ ११ ॥

श्रुतत्वात् । च । इति । प० ॥

अर्थ—अपर श्रुतिमें भी सर्वज्ञ ईश्वरको कारण सुना है. तथाहि—"येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः" । "न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चित् जनिता न चाधिपः" इति । यह श्वेताश्वतरके षष्ठ अध्यायमें कहा है । श्रुतिअर्थ—सर्वज्ञ है, कालका भी काल है, गुणवान् है. जिसकरके यह सर्व आवृत है, जो सर्वको जाने है, तिसका इस लोकमें कोई पति नहीं और ईशिता भी कोई नहीं, ताका लिंग भी नहीं, सो सर्वज्ञ सर्वका कारण है. और करण ये इंद्रियां तिनका अधिपति नाम स्वामी भी जो जीव तिसका भी अधिपति नाम परम ईश्वर है, इसका कोई जनिता नहीं, अधिप नाम हिरण्यगर्भका भी प्रेरक है. तांका प्रेरक कोई नहीं. इति । उक्त वाक्यनसें भी ब्रह्मही जगतका कारण निश्चित है. प्रधान वा अपर कोई अचेतन कारण नहीं. इति सिद्धम् ॥ ११ ॥

अव०—ननु पूर्व चार सूत्रोंकरके सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म प्रतिपादन किया है. उत्तरसूत्रोंसें क्या प्रतिपाद्य है? या शंकासें कहे हैं कि निर्विशेष ब्रह्मका स्वरूपसें तो उपदेश संभवे नहीं, किंतु किंचित् उपाधिउपहितरूपसें उपदेश संभवे है. तहां किस वाक्यमें उपाधि अपेक्षित है, किस वाक्यमें नहीं अपेक्षित जाविध अभिलाषा हुएसें तिन वाक्यनके विचारार्थ उत्तरसूत्रसंदर्भ है. सविशेषरूपसें और निर्विशेषरूपसें ब्रह्म दो प्रकारका सुना है. तथाहि—"यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं रसयते तदितर इतरम् अभिवदति तदितर इतरं शृणोति तदितर इतरं मनुते

तदितर इतरं स्पृशति तदितर इतरं विजानाति" यह सविशेष वाक्य कहकर आगे यह निर्विशेष कहा है । "यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत् तत्केन कं जिघ्रेत् तत्केन कम् अभिवदेत् तत्केन कं शृणुयात् तत्केन कं मन्वीत तत्केन कं रसयेत् तत्केन कं स्पृशेत् तत्केन कं विजानीयात् येन इदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् विज्ञातारम् अरे केन विजानीयात्" इति ॥ यह निर्विशेष वाक्य है. यह प्रसंग बृहदारण्यकके चतुर्थाध्याय पंचम ब्राह्मणमैं है. छांदोग्यमैं भी कहा है। "यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति" यह कह कर आगे यह कहा है. "यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यत् विजानाति स भूमा । अथ यत्र अन्यत् पश्यति अन्यत् शृणोति अन्यत् विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतं अथ यदल्पं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठत इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नि इति" इस उक्त वाक्यमैंभी निर्विशेष और सविशेष उभय वाक्य प्रतीत होवे हैं. उक्त प्रसंग छांदोग्यके सप्तम प्रपाठक चतुर्विंश खंडमैं सनत्कुमारका नारदप्रति उपदेश है. श्वेताश्वतरके षष्ठ अध्यायमैं भी कहा है. "निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् । अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलः ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ॥ तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति" इति ॥ इसमैं भी निर्विशेष वाक्य प्रतीत होवै है. "स एष नेति नेति आत्मा अगृह्यो न हि गृह्यते अशीर्यो नहि शीर्यते असङ्गो नहि सज्जते" यह बृहदारण्यकके षष्ठ प्र० द्वितीय ब्राह्मणमैं जनकप्रति याज्ञवल्क्यवचन है. यह भी निर्विशेष वाक्य है. श्रुतिअर्थ— जिस अविद्याअवस्थामैं भी तुच्छ द्वैत सत्यकी नांई भान होवैहै, तिस अवस्थामैं इतर नाम संसारी इतर नाम आपनेसैं भिन्न वस्तुको देखैहै. जो विद्या अवस्थामैं इस आत्मवेत्ताको सर्व कर्तादिक आत्मासैं भिन्न असत्य भान होवे है ता अवस्थामैं किसकारणकरके किस विषयको कौन कर्ता देखे. जिस कर इस सर्वको जाने है तिसको किसकरके जाने. अरे मैत्रेयी ! विज्ञाताको किसकरके जाने. इति । नारदप्रति सनत्कुमार कहे हैं. जो भूमा है सो सुख है. अल्पमैं सुख नहीं. भूमाही जाननेयोग्य है. नारदवचन—हे भगवन् ! भूमाको कहो. सनत्कुमारवचन—जिस अवस्थामैं आपनेसैं भिन्न वस्तुको देखे सुने जाने नहीं सो भूमा है. जिस अवस्थामैं अपरको देखे सुने जाने है, सो

अल्प है अर्थात् परिच्छिन्न है. जो भूमा है सो अमृतस्वरूप है. जो अल्प है सो विनाशी है. नार० वच०–हे भगवन्! सो भूमा किसमैं स्थित है. सन० वच०–हे नारद! सो यदि प्रतिष्ठाकी इच्छा करे तौ स्वमहिमामैं अर्थात् स्वस्वरूपमैं स्थित है. वा यदि नहीं इच्छा करे तौ नहीं. इति। दृष्टिआदि अगोचर निरतिशय महत्वयुक्त जो परमात्मा सो भूमा अंगीकृत है. इति । जो निरंश है, क्रियारहित है, जो परिणामरहित है, निरवद्य नाम रागादिकोंसे रहित है, धर्मादिकोंसैं रहित है, निरंजन नाम जड़संबंधसैं रहित है, अमृतस्वरूप है, संसारसागरका सेतु है अर्थात् बुद्धिवृत्तिमैं स्थित हुआ साधन है. काष्ठ दाह हुए यथा अग्नि शांत होवे है तथा सो वृत्तिज्ञान नाश होवे है. उक्त विशेषणवान् तिस देवको जाने विना दुःखका नाश तौ होवेगा. जो चर्मवत् आकाशको पुरुष बटोर लेवेंगे. इति । सो यह आत्मा 'नेति नेति' इस निषेधकी अवधि है. अर्थात् सर्व निषेधका अधिष्ठान है. इसप्रकारसैं जहां सगुणवाक्यविचार है, तहां उपासना अंगीकार है; जहां गुण सुने भी गुण अंगीकार नहीं सो वाक्य ज्ञेय ब्रह्मका बोधक है. इसप्रकारके निर्णयार्थ उत्तरसूत्रोंका संदर्भ है. आनंदमयरूपसैं जीवकी उपासना पूर्वपक्षमैं उत्तरसूत्रका फल है. सिद्धांतमैं निर्गुण ब्रह्मकी प्रमिति फल है. तैत्तिरीयके द्वितीयाध्यायमैं यह वाक्य है. "तस्मात् वा एतस्मात् अन्नरसमयात् अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः । तस्मात् वा एतस्मात् प्राणमयात् अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः । तस्मात् वा एतस्मात् मनोमयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः । तस्मात् वा एतस्मात् विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः । तस्य प्रियमेव शिरः मोदो दक्षिणः पक्षः प्रमोदः उत्तरः पक्षः आनन्द आत्मा ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" इति ॥ श्रुतिअर्थ–तस्मात् नाम मंत्रसैं एतस्मात् नाम मंत्रसे ब्राह्मणसैं विज्ञानमयसैं अन्य नाम अपर अंतर नाम सूक्ष्म आनंदमय आत्मा है. प्रियवृत्ति शिर है, मोदवृत्ति दक्षिण पक्ष है, प्रमोदवृत्ति उत्तर पक्ष है, आनंद आत्मा नाम शरीरमध्यभाग है, ब्रह्म पुच्छ है, प्रतिष्ठा नाम आसरा है. इति ॥ उक्त वाक्यमैं यह संदेह है कि आनंदमयपदसैं सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मका ग्रहण है वा अन्नमयादिविकारवान् जीवका ग्रहण है? इति । तहां यह पूर्वपक्ष है कि अन्नमयादिक पदोंमैं मयट् विकारार्थमैं है और प्रिय मोदप्रमोदादि अवयव तांके कहे हैं यांते आनंदमय जीव है, ब्रह्म नहीं. इति । उक्त पूर्वपक्षका समाधान करें हैं—

आनन्दमयोऽभ्यासात् ॥ १२ ॥

आनन्दमयः । अभ्यासात् । इति प० ।

अर्थ–आनंदमय शब्दका अनेक श्रुतिनमैं ब्रह्मविषे अभ्यास सुना है, यातें तहां आनंदमयपदसैं परमात्माका ग्रहण है. जीव अंगीकृत नहीं है. तथाहि "रसो वै सः रसं हि एवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति । को हि एव अन्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष हि एव आनन्दयति" । यह तैत्तिरीयकी ब्रह्मानंदवल्लीमैं कहा है. तहांही आगे पुनः कहा है:–"सा एषा आनन्दस्य मीमांसा भवति । एतम् आनन्दमयमात्मानम् उपसंक्रामति । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन इति । आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानात्" ॥ यह भृगुवल्लीमैं कहा है. इति । उक्त वाक्यनमैं आनंदमयका बहु अभ्यास सुना है. यद्यपि उक्त वचननमैं आनंदपदका अभ्यास है, आनंदमय पदका नहीं; तथापि 'वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेत' इस वाक्यमैं यथा ज्योतिष्पदसैं ज्योतिष्टोमका ग्रहण है, तैसे आनंदपदसैं आनंदमयका ग्रहण है. श्रुतिअर्थ–रस नाम सार अर्थात् आनंदका नाम है. जो पूर्वकारण कहा है सो आनंदरूप हैं. उक्त रसको पायके ही जीव आनंदवान् होवेहै. जो यह आकाश अर्थात् ब्रह्म आनंदरूप नहीं होवे अर्थात् प्रेरक नहीं होवे तौ कौन अन्यात् नाम जीवे और कौन प्राण्यात् नाम प्राणचेष्टा करे. यह ब्रह्मानंदही सर्वको आनंदवान् करे हैं. यह ब्रह्मानंदकी मीमांसा नाम विचार है. जो पुरुषमैं है, जो आदित्यमैं हैं, सो एक हैं, इसप्रकार जो जाने है, सो अन्नमय आत्मासैं लेकर आनंदमय आत्मातक सर्वको उपसंक्रामति नाम इनमैं आत्मबुद्धिको छोड़ देता है. ब्रह्मानंदको विद्वान् नाम जानताहुआ किसीसैं भयको प्राप्त होता नहीं. अतः ब्रह्मको आनंदस्वरूप जाने. इति । उक्त आनंदमयपदके अभ्याससैं आनंदमय परमात्मा है, जीव नहीं. इति ॥ १२ ॥

विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ॥ १३ ॥

विकारशब्दात् । न । इति । चेत् । न । प्राचुर्यात् । इति प० ।

अर्थ–ननु–मयट् प्रत्ययका विकारार्थमैं विधान है यातें आनंदमय ब्रह्म नहीं आनंदका जो होवे विकार सो आनंदमय अंगीकार है. ब्रह्मको आनंदका विकार कहिना संभवे नहीं, इति चेत् नाम यह शंका करें तौ संभवे नहीं. तथाहि प्रसंगमैं मयट्का प्राचुर्य अर्थमैं विधान है; विकारमैं विधान नहीं, यातें उक्त शंका संभवे नहीं. इति ॥ १३ ॥

तद्धेतुव्यपदेशाच्च ॥ १४ ॥

तत्-हेतुव्यपदेशात् । च । इति प० ।

अर्थ-'आनन्दं हि एव लब्ध्वा आनन्दी भवति' इस श्रुतिमैं ब्रह्मको आनंदका हेतु कहा है. जो दूसरेको आनंद करे सो प्रचुरआनंद अंगीकृत है. यातें मयट् प्राचुर्यार्थक है, विकारार्थक नहीं. इति ॥ १४ ॥

अव०-आनंदमय परमात्मा है, इसमें अपर हेतु कहें हैं—

मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते ॥ १५ ॥

मान्त्रवर्णिकम् । एव । च । गीयते । इति प० ।

अर्थ-तैत्तिरीय ब्रह्मानंदवल्लीके आरंभमैं यह मंत्र है। "ब्रह्मविदाप्नोति परम् । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चित्" इति । उक्त मंत्रमें जो ज्ञेयकरके कथन किया है ब्रह्म सो मांत्रवर्णिक अंगीकृत है. सोई ब्रह्म "अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः गीयते" इस ब्राह्मणमैं गीयते नाम कहा है. मंत्र और ब्राह्मणका एकही अर्थ होवे है, यांते आनंदमय परमात्मा है, जीव नहीं. इति ॥ १५ ॥

नेतरोऽनुपपत्तेः ॥ १६ ॥

न । इतरः । अनुपपत्तेः । इति प० ।

अर्थ-'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय इति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा इदं सर्वम् असृजत । यदिदं किंच । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनु प्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्' यह तैत्तिरीयकी ब्रह्मानंदवल्लीगत वाक्य है। इस उक्त वाक्यमैं सृष्टिकी कारणता सुनी है, आनंदमयसैं जीव अंगीकार कियेसैं जीवमैं[1] उक्त कारणता नहीं बनेगी; अतएव 'अनुपपत्तेः' नाम कारणता नहीं बननेसैं ही ईश्वरसैं इतर जो जीव सो आनंदमय नहीं. इति १६

भेदव्यपदेशाच्च ॥ १७ ॥

भेदव्यपदेशात् । च । इति प० ।

अर्थ-'रसं हि' जा श्रुतिमैं आनंदमयको लभनेयोग्य कहा है, जीवको लभनेवाला कहा है, यातें जीवका आनंदमयसैं भेद कथन करणेसैं आनंदमय जीव नहीं. इति ॥ १७ ॥

---

१ बुद्धिमें. २ सह-एक कालमैं, ब्रह्मणा-ब्रह्मस्वरूपसे.

कामाच्च नानुमानापेक्षा ॥ १८ ॥

कामात्। च। न। अनुमानापेक्षा। इति प०।

अर्थ–आनंदमयके प्रसंगमैं 'सोऽकामयत' यह कामना सुनी है, यातें अनुमानगम्य जो प्रधान सो भी आनंदमय अंगीकार नहीं. इति ॥ १८ ॥

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ १९ ॥

अस्मिन्। अस्य। च। तद्योगं। शास्ति। इति। प० ॥

अर्थ–अस्मिन् नाम आनंदमय आत्मामैं प्रवुद्धजीवकी तत्योगनाम तत्स्वरूपमुक्तिको शास्त्र कहे है। तथाहि– "यदा हि एव एष एतस्मिन् अदृश्ये अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने अभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सः अभयं गतो भवति। यदा हि एवैष एतस्मिन् उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति" यह ब्रह्मानंदवल्लीके सप्तम अनुवाकमैं कहा है. इसका यह अर्थ है कि अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन ये चार पद ब्रह्मके वोधक हैं, स्थूलदृश्यसैं तादात्म्यरहितको अदृश्यपदसैं ग्रहण किया है; आत्मापदसैं इंद्रियोंका ग्रहण है, तिनसैं तादात्म्यरहितका अनात्म्यपदसैं अंगीकार है; निरुक्तपदसैं सूक्ष्मभूतनका ग्रहण है, तिनसैं तादात्म्यरहितका अनिरुक्तपदसैं ग्रहण है; सर्वके लयस्थानका नाम निलयन है, तासैं रहितका नाम अनिलयन है. इस अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन स्वरूप ब्रह्मविषे अभेदज्ञानकालमैं [1]अभयप्रतिष्ठाको आत्मवेत्ता प्राप्त होवे है. तदनंतर अभयको प्राप्त होवे है. यदा इस आनंदमय ब्रह्ममैं उदर नाम अल्पभी अंतर नाम भेदको देखे है तदा तिसको भय होवे है. इति। उक्तविधसैं आनंदमय पद जीव वा प्रधानका वाचक नहीं, यातें आनंदमय तहां परमात्मा अंगीकृत है. इति सिद्धम्। यह एकदेशीका मत है। भगवान् भाष्यकारका यह सिद्धांत है कि एकदेशीके मतमैं यह दोष है, जैसे पूर्व उक्त श्रुतिवचननमैं आनंदपद है आनंदमय पद नहीं, यातें एकदेशीको आनंदपदकी आनंदमयमैं लक्षणा माननी होवेगी. और मयट्को प्राचुर्यार्थक अंगीकार कियेसैं ब्रह्ममैं लव दुःखप्रसंग सिद्ध हुएसैं आनंदमयपदकी अल्पत्वनिवृत्तिमैं लक्षणा मानके ताको ब्रह्मवादी मानना होवेगा, और "ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" जा वाक्यमैं जो ब्रह्मपद ताकी अवयवमैं लक्षणा माननी होवेगी. और मुखका त्याग और प्रायः पाठका त्याग इतने दोष एकदेशीके मतमैं हैं. और स्वमतमैं "ब्रह्म पुच्छं" जा वाक्यमें जो

---

१ यथा अभय होवे तथा प्रतिष्ठा नाम आत्मभावको प्राप्त होवे है.

पुच्छपद ताका जो अवयवप्राय पाठ ताका त्याग मात्र दोष है। "ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" इस वाक्यमें आनंदमयका अवयवरूप ब्रह्म है वा स्वप्रधान ब्रह्मका ग्रहण है. यह तहां संशय है. एकदेशीके मतमैं जो प्रयोजन कहा था सोई भाष्यकारके मतमैं अंगीकार है। पुच्छपद तहां अवयवका वाचक है. यह पूर्वपक्षमैं अंगीकार है। सिद्धांतमैं 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' इस सूत्रका यह अर्थ है कि आनंदमयपदसैं 'ब्रह्म पुच्छं' इस वाक्यमैं जो ब्रह्मपद सो अंगीकार है. तिस ब्रह्मपदका श्रुतिमें वहु अभ्यास सुना है. याते ब्रह्मपद स्वप्रधान ब्रह्मवाचक है. "असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति चेत् वेद अस्ति ब्रह्मेति चेत् वेद सन्तमेनं ततो विदुः" यह ब्रह्मानन्दवल्लीमें वाक्य है. इसमें ब्रह्मपदका अभ्यास सुना है, यातें ब्रह्मपद स्वप्रधान ब्रह्मवोधक है; अवयववोधक नहीं. ब्रह्म असत् है इसप्रकार जो जाने है सो आप असत् होवे है अर्थात् अपुरुषार्थसंवंधी होवे है. ब्रह्म है इसप्रकार जो जाने है ताको सत्स्वरूप जाने है. अर्थात् तिस अस्तित्वज्ञानसैं सो ब्रह्मवेत्ता अपर पुरुषोंको जाननेयोग्य होवे है. इति। यह श्रुतिअक्षरार्थ है. इति।

'विकारशब्दात् न इति चेत् न प्राचुर्यात्' इसका यह अर्थ है—विकारशब्दात् नाम अवयववाचक. पुच्छशब्दसैं ब्रह्मपदका सामानाधिकरण्य है; अर्थात् उभय पद एक अर्थवाचक है; यातें ब्रह्मपद स्वप्रधान ब्रह्मका वाचक नहीं. इति चेत् नाम उक्त शंका करें तौ संभवे नहीं. तथाहि—सूत्रमैं जो प्राचुर्यपद है सो अवयवप्राय प्रयोग है. आनंदबाहुल्यतावाचक नहीं, यातें ब्रह्मपद अवयववाचक नहीं, अवयवप्राय पाठसैं ही अवयवसिद्धि संभवे है. यातें ब्रह्मपद अवयववाचक नहीं किंतु ब्रह्म पुच्छकी नांई पुच्छ है, अर्थात् सर्वका अधिष्ठान है. प्रतिष्ठा नाम आधार है. यह अर्थ अंगीकार है. इति। "तद्धेतुव्यपदेशात् च" इस सूत्रका यह अर्थ है कि तत्नाम ब्रह्मको सर्वका कारण कथन किया है, यातें भी पुच्छपद आधारका लक्षक है. इति। "मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते" इसका यह अर्थ है कि जो मंत्रमैं ब्रह्म कहा है सोई ब्राह्मणमैं कहा है यातें पुच्छवाक्यमैं ब्रह्मही अंगीकार है. इति॥ "न इतरः अनुपपत्तेः" इसका अर्थ—पुच्छवाक्यमैं ब्रह्मही कथन किया है, इतर नाम जीव नहीं कहा. जो ब्रह्मको अवयव मानें तौ अवयव भी आनंदमयको कहा चाहिये, तिसके अंगीकार कियेसे उत्तरवाक्य 'अनुपपत्तेः' नाम नहीं बनेगा, यातें ब्रह्मपदसैं स्वप्रधान ब्रह्मका ग्रहण है, पुच्छ अवयवका ग्रहण नहीं. इति॥ 'भेदव्यपदेशात् च' इस सूत्रका अर्थ—यह आनंदमय जीव प्रतिबिंबित ब्रह्मानंदको पायके आ-

नंद होवे है, जाविध भेदके कथनसैं पुच्छवचनमें ब्रह्मही अंगीकार है. इति । **'कामात् च न अनुमानापेक्षा'** इसका अर्थ—कामपदसैं आनंदका ग्रहण है. सो आनंद ब्रह्मरूप है, यातें आनंदमयको भी ब्रह्मत्वकी अपेक्षा होवेगी; अर्थात् आनंदमयभी ब्रह्म सिद्ध होवेगा, सो अंगीकार नहीं क्योंकि तिसको ब्रह्म अंगीकार कियेसैं विकारार्थक मयट्का विरोध होवेगा. **'आनंदमयशब्दः ब्रह्मवाचकः, आनंदशब्दत्वात्, आनंदो ब्रह्म इति आनंदशब्दवत्** । यह अनुमानका आकार है. इति । **'अस्मिन् अस्य च तद्योगं शास्ति'** इसका अर्थ—पुच्छवाक्यमें कहा जो ब्रह्म अस्मिन् नाम इस ब्रह्ममैं प्रबुद्ध आनंदमय जीवकी 'तत्योगं' नाम तत्स्वरूपप्राप्तिरूप मुक्तिको शास्त्र कहे है, यातें पुच्छवाक्यमैं ब्रह्म स्वप्रधान निर्विशेष ज्ञेय है. इति सिद्धम् ॥ १९ ॥

अव०—उत्तर सूत्रमें सगुणउपासनाका आरंभ करे हैं. पूर्वपक्षमें और सिद्धांतमें पादसमाप्तिपर्यंत उपासना फल है। छांदोग्यमैं तृतीयअनुवाकमें सुना है ।**"अथ य एषोऽन्तर आदित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेशः आप्रणखात् सर्वएव सुवर्णः । तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्य उदिति नाम, स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ।"** यह कहकर आगे यह कहा है। **"अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैव ऋक् तत्साम तत् उक्थं तत् यजुः तत् ब्रह्म तस्य एतस्य तदेव रूपं यत् अमुष्य रूपम्"** इति ।

अर्थ—उपासनाका आरंभ अथपदका अर्थ है. जो यह शास्त्रप्रसिद्धिसैं सूर्यमंडलमें पुरुष दीखै है सो ज्योतिःस्वरूप है, श्मश्रु तांके ज्योतिरूप हैं, केशभी ज्योतिरूप हैं, नखपर्यंत ज्योतिरूप है, कपिका आस नाम पुच्छभाग तेजस्वी है तत्तुल्य जो पुंडरीक तत्तुल्य इस देवताके नेत्र हैं. तिसका उदिति नाम है सो यह सर्व पापनसैं रहित उदय होवै है. जो उपासक तांको उक्तविधिसैं जाने है सोभी सर्वपापनसैं रहित होवे है. इति । जो यह नेत्रोंमैं पुरुष दिसे है सोई ऋक् है, सोई साम है, सोई उक्थ है, सोई यजु है, सोई ब्रह्म है, इसका सोई रूप है, जो उसका है. इति । उक्त वाक्यमैं जो पुरुष कहा है सो विद्याकर्मोंके बलसैं उक्त तेजयुक्त कोई संसारी है वा नित्यसिद्ध परमेश्वर है? यह तहां संदेह है । तहां यह पूर्वपक्ष है कि श्रुतिने जे हिरण्यश्मश्रु आदिक रूप कथन किये हैं ते नित्यसिद्ध परमेश्वरके संभवें नहीं यातें सो पुरुष कोई संसारी है. इति । तहां सूत्रकार स्वसिद्धांत कहे हैं—

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ २० ॥

अन्तः । तत्धर्मोपदेशात् । इति प० ।

अर्थ–नित्यसिद्ध परमेश्वरके सर्व पापराहित्यादि जे धर्म तिन धर्मनका उक्त वाक्यमैं उपदेश किया है, यातें जो सूर्यमैं और नेत्रोंमैं पुरुष सुना है सो परमेश्वर है; संसारी नहीं. उक्त धर्म परमेश्वरमैं संभवे हैं, संसारीमैं संभवें नहीं. इति ॥ २० ॥

भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ २१ ॥

भेदव्यपदेशात् । च । अन्यः । इति । प० ।

अर्थ–सूर्यशरीरका अभिमानी जो जीव तासैं परमात्माका भेद कहा है यातें सूर्य और नेत्रोंके अंतर जो पुरुष कहा है सो आदित्यशरीराभिमानी जीवसैं अन्य नाम भिन्न है । तथाहि–"य आदित्ये तिष्ठन् आदित्यात् अन्तरो यम् आदित्यो न वेद यस्य आदित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयति एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः" इत्यादिक श्रुतिनमैं आदित्यादिकोंसैं तिनका अंतर्यामी भिन्न प्रसिद्ध प्रतीत होवे है. श्रुतिअर्थ–जो सूर्यमैं स्थित हुआ सूर्यके अंतर है, जिसको सूर्य नहीं जाने है, सूर्य जिसका शरीर है, जो सूर्यको अंतर प्रेरणा करे है, सो तुम्हारा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है. इति । यह वाक्य बृहदारण्यकके तृतीय अध्यायमैं है. इति ॥ २१ ॥

अव०–पुनः छांदोग्यमैं तृतीयप्रपाठकके अष्टमखंडमैं यह प्रसंग है कि शालावत्य ब्राह्मणने जैबलि राजासैं पूंछा था कि सामकी कौन गति है? उसने कहा स्वर है. स्वरकी कौन गति है? उसने कहा प्राण है. प्राणकी कौन गति है? उसने कहा अन्न. अन्नकी कौन गति है? उसने कहा जल. जलकी कौन गति है? उसने कहा यह लोक । तब उसने कहा इस लोककी कौन गति है? तिसका उत्तर है–"आकाश इति ह उवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशे प्रत्यस्तं यान्ति आकाशो हि एव एभ्यो ज्यायान् आकाशः परायणः" इति ॥

अर्थ–शालावत्यने जब दाल्भ्यसे इस लोककी गति पूंछा तब उसने उत्तर नहीं दिया. जैबलि नाम राजाने उत्तर दिया कि, सर्वका गति नाम अधिकरण आकाश है. सर्वभूत आकाशसैं उपजे हैं, आकाशमैं लय होवे हैं. इन सर्वसैं

आकाश श्रेष्ठ है. आकाश ही सर्वका स्थान है. इति । उक्त विषयवाक्यमैं यह संदेह है कि आकाशशब्दसैं भूताकाशका ग्रहण है वा ब्रह्मका ग्रहण है? इति । आकाशसैं वायुकी उत्पत्ति कही हैं यांते आकाशशब्दसैं तहां भूताकाशका ग्रहण है, यह पूर्वपक्ष है. तहां यह सूत्रकारका समाधान है—

आकाशस्तल्लिङ्गात् ॥ २२ ॥

आकाशः । ततल्लिङ्गात् । इति प० ।

अर्थ—तत् नाम ब्रह्मके जे महाभूतरचनादिक लिंग हैं ते उक्तवाक्यमें प्रतीत होवेंहैं यातें आकाशपदसैं तहां ब्रह्मका अंगीकार है. जहां आकाशसैं वायुकी उत्पत्ति कही है तहां आकाशउपहित चेतनसैं वायुका जन्म अंगीकृत है, केवल आकाशसैं वायुका जन्म मानेसैं चेतनकारणवोधक श्रुतिसैं विरोध होवेगा, और आकाशसैं सर्वभूतनकी उत्पत्तिका कथनभी असंगत होवेगा. इति ॥ २२ ॥

अव०—छांदोग्यमैं आकाशवाक्यके अनंतर यह प्रसंग है, कि चाक्रायण नाम कोई कुरुक्षेत्रवासी ऋषि था; सो कुरुक्षेत्रमैं दुर्भिक्ष हुयेसे अपर देशमैं चला गया और जायाको भी साथ लेगया. एक ग्राममैं जाकर रहा. तहां हस्तिवान् हस्तीको कुल्माष (घुघुरी) खिलाता था और आपभी हस्तीके साथ खाता था, तिससैं ऋषिने भिक्षा मांगी. तव उस हस्तिवानने ताको उच्छिष्ट अन्न दिया, फिर हस्तिवान् उच्छिष्ट जल देने लगा तौ ऋषिने नहीं लिया, तव हस्तिवानने कहा कि अन्न तो उच्छिष्ट लिया, जल नहीं लेते? तव ऋषिने कहा कि अन्न हमको मिलता नहीं जल जहां तहां वहुत मिलेहै. यह कह अन्न खाकर कुछ शेष रहा सो भार्याको दिया, उसने लेकर धरछोंड़ा. दूसरे दिन उस उच्छिष्ट अन्नको भार्यासैं लेकर खाया; खाकर उस ग्राममें यज्ञ होता था तहां चलागया. तहां जाकर प्रस्तोताको कहा कि हे प्रस्तोतः! जा देवताकी तू स्तुति करे है तांको विना जानेसैं हमारे आगे स्तुति करेगा तौ तेरा शिर गिरपड़ेगा. तव यजमानने कहा भगवन्! आप कौन हैं? तवउसने कहा कि मैं चाक्रायण उषस्ति हौं । अर्थात् जितना धन और ब्राह्मणोंको दिया था उतना धन उनको देकर यज्ञकर्त्ता किया. फिर चाक्रायणने प्रस्तोताको कहा कि जिस देवताकी स्तुति करे है, उस देवताको जाने है? प्रस्तोताने भीत होकर पूंछा सो देवता कौन है? तव चाक्रायणने यह वाक्य उपदेश किया । "प्राण इति होवाच सर्वाणि

ह वा इमानि भूतानि प्राणादेव अभिसंविशन्ति प्राणम् अभ्युज्जिहते सा एषा देवता" इति ॥ अर्थ–जा देवताकी तुम स्तुति करते हौ, सो प्राण है. इसीसैं सर्व भूत अभ्युज्जिहते–नाम उपजें हैं. इसीमें लय होवे हैं. सो यह देवता है. इति । "प्राणस्य प्राणः" इत्यादिक वाक्यनमैं प्राणशब्द ब्रह्मका वाचक प्रतीत होवेहै और प्राणपद वायुका वाचक है यह प्रसिद्ध है. यातें प्राणशब्दसैं उक्तवाक्यमैं ब्रह्मको ग्रहण किया चाहिये वा वायुको ग्रहण किया चाहिये? यह विषयवाक्यमैं संशय संभवे है. प्रसिद्धिके बलसैं प्राणपदकरकें वायुको पूर्वपक्षमैं ग्रहण कियेपर यह उत्तरका सूत्र हैः—

अत एव प्राणः ॥ २३ ॥

अतः । एव । प्राणः । इति प० ।

अर्थ–अतः नाम उत्पत्तिआदिक लिंगनसैं प्राणशब्दकरके चाक्रायणने ब्रह्मका उपदेश किया है, वायुका नहीं. वायुसैं सर्वभूतनकी उत्पत्ति आदिक संभवे नहीं, यातें ब्रह्ममैं चाक्रायणका तात्पर्य है. इति ॥ २३ ॥

अव०–छांदोग्यके तृतीय प्रपाठकमैं यह वाक्य है । "गायत्री वा इदं सर्वभूतं यदिदं किंच वाग् वै गायत्री वाग् वा इदं सर्वम्" इस वाक्यमैं गायत्रीको सर्वरूप कहकर आगे भूत १ पृथिवी २ शरीर ३ हृदय ४ यह गायत्रीके चार पाद कहे हैं. आगे यह वाक्य है । "तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्य अमृतं दिवि" इति । इससे आगे प्राणादि पंचवायुवोंको स्वर्गलोकके द्वारपाल कह कर यह कहा है—"अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः । तत् यत् इदम् अन्तः पुरुषे ज्योतिः तस्य एषा दृष्टिः" इति ।

अर्थ–यह सर्व चराचर भूत गायत्री छंदस्वरूप हैं, वाक्य गायत्री है, यह सर्वभूत वाक्यरूप हैं. जितने चतुष्पद हैं उतना विभूतिविस्तार है. तावत् इसकी महिमा है. इससैं पुरुष उत्तम है । सर्वभूत इसका एक पाद हैं. तीन पाद दिवि नाम स्वप्रकाश आत्मामैं स्थित हैं । अथ नाम गायत्रीउपाधिक ब्रह्म उपासनासैं अनंतर जो अतः नाम स्वर्गलोकके ऊपर दिव नाम प्रकाशमान है सोई पुरुषके अंतर ज्योति है. इति । इस ज्योतिवाक्यमैं ज्योतिपदसैं सूर्यादिक ज्योतिका ग्रहण है, वा ब्रह्मका ग्रहण है? यह संदेह है. पूर्वपक्षमें लोकप्रसिद्धिसैं और स्वर्गके ऊपर है जा मर्यादा श्रवणसैं भौतिक ज्योतिके अंगीकार कियेसैं यह समाधान हैः—

ज्योतिश्चरणाभिधानात् ॥ २४ ॥

ज्योतिश्चरणाभिधानात् । इति । प० ।

अर्थ—'पादोऽस्य' जा उक्तवाक्यमैं चरणविधान किये हैं, यातें ज्योतिपदसैं उत्तरवाक्यमें ब्रह्म अंगीकृत है. भौतिक तेजका अंगीकार नहीं. इति ॥ २४ ॥

छन्दोभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदात्तथाहि दर्शनम् ॥ २५ ॥

छन्दोभिधानात् । न । इति । चेत् । न । तथा । चेतोऽर्पणनिगदात् । तथाहि । दर्शनम् । इति प० ।

अर्थ—ननु पूर्ववाक्यके आरंभमें गायत्री छंदको उपास्य करके विधान किया है, यातें उत्तरवाक्यमें ज्योतिपदसैं ब्रह्मका ग्रहण संभवे नहीं; यह शंका करें तौ समाधान श्रवण करके तथा नाम छंदद्वारा गायत्रीगत ब्रह्ममैं चित्तके अर्पण नाम समाधानका आरंभवाक्यमैं 'निगदात्' नाम विधान किया है, यातें शंका संभवे नहीं 'तथाहि दर्शनम्' नाम अपर श्रुतिमैंभी उपाधिद्वारा उपासना देखी है यातें आरंभवाक्यमैं गायत्रीपदसैं ब्रह्मका अंगीकार है, छंद ग्रहण नहीं. इति ॥२५॥

भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् ॥ २६ ॥

भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेः । च । एवम् । इति प० ।

अर्थ-भूत, पृथिवी, शरीर, हृदय यह ४ चार पाद गायत्रीके कहे हैं; इनका जो व्यपदेश है सो ब्रह्मविषे 'उपपत्तेः' नाम संभवेहै यातें आरंभवाक्यमें एवं नाम ब्रह्मही अंगीकृत है. छंदका ग्रहण नहीं है, यातें जो ब्रह्म गायत्रीवाक्यमें कहा है सोई ज्योतिवाक्यमैं अंगीकृत है. इति ॥ २६ ॥

उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात् ॥ २७ ॥

उपदेशभेदात् । न । इति । चेत् । न । उभयस्मिन् । अपि । अविरोधात् । इति प० ।

अर्थ–ननु 'पादोऽस्य' इस वाक्यमैं स्वर्गको आधार कहा है 'यदतः

परम्' इस वाक्यमैं स्वर्गको अवधि करके कहा है यातें उक्त उपदेशके भेदसैं ज्योतिवाक्यमैं गायत्रीउपाधिक ब्रह्मको मानना संभवे नहीं. या शंकाका यह उत्तर है कि उभयस्मिन् नाम उभय वाक्यनमैं ब्रह्मप्रत्यभिज्ञा होवे है; यातें ब्रह्मप्रत्यभिज्ञाका अविरोध होनेसैं ज्योतिपद ब्रह्मका वाचक है. भौतिक तेजका वाचक नहीं. इति ॥ २७ ॥

अव०–कौषीतकि ब्राह्मणमैं गाथा है कि कोई प्रतर्दन राजा था सो किसी कालमैं इंद्रके गृहमैं गया था. ताको इंद्रने कहा वर मांग. प्रतर्दनने कहा जो मनुष्यको अतिहित हो सो कहो. तदा इंद्रने यह उपदेश किया । "प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं माम् आयुरमृतम् इति उपास्स्व" इति । यावत् प्राण रहे है तावत् आयु होवे है यांते वाक्यमैं आयुरूप कहा है. इस वाक्यमैं प्राणशब्द इंद्रका वाचक है, वा वायुका वाचक है, वा जीवका वाचक है, वा परमात्माका वाचक है? यह संशय है. और प्राणशब्द प्रसिद्धवायुका वाचक है, यातें प्राणपदसैं वायुका ग्रहण है; यह पूर्वपक्ष है. तहां सूत्रकार स्वसिद्धांत कहे हैं:—

प्राणस्तथानुगमात् ॥ २८ ॥

प्राणः । तथा । अनुगमात् । इति प० ।

अर्थ–यथा अपर अनेक श्रुतिनमैं प्राणशब्द ब्रह्मबोधक है तथा उक्तवाक्यमैं भी अनुगमात् नाम प्राणपद ब्रह्मबोधक प्रतीत होवेहै यांतें इंद्रके वाक्यमैं प्राणपदसैं ब्रह्मका उपदेश है, वायुका नहीं. तथाहि—इंद्रवाक्यका विचार कियेसैं प्रतीत होवेहै कि राजाने कहा था जो अतिहित है सो कहो, सो प्राणवायुको अतिहित कहना संभवे नहीं. और अंतमैं कहा है कि जो अधिकारी हमको ब्रह्मरूपसैं अनुभव करेहै ताकी मोक्षमैं कोई प्रतिबंध करे नहीं. यातें भी प्राणपद तहां ब्रह्मबोधक है, वायुबोधक नहीं. इति ॥ २८ ॥

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसबन्धभूमा ह्यस्मिन् ॥ २९ ॥

न । वक्तुः । आत्मोपदेशात् । इति । चेत् । अध्यात्मसम्बन्धभूमा । हि । अस्मिन् । इति । प० ।

अर्थ–वाक्यवक्ता जो इंद्र तिसने स्व आत्माका उपदेश किया है; यातैं प्रा-

णपदसैं ब्रह्मका ग्रहण संभवे नहीं. इस शंकाका आधे सूत्रसैं उत्तर कहे हैं. कौषीतकिमैं जिस अध्यायमैं यह गाथा है तहां अध्यात्मसंबंध नाम परमात्मासंबंधका भूमा नाम बाहुल्यतासैं लाभ होवेहै. यातैं इंद्रवाक्यमैं प्राणसैं ब्रह्मका उपदेश है. वक्ता आत्माका उपदेश नहीं. इति ॥ २९ ॥

अवत०-ननु वक्ता इंद्रने आत्माका उपदेश कैसे किया है? या शंकाका उत्तर सूत्रकार कहे हैं:—

शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् ॥ ३० ॥

शास्त्रदृष्ट्या । तु । उपदेशः । वामदेववत् । इति । प० ।

अर्थ०-हमको तू जान यह जो इंद्रका उपदेश है सो शास्त्रदृष्टिसैं है यह जानना चाहिये. यथा वामदेवने शास्त्रदृष्टिसैं कहा है कि 'मैं मनु हौं, मैं सूर्य हौं' इति । तथा इंद्रने भी शास्त्रदृष्टिसैं कहा है. इति ॥ ३० ॥

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् ॥ ३१ ॥

जीवमुख्यप्राणलिङ्गात् । न । इति । चेत् न । उपासात्रैविध्यात् । आश्रितत्वात् । इह । तत्योगात् । इति प० ।

अर्थ—ननु पूर्व जो कहा है कि वक्ता आत्माका उपदेश नहीं सो सत्य है, तथापि सो वाक्य ब्रह्मबोधकभी नहीं किंतु जीवलिंगसैं और मुख्यप्राणके लिंगसैं जीवका और मुख्य प्राणका बोधक है. हमको जान जा इंद्रकथनसैं वाक्यविशिष्ट जीव प्रतीत होवे है. प्राणोंसैं शरीर चेष्टा करे है. सो प्राणका लिंग हैं; यातैं तहां जीववाक्य, मुख्यप्राणवाक्य, ब्रह्मवाक्य जाविध वाक्यभेदसैं वाक्यत्रयका ग्रहण है; केवल ब्रह्मवाक्य अंगीकार नहीं. इति । इस शंकाका यह उत्तर श्रवण करके इंद्रके उपदेशमैं जो त्रय वाक्य मानेंगे तौ उपासा नाम उपासना भी त्रयप्रकारकी सिद्ध होवेगी, सो इष्ट नहीं, यातैं इंद्रके वाक्यका सम्यक् विचार कियेसैं ब्रह्मबोधक एक वाक्य सिद्ध होय है. वाक्यभेद मानना असंगत है. और अपर वाक्यनमैं भी ब्रह्मलिंगनके बलसैं प्राणशब्दकी वृत्तिके ब्रह्ममैं 'आश्रितत्वात्' नाम अंगीकार किया है, यातैं 'इह' नाम इंद्रवाक्यमैं भी तत् नाम अतिहितादिक ब्रह्मके लिंग कहे हैं, तिन लिंगनके योग नाम

संबंधसैं ब्रह्मकाही इंद्रवाक्यमैं उपदेश है. जीवका वा मुख्यप्राणका उपदेश नहीं। "न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन। इतरेण तु जीवति यस्मिन् एतौ उपाश्रितौ" इत्यादिक वाक्यनमैं प्राणके व्यापारको ईश्वराधीन कथन किया है, यातें सो वाक्य ब्रह्मका बोधक है. प्राणबोधक नहीं. उक्त श्रुति कठकी पंचमीं वल्लीमैं है. इति॥ ३१॥

इति सूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः॥ १॥

अथ द्वितीयपादप्रारम्भः।

इस पादके दो अधिक तीस सूत्र हैं; तिनमें सप्त अधिकरण हैं, पचीस गुणरूप हैं. तथाहिः—

सूत्रसंख्या।	अधिकरण।	गुण	प्रसंग.
१	अ०	+	मनोमयउपास्यविचार.
२	+	गु०	मनो०
३	+	गु०	मनो०
४	+	गु०	मनो०
५	+	गु०	मनो०
६	+	गु०	मनो०
७	+	गु०	मनो०
८	+	गु०	मनो०
९	अ०	+	अत्ताविचार.
१०	+	गु०	अ०
११	अ०	+	गुहाप्रविष्टविचार.
१२	+	गु०	गु०
१३	अ०	+	नेत्रगतका विचार.
१४	+	गु०	ने०
१५	+	गु०	ने०
१६	+	गु०	ने०
१७	+	गु०	ने०
१८	अ०	+	अन्तर्यामिविचार.

१९	+	गु०	अ०
२०	+	गु०	अ०
२१	अ०	+	अदृश्यत्वादिगुणवान्वि०
२२	+	गु०	अ०
२३	+	गु०	अ०
२४	अ०	+	वैश्वानरविचार.
२५	+	गु०	वै०
२६	+	गु०	वै०
२७	+	गु०	वै०
२८	+	गु०	वै०
२९	+	गु०	वैश्वानरस्थानविचार.
३०	+	गु०	वै०
३१	+	गु०	वै०
३२	+	गु०	वै० इति
३७	७	२५	

अवतरणिका—जिन वाक्यनमैं ब्रह्मके स्पष्ट लिंग प्रतीत होवेहैं ते वाक्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जगत्कारण ब्रह्मके बोधक हैं यह अर्थ प्रथम पादमैं कहा है और जिन वाक्यनमैं ब्रह्मके अस्पष्ट लिंग हैं तिन वाक्यनको दूसरे तीसरे पादकरके ब्रह्मबोधक सिद्ध करें हैं. तहां भी इस पादमैं उपास्यबोधक वाक्यनका विचार है. तीसरे पादमैं ज्ञेयबोधक वाक्यनका सूत्रकार विचार करेंगे।

छांदोग्यके तृतीय प्रपाठकमैं यह वाक्य है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान्' इति शान्त 'उपासीत' "मनोमयः[1] प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्पः आकाशात्मा[2] सर्वकर्मा[3] सर्वकामः सर्वगन्धः[4] सर्वरसः। एष य आत्मान्तर्हृदय एतत् ब्रह्म एतमितः[5] प्रेत्य अभिसंभवितास्मीति" इति।

अर्थ—यह चराचर जगत् ब्रह्मस्वरूप है यामैं संदेह नहीं. तहां हेतु कहे हैं. तज्जलानिति। तज्ज। तल्ल। तदन। जाविध श्रुतिपदच्छेद है. तासैं जो उपजे सो तज्ज कहिये है, तामैं जो लय होवे सो तल्ल कहिये है, तामैं जो चेष्टा करे सो तदन कहिये है. अर्थात् तज्ज तल्ल तदन जा त्रय पदनसैं सं-

१ मनःप्रायः. २ आकाश इव आत्मा यस्य. ३ जगत् सर्वं कर्म अस्य इति. ४ सर्वे गन्धा अस्य. ५ आत्मानम्.

सारकी उत्पत्ति लय पालनका ग्रहण है. ते त्रय ब्रह्मसैं होवे हैं यातें सर्व जगत् स्वकारण ब्रह्मरूप है. सर्वको ब्रह्मरूप होनेसैं द्वेषादिकोंसैं रहित शात हुआ उपासना करे. किसकी उपासना करे जा अभिलाषासैं कहा है '**मनोमयः प्राणशरीरः**' इत्यादि. एष नाम उक्तविशेषणवान् हमारा आत्मा हृदयके अंतर है, यही ब्रह्म है, इसको यह शरीर छोड़के हम प्राप्त होवेंगे. इति। इस उक्त वाक्यमैं मनोमयत्वादिगुणवान् उपास्य जीव है वा परमात्मा है? यह संदेह है । '**दिव्यो हि अमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः**' जा द्वितीय मुंडकमैं ब्रह्मको मनआदिकोंसैं रहित कथन किया है यातें पूर्ववाक्यमैं जीव उपास्य कहा हैं जा पूर्वपक्षका सूत्रकार भगवान् समाधान करे हैंः—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ १ ॥

सर्वत्र । प्रसिद्धोपदेशात् । इति । प० ।

अर्थ–सर्वत्र नाम सर्व वेदांतवचनमैं जगत्कारणत्वरूपसैं प्रसिद्ध जो ब्रह्म तिसका ही '**सर्वं खलु इदं ब्रह्म**' इत्यादिक वाक्यनमैं उपदेश है, यातें मनोमयत्वसें जीवका उपदेश नहीं; अरु ब्रह्म सर्वस्वरूप है यातें ते मनोमयत्वादि गुण तांमैं संभवे हैं, अतएव विरोध नहीं. इति ॥ १ ॥ किंच-—

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

विवक्षितगुणोपपत्तेः । च । इति । प० ।

अर्थ—उपासनामैं विवक्षित नाम अंगीकार जे भारूपत्व सत्यसंकल्पत्वादि गुण ते ब्रह्मविषेही उपपत्तेः नाम संभवे हैं, जीवमैं नहीं । और '**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः**' जा श्वेताश्वतरके चतुर्थ अध्यायमैं जीवधर्म ब्रह्मविषे दिखाये हैं, यातें मनोमयत्वादिगुणवान् उपास्य ब्रह्म अंगीकार है, जीव नहीं. इति ॥ २ ॥

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥ ३ ॥

अनुपपत्तेः । तु । न । शारीरः । इति । प० ।

अर्थ–सत्यसंकल्पादि गुण जीवमैं **अनुपपत्तेः** नाम संभवे नहीं, यातें मनो-

मयत्वादिगुणवान् ब्रह्मका तहां अंगीकार है. शारीर नाम जीवका अंगीकार नहीं. इति ॥ ३ ॥ किंच ।

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॥ ४ ॥

कर्मकर्तृव्यपदेशात् । च । इति । प० ।

अर्थ-पूर्वसूत्रका "न शारीरः" इतना पाठ इस सूत्रमें मिलायके सूत्रका यह अर्थ है । 'एतम् इतः प्रेत्य अभिसंभविता अस्मि" जा उक्त श्रुतिमैं 'एतं' जापदसैं मनोमयत्वादिगुणवान् उपास्यको कर्म किया है 'अभिसंभवितास्मि' जा वाक्यमैं उपासकको कर्ता कहा है. एक जीवको कर्म और कर्ता कहिना संभवे नहीं, यांते कर्मकर्ताभेदकथनसैं भी मनोमयत्वादिगुणवान् जीव उपास्य नहीं किंतु ब्रह्म है. इति ॥ ४ ॥ किंच—

शब्दविशेषात् ॥ ५ ॥

शब्दविशेषात् । इति । प० ।

"अन्तर आत्मनि पुरुषो हिरण्मयः" जा श्रुतिमैं सप्तम्यंत आत्मपदसैं जीवका ग्रहण है. प्रथमांत पुरुषपदसैं परमात्माका ग्रहण है. तैसे मनोमयत्वादिगुणविशिष्ट परमात्माके विधायक प्रथमांत मनोमयादिपद हैं, याते तहां परमात्माका अंगीकार है. जीवका नहीं. इति ॥ ५ ॥

अव०-ननु तुम्हारे मतमैं जीवब्रह्मका अभेद है यांते कर्मकर्ताभेदकथन असंगत है; जा शंकाका उत्तर कहे हैं—

स्मृतेश्च ॥ ६ ॥

स्मृतेः । च । इति । प० ।

अर्थ-"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" जा स्मृतिमैं जीवका ईश्वरसैं कल्पित भेद कहा है; यांते कर्मकर्ताभेदव्यपदेश संभवे है. इति ॥ ६ ॥

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ॥ ७ ॥

अर्भकौकस्त्वात् । तत्व्यपदेशात् । च । न । इति । चेत् । न । निचाय्यत्वात् । एवम् । व्योमवत् । च । इति प० ।

अर्थ–ननु अर्भकपद अल्पवाची ओकस्पद स्थानवाचक है. अल्प स्थान होवे जिसका सो अर्भकौकस् कहिये है, अर्थात् अल्प जो हृदयस्थान तामैं हृदयपरिमाणवान् परमात्माकों उपास्य कहिना संभवे नहीं. और "अणीयान्" इत्यादि वाक्यमैं तत्व्यपदेशात् नाम उपास्यको सूक्ष्म कहा है यांते आराग्रमात्र जीव उपास्य है परमात्मा नहीं; जा शंकाका आधे सूत्रसैं समाधान करैहैं. कि अल्पस्थानत्व–सूक्ष्मत्वादिगुणविशिष्ट परमात्मा ही पूर्ववाक्यमैं निचाय्य नाम उपास्यकरके विधान किया है. यथा सर्वलोकाधीश परमात्मा श्रीरामचंद्रको अयोध्याधीश कहे हैं और यथा शालग्राममैं विष्णुबुद्धि कही है तथा उपासनार्थ अल्पस्थानमैं परमात्माको उपास्य कहिना संभवे है, और यथा आकाश सर्वगत है तथापि सूचीआदिक छेदसै अल्पस्थान और सूक्ष्म कहिये है तथा व्यापक ब्रह्मको कहिना भी संभवे है. यांते तहां ब्रह्म उपास्य है, जीव नहीं. इति ॥ ७ ॥

सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ॥ ८ ॥

सम्भोगप्राप्तिः। इति। चेत्। न। वैशेष्यात्। इति प०।

अर्थ–ननु परमात्माको आकाशवत् व्यापक मानेसैं जीवकी नाई सुखदुःखका अनुभवरूप जो भोग तांकी प्राप्ति ईश्वरको भी होनी चाहिये; जा शंका करें तौ विशेषतारूप हेतुसे संभवे नहीं. क्योंकि जीव तो धर्माधर्मका कर्ता है, जो कर्ता होवे है सो भोक्ता होवे है; यांते धर्माधर्मके फलरूप सुखदुःखका अनुभवरूप भोग जीवको संभवे है. परमात्मा जीवसैं विलक्षण है; यांते जीवसैं परमात्मामैं अत्यंत विशेषता है. यांते पूर्ववाक्यमैं परमात्मा उपास्य है जीव नहीं. इति। पूर्व अधिकरणमैं पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष उभयमैं उपासना फल है. आगेके अधिकरणमैं पूर्वपक्षमैं उपासनाफल है. सिद्धांतमैं ब्रह्मबोध फल है ॥ ८ ॥

अव०–कठकी द्वितीया वल्लीमैं यह वाक्य है। "न जायते म्रियते वा विपश्चित् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ हन्ता चेत् मन्यते हन्तुँ हतश्चेत् मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ न अशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः। मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः" इति. इस अंतके मंत्रमैं यह कहा है:–

कि जातिसैं प्रसिद्ध जे ब्राह्मण क्षत्रिय ते उभय जा परमात्माके अन्नकी नांई ओदन हैं और मृत्यु जांका उपसेचन है अर्थात् ओदनके ऊपर शाक है; तांको कौन जाने है? सो जाने है जो प्रज्ञानसाधनवान् है. इति । इस उक्तवाक्यमैं कोई अत्ता अर्थात् सर्वका भक्षक प्रतीत होवे है, सो जीव है वा अग्नि है, वा परमात्मा है, यह तहां संदेह है. पूर्वपक्षमैं अग्निआदिकका अंगीकार कियेसैं यह सूत्रकारका सिद्धांत है—

अत्ता चराचरग्रहणात् ॥ ९ ॥

अत्ता । चराचरग्रहणात् । इति प० ।

अथ—श्रुतिमैं ब्राह्मण क्षत्रिय सर्वचराचरका उपलक्षण हैं तिस सर्व स्थावरजंगमका भक्षक सुना है; यातें तहां अत्ता नाम भक्षक जो कहा है सो परमेश्वर कहा है, जीवादिक नहीं. परमेश्वरविना अपरको सर्वभक्षकत्व संभवे नहीं. इति ॥ ९ ॥ किंच—

प्रकरणाच्च ॥ १० ॥

प्रकरणात् । च । इति प० ।

अर्थ—'न जायते' यह पूर्वप्रकरण परमात्माका है; यातें सर्वअत्ता परमात्मा है, जीवादि नहीं. इति । कठश्रुतिवचनोंका यह अक्षरार्थ है—'न जायते' इनसैं पूर्व ओंकारउपाधिक आत्माका स्वरूप कहा है. 'न जायते' इसकरके उपाधिरहित आत्माका स्वरूप कहे हैं. अनित्यवस्तु अनेक विकारवान् होवे है. तांमैं उत्पत्ति, नाश यह आदिअंतके विकार हैं, तांका आत्मामैं 'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' यह वाक्य निषेध करे है. विपश्चित् नाम मेधावी अर्थात् अलुप्तचैतन्यस्वभाव आत्मा जन्मे और मरे नहीं; किंच अयम् (यह) आत्मा कुतश्चित् नाम किसी कारणसैं न बभूव नाम उपजा नहीं और इस आत्मासैं कश्चित् नाम कोईभी उपजा नहीं; यातें आत्मा अज और नित्य है. 'शाश्वत' नाम अपक्षयरहित है. यातें पुराण है अर्थात् वृद्धिरहित है. जन्मादिक धर्म देहके हैं आत्माके नहीं; यातें शरीरके हन्यमाने नाम विनाश हुए न हन्यते नाम आत्माका विनाश होवे नहीं. जो उक्तस्वरूप आत्माको देहमात्रमैं आत्मदृष्टिवान् हंता मारनेका चिंतन करे और अपर कोई मृत हुए माने ते उभयही स्वआत्माको जानें नहीं. आत्मा विकाररहित है. याते किसीको मारे नहीं और किसीसैं मरे नहीं. आत्माको इस प्रकार जाने. आत्मा अणुसैं अणु है,

महानसैं महान् है, सर्व जीवोंके हृदयमें स्थित है, ताको अक्रतु नाम अकाम अर्थात् विषयअभिलाषारहित देखे हैं याते धातुः नाम इन्द्रियोंके प्रसादसैं आत्माकी महिमा नाम उक्त विकाररहित स्वरूपको अकाम पुरुष देखे हैं, तातें अनंतर शोकरहित होवे हैं. अशांत मनवान् तांको देखे नहीं किंतु ब्रह्मज्ञानसैं इस आत्माको प्राप्त होवे है. जिस आत्माके ब्राह्मण और क्षत्रिय ओदन हैं, मृत्यु जांका उपसेचन है अर्थात् शाक है, सो आत्मा यत्र नाम जा स्वमहिमामें वर्त्ते है; तत्स्वरूप आत्माको इत्था नाम इत्थम् अर्थात् पूर्वउक्तसाधनवान् अधिकारीकी नांई कः नाम साधनरहित कौन वेद नाम जाने है? अर्थात् साधनरहित कोई नहीं जाने है. इति ॥ १० ॥

अव०–उक्त श्रुतिके आगे कठवल्लीमें यह श्रुति है। "ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः" इति। इसका यह अर्थ है कि प्राप्तृ प्राप्य गंतृ गंतव्यके विवेचनके अर्थ इनमें दो आत्मा अंगीकार किये हैं. सुकृत् नाम कर्मनका ऋतम् नाम अवश्य भोक्तव्य जो फल तांको पीतेहुए लोक नाम देहमें जो बुद्धिरूप गुफा तांमें प्रवेशवान् है, यद्यपि फलभोक्ता एक है तथापि तत्संबंधसैं उभय भोक्ता कहे हैं. पर जो ब्रह्म तांका जो अर्ध नाम स्थान सो परार्ध्य कहिये है अर्थात् हृदयका नाम है, तिस परम नाम उत्तम हृदयमें जो आकाशरूप गुफा तांमें प्रविष्टौ नाम ते उभे प्रवेश कर स्थित हैं. छायातपौ नाम ते उभे यथा छाया धूप परस्पर विरोधी हैं तथा कर्ता अकर्तारूपसैं परस्पर विरोधी हैं. उक्त विधिसैं तिनको ब्रह्मवेत्ता कहे हैं, और पंचाग्निउपासक कहे हैं. जे अग्नि स्थापन करें तिनको त्रिणाचिकेता कहे हैं. तेभी तिनको उक्त विधिसैं कहे हैं. इति। उक्त वाक्यमैं दो भोक्ता कहे हैं ते बुद्धि और जीव हैं वा जीव और परमात्मा हैं? यह तहां संदेह है। परमात्माको भोक्ता कहिना और तांका गुफामें प्रवेश कहिना संभवे नहीं; यांते जीव और बुद्धिका तहां ग्रहण है. जा शंकाका उत्तर कहे हैं—

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ ११ ॥

गुहाम्। प्रविष्टौ। आत्मानौ। हि। तत्दर्शनात्। इति प०।

अर्थ–आत्मानौ नाम जीव और परमात्मा उभे ही आत्माशब्दके वाच्य हैं यातें गुफामें प्रवेशवान् जीव और परमात्मा है, जीव और बुद्धि नहीं. उभे कर्मफलभोक्ता सुने हैं, तांमें एक आत्मा है यातें दूसराभी आत्मा मानना

चाहिये, तद्दर्शनात् नाम यह अर्थ लोकमें देखा है। यथा "अस्य गोः द्वितीयः अन्वेष्टव्यः" जा कथन कियेसैं दूसरी गौही अन्वेष्टव्य है. मनुष्य अन्वेष्टव्य नहीं. तथा प्रसंगमैं भी चेतनत्व सामान्यसैं जीव परमात्मा उभयका ग्रहण है. इति ॥ ११ ॥ किंच—

विशेषणाच्च ॥ १२ ॥

विशेषणात् । च । इति प० ।

अर्थ–तृतीय मुंडकके आरंभमैं यह वाक्य है। "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन् अन्योऽभिचाकशीति । समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशम् अस्य महिमानमिति वीतशोकः" इति ॥ अर्थ–दो पक्षी आपसमैं सखा एक वृक्षमैं स्थित हैं, तिनमैं एक फलको खाता है दूसरा नहीं खाता हुआ प्रकाशे है। समानवृक्षमैं निमग्न जो जीव सो अविद्याकरके मोहको प्राप्त हुआ निरंतर शोक करे है. यदा ध्यानयोग्य बिंबरूप ईश्वरको स्वआत्माकरके जाने है तदा परमात्माके स्वरूपको प्राप्त होवे है और वीतशोक होवे है। इस मुंडकवचनमैं परमात्माका मंतव्य विशेषण भान होवेहै और जीवका मंतृविशेषण भान होवेहै. परमात्माका गंतव्य विशेषण भान होवै है, जीवका गंतृविशेषण भान होवेहै. यातें कठवाक्यमैं गुहाविषे प्रवेशवान् जीव और परमात्मा है बुद्धि और जीव नहीं. इति ॥ १२ ॥

अव०–छांदोग्यके चतुर्थ प्रपाठकमैं यह कहा है कि कोई उपकोशल ब्राह्मण सत्यकाम ब्राह्मणका शिष्य था, सो सत्यकाम उसको अग्नियोंकी सेवामैं छोड़कर देशांतरमैं चलागया. तांकी सेवासैं अग्नियोंने प्रसन्न होकर यह उपदेश किया। "प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्म इति" आगे यह उपकोशलका प्रश्न है। "स होवाच विजानामि अहं यत् प्राणा ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामि इति"। आगे यह अग्नियोंने उत्तर कहा है। "ते होचुः यद्वावँ कं तदेव खं यदेव खं तदेव कम् इति। प्राणं च ह अस्मै तदाकाशं चोचुः इति" इनके आगे और उपदेश किया है, अंतमैं यह कहा है—"ते ह ऊचुः उपकोशल एषा सोम्य ते अस्मत्[1]विद्या आत्म[2]विद्या च आचार्यस्तु ते गतिं वक्ता इति" इनका यह तात्पर्य है कि हे उपकोशल! प्राण

---

१ अग्निविद्या. २ "प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्म इति"

ब्रह्म है, कं ब्रह्म है, खं ब्रह्म है. इति। उपकोशलने कहा जो प्राण ब्रह्म है सो मैं जानता हूं, कं और खं को नहीं जानता हूं. इति। अग्नियोंने कहा जो कं है सोई खं है, जो खं है सोई कं है। प्राणको और आकाशको उपकोशल प्रति कहा इति। अंतमैं अग्नियोंने कहा कि हे सोम्य! उपकोशल! तुमको अस्मत्-विद्या और आत्मविद्या कही है और आचार्य तुम्हारे प्रति गतिको कहेगा इति। जब आचार्य आया तब उसने यह उपदेश किया है कि। "य एषो-ऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मा इति होवाच एतत् अमृतम् अभयम् एतत् ब्रह्म इति" अर्थ—जो यह पुरुष नेत्रोंमैं शास्त्रदृष्टिसैं दिसे है, यह आत्मा है. यह अमृत अभयरूप है; यही ब्रह्म है. इस विषयवाक्यमैं जो है सो परमात्मा है वा प्रतिबिंबादिक हैं? दृश्यते कथनसैं नेत्रस्थानवान् प्रतीत होवे है, किंतु व्यापकका नेत्रस्थान कहिना संभवे नहीं, यह पूर्वपक्ष है; इसका सूत्रकार समाधान करे हैं—

अन्तर उपपत्तेः ॥ १३ ॥

अन्तरः। उपपत्तेः। इति प०।

अर्थ–उक्तवाक्यमैं आत्मत्व अमृतत्व अभयत्वादिक जे गुण कहे हैं ते परमात्मामैं ही उपपत्तेः नाम संभवे हैं अपर मैं नहीं यातें नेत्रोंके अन्तर्गत जो पुरुष कहा है सो परमात्मा है, जीव नहीं. इति। पूर्वपक्षमैं उक्त अधिकरणका प्रतिबिंबउपासना फल है, सिद्धांतमैं ब्रह्मउपासना फल है. इति ॥ १३ ॥

स्थानादिव्यपदेशाच्च ॥ १४ ॥

स्थानादिव्यपदेशात्। च। इति। प०।

अर्थ–"यश्चक्षुषि तिष्ठन् चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यः चक्षुः अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः" इत्यादिक वाक्यनसैं बृहदारण्यकके षष्ठ अध्यायमैं नेत्रादि स्थान परमेश्वरके प्रसिद्ध प्रतीत होवे हैं. आदिपदसैं हिरण्यश्मश्रु आदिका ग्रहण है. तिससैं रूपवत्व भी उपासनाके अर्थ प्रतीत होवे है; यातें परमात्माके अल्प स्थानादिकोंका कथन करणेसैं नेत्रोंमैं उपास्य पुरुष परमात्मा है, जीव नहीं. ॥ १४ ॥ किंचः—

सुखविशिष्टाभिधानादेव च ॥ १५ ॥

सुखविशिष्टाभिधानात्। एव। च। इति प०।

अर्थ–प्रथम अग्नियोंने उपदेश किया तो उपकोशलने कहा कं खंको हमे

नहीं जाने हैं; पुनः अग्नियोंने कंखंका अभेदकरके उपदेश किया. कंपद विषय-जन्य सुखका वाचक है, खंपद आकाशका वाचक है, यांते परस्पर भेदके प्राप्त हुएसे कंखंके अभेदका उपदेश किया है। यातैं सुखविशिष्टके अभिधानसैंभी नेत्रोंमैं उपास्य परमात्मा ही अंगीकृत है, जीवादिक नहीं. इति ॥ १५ ॥ किंच।

श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च ॥ १६ ॥

श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानात् । च । इति प० ।

अर्थ-श्रुत नाम श्रवण किया होवे ब्रह्मविद्या जिसने सो श्रुतोपनिषत्क कहिये है, ताकी जो गति नाम अग्निमार्ग तिस मार्गका तहां विधान किया है यातें नेत्रोंमैं जांका उपदेश किया है सो परमात्मा है, प्रतिबिंबादिक नहीं. जो मार्ग ब्रह्मउपासकका कहा है, सोई मार्ग नेत्रगत उपासकका कहा है. इति तात्पर्यम् ॥ १६ ॥ किंच—

अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः ॥ १७ ॥

अनवस्थितेः । असम्भवात् । च । न । इतरः । प० ।

अर्थ-नेत्रोंमैं जो उपास्य पुरुष कहा है सो इतर नाम छायापुरुष नहीं. जो तांको छायारूप मानेंगे तौ नेत्रोंमैं छायाका संपादक जो बिंबरूप पुरुष तिस उपासक पुरुषका अनवस्थान होवेगा; उपासकको उपास्यरूप माना है यांते उपासकका अभाव सिद्ध होवेगा. वा प्राज्ञका सुषुप्तिमैं अनवस्थान नाम अविद्यमानता सिद्ध होवेगी. इति तात्पर्यम्। और अमृतत्वादि गुण छायामैं संभवेंभी नहीं, यातें भी नेत्रोंमैं उपास्य पुरुष परमात्मा है. इति सिद्धम् ॥ १७ ॥

अव०-बृहदारण्यकके पंचम अध्यायमैं यह वाक्य हैं। "य इमं च लोकं परं च लोकं सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयति। तम् अन्तर्यामिणं ब्रूहि इति। यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः। योऽप्सु०। योऽग्नौ०। योन्तरिक्षे०। यो वायौ०। यो दिवि०।य आदित्ये०।यो दिक्षु०। यश्चन्द्रतारके०। य आकाशे०।यस्तमसि०। यस्तेजसि०। यः सर्वेषु०। यः प्राणे०। यो वाचि०। यश्चक्षुषि०। यः श्रोत्रे०। यो मनसि०। यस्त्वचि०। यो विज्ञाने०। यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यं रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोऽन्तरो यमयति

एष ते आत्मा अन्तर्याम्यमृतः । अदृष्टो द्रष्टा अश्रुतः श्रोता अमतो मन्ता अविज्ञातो विज्ञाता नाऽन्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः । अतोऽन्यदार्तं ततो ह उद्दालक आरुणिः उपराम इति"

अर्थ—उद्दालकने याज्ञवल्क्यसैं पूंछा था कि इसलोक परलोकमैं जो सर्व भूतनको अंतर स्थित होय प्रेरणा करे है सो कहो. याज्ञवल्क्यने कहा जो पृथिवीमैं स्थित हुआ पृथिवीके अंतर है, जांको पृथिवी नहीं जाने है, जांका पृथिवी शरीर है, जो पृथिवीके अंतर प्रेरणा करे है, सो तुम्हारा आत्मा है. सो अंतर्यामी है. सो अमृत है. इसी प्रकार जलादिकोंमैं भी रेतपर्यंत जानना चाहिये. जो रेतसको अंतर प्रेरे है सो तुम्हारा आत्मा है, अमृतरूप है. सोई द्रष्टा है, श्रोता है, मंता है, विज्ञाता है, तासैं अन्य कोई द्रष्टा नहीं, श्रोता नहीं, मंता नहीं, विज्ञाता नहीं. यह तुम्हारा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है, इससैं अन्यत् आर्त है. यह सुनकर उद्दालक उपरामको प्राप्त हुए. इति । तहांही आगे विदग्धके प्रश्नमैं यह वाक्य है । "पृथिवी एव यस्य आयतनम् अग्निर्लोकः मनो ज्योतिः यो वै तं पुरुषं विद्यात् सर्वस्य आत्मनः परायणं स वै वेदिता स्यात् इति"

अर्थ—पृथिवी आयतन नाम जाका शरीर है, अग्नि जांके लोक नाम नेत्र है, मन ज्योति है, तिस पुरुषको जो जाने है सो वेदिता अर्थात् पण्डित होवे है. इति । तहां यह संदेह है कि उक्त वाक्यमैं जो अंतर्यामी कहा है सो कोई देवता है वा कोई योगी है वा परमात्मा है? इति । तहां यह पूर्वपक्ष है. विदग्धप्रश्नमैं शरीर श्रवण हुआ है यातें देवता वा योगी अन्तर्यामी है, परमात्मा अशरीर होनेके कारण अंतर्यामी नहीं. इस पूर्वपक्षमैं यह सूत्रकारका उत्तर है—

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥ १८ ॥

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु । तद्धर्मव्यपदेशात् इति प० ।

अर्थ—पूर्वविषयवाक्यमैं तत् नाम परमात्माके जे धर्म ते व्यपदेश नाम कथन किये हैं यातें अंतर्यामी अधिदैवादिक वाक्यनमैं सुना जो अंतर्यामी सो परमात्मा ही है, योगी वा देवता नहीं. क्योंकि सर्वअंतर्यामित्व अमृतत्व आत्मत्वादि जे धर्म ते परमात्माके ही असाधारण धर्म हैं, अपरके नहीं. यद्यपि शरीरविना प्रेरकता

संभवे नहीं तथापि नियम्य शरीरसैं ही तांको नियंतृत्व संभवे है; यातें परमात्माही अंतर्यामी है, अपर कोई नहीं. इति ॥ १८ ॥

अवतरणिका—प्रधान अंतर्यामी नहीं यह कहे हैं।

न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ॥ १९ ॥

न। च। स्मार्तम्। अतद्धर्माभिलापात्। इति प०।

अर्थ—तत्पदसैं प्रधानका ग्रहण हैं. नहीं जो होवे तत् सो अतत् कहिये है अर्थात् परमात्माका ग्रहण है, तिसके जे धर्म द्रष्टादिक तिन धर्मनका अभिलाप नाम कथन किया है यातें स्मार्त नाम सांख्यस्मृतिकल्पित जो प्रधान सो अंतर्यामी शब्दका वाच्य नहीं. इति ॥ १९ ॥

अव०—योगी भी नहीं यह कहे हैं—

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥ २० ॥

शारीरः। च। उभये। अपि। हि। भेदेन। एनम्। अधीयते। इति। प०।

अर्थ—योगीभी अंतर्यामी नहीं यह निषेध पूर्वले सूत्रसैं नकारको लेकर है, तहां हेतु कहे हैं कि उभये नाम उभय शाखामैं एनम् नाम परमात्माको भेदेन नाम भिन्न करके अधीयते नाम शाखावान् ब्राह्मण कहे हैं। एक तो "**यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमन्तरो यमयति**" यह वाक्य पूर्व कह दिया है। दूसरा यह है—"**यश्चात्मनि तिष्ठन् आत्मानमन्तरो यमयति इति**" उभयवाक्यनमैं नियम्यनियंतृरूपसैं जीवपरमात्माका भेद कथन किया है; यातें अंतर्यामी अधिदैवादिवाक्यनमैं अंतर्यामी परमात्माही कहा है, जीवादिक नहीं. इति ॥२०॥

अव०—मुंडकके आरंभमैं यह कहा है कि सर्वदेवनसैं प्रथम विश्वका कर्ता ब्रह्मा हुआ. तांका ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा था. तिस पुत्रके प्रति ब्रह्माने ब्रह्मविद्याका उपदेश किया था. सो विद्या अथर्वाने अंगिराको कही, अंगिराने भारद्वाज अर्थात् भरद्वाजगोत्रवान् सत्यवहके प्रति उपदेश किया और भारद्वाजने अंगिराको पर और अपर विद्या दिया. तब शौनक ऋषिने अंगिराको विधिसैं प्राप्त होकर पूंछा—"**कस्मिन् नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति इति**" अंगिराने कहा कि दो विद्या जाननेयोग्य हैं, एक पर है एक अपर है. ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष, यह अपर विद्या है. आगे यह पर विद्या कही है "**अथ परा**

यथा तदक्षरम् अधिगम्यते । यत् तत् अद्रेश्यम् अग्राह्यम् अगोत्रम् अ-वर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यत् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः" ।

अर्थ—अपरविद्यासैं अनंतर जिस विद्याकरके तिस अक्षरको जाने हैं सो विद्या परा नाम सर्वसैं उत्तम फलवती है. सो अक्षर वर्णरूप नहीं, ज्ञान और कर्म इंद्रियोंका विषय नहीं, अगोत्र नाम वंशरहित है. अवर्ण नाम जातिसैं रहित है. अचक्षुःश्रोत्र नाम आंख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंसैं रहित है, हस्तपादोंसैं रहित है. नित्य विभु है. सर्वगत नाम सर्वकल्पनाका अधिष्ठान है. अतिसूक्ष्म है. नाशरहित है. जो सर्वभूतनका योनि नाम कारण है. जा उक्त स्वरूपको जिस विद्याकरके धीर पुरुष देखें हैं; सो विद्या सर्वसैं उत्तम है. उक्त वाक्यके आगे यह वाक्य है । "यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्मात् एतत् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते इति" ब्रह्मपदका अर्थ हिरण्यगर्भ है. आगे द्वितीय मुंडकमैं यह कहा है कि—"दिव्यो हि अ-मूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो हि अक्ष-रात् परतः परः । एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी इति" दिव्य नाम स्वयंप्रका-शका है, अमूर्त नाम निरवयवका है; बाह्य नाम कार्यका है, आभ्यंतर नाम का-रणका है, तिसका अधिष्ठान होनेसैं सबाह्याभ्यंतर कहा है. अज नाम कूटस्थका है. अक्षरपदसैं शक्तिका ग्रहण है तासैं परे है. इति । उक्त वाक्यके आगे यह वाक्य है । "अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वम् अस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा इति" विवृताः नाम विस्तारवान् वेद जाकी वाणी है, पृथिवी जाके पाद हैं, उक्त अंगोंवाला जाका शरीर है सो सर्वके अंतर है. सर्वका आत्मा है. इति । प्रथम श्रुतिमैं अदृश्यत्वादि गुण कहे हैं, तत्गुणवान् सर्वका कारण प्रधान है वा जीव है वा परमात्मा है? यह तहां संशय है. पूर्वपक्षमैं प्रधानके गुण अंगी-कार कियेसैं यह सिद्धांत है—

अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ॥ २१ ॥

अदृश्यत्वादिगुणकः । धर्मोक्तेः । इति प० ॥ २१ ॥

अर्थ—ईश्वरके धर्मनको भूतनके कारणमैं कथन किया है यातें अदृश्यत्वादि-गुणवान् भूतनका योनि परमात्मा है, प्रधानादिक नहीं । "यः सर्वज्ञः" जा

उक्त श्रुतिमैं सर्वज्ञता आदिक भूतनके कारणमैं कहे हैं यांते प्रथम वाक्यमैं परमात्माका ग्रहण है. प्रधानादिकका नहीं. इति ॥ २१ ॥

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ॥ २२ ॥

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याम् । च । न । इतरौ । इति प० ।

अर्थ–पूर्ववाक्यमैं दिव्यत्वादिक विशेषण कहे हैं और शक्तिसैं परमात्माका भेदभी कहा है यांते विशेषणोंसैं और भेदकथनसैं अदृश्यत्वादिगुणवान् परमात्माका तहां अंगीकार है, तासैं इतर जे जीव और प्रधान ते अदृश्यत्वादिगुणवान् नहीं. इति ॥ २२ ॥

किंच—

रूपोपन्यासाच्च ॥ २३ ॥

रूपोपन्यासात् । च । इति प० ।

अर्थ–पूर्व 'अग्निर्मूर्द्धा' जा वाक्यमैं सर्वकार्यरूप शरीरका उपन्यास किया है, यांते तहां भूतनका जो योनि कहा है सो परमात्मा है, प्रधानादिक नहीं. इस सूत्रमैं भी निषेध पूर्वले नकारसैं है, इति ॥ २३ ॥

अव०–छांदोग्यमैं यह प्रसंग है कि प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इंद्रद्युम्न, जन, बुडिल, जा पंच ऋषियोंने मिलके विचार किया कि आत्मा कौन है? और ब्रह्म कौन है? सो उन्होंने विचारा कि उद्दालक वैश्वानर आत्माकी उपासना करे है तहां चलें, फिर मिलकर उद्दालकके पास गये. उद्दालकने विचारा कि हमसैं यथावत् नहीं कहा जायगा यांते अपरके पास लेजावें, अतएव उद्दालकने कहा कि कैकेयनाम राजा वैश्वानर आत्माका चिंतन करे है सो चलो उसके पास चलें, तब उद्दालकसहित वे ऋषि राजाके पास गये और राजासैं कहा कि जिस वैश्वानरका चिंतन करो हो सो हमको कहो. तब प्रथम राजाने कहा कि तुम सब किस वैश्वानरकी उपासना करो हो? तो प्राचीनशालने कहा हम स्वर्गरूप आत्माकी उपासना करे हैं. सत्ययज्ञने कहा आदित्य वैश्वानर है. इंद्रद्युम्नने वायुको कहा. जनने आकाशको कहा, बुडिलने जलको कहा, उद्दालकने पृथिवीको वैश्वानर कहा, उक्त पट्कको निंदा कर राजाने यह उपदेश किया कि । "यस्तु एतमेवं प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् आत्मानं वैश्वानरम् उपासते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेषु आत्मसु अन्नम् अत्ति इति"

अर्थ—जो उपासक इस प्रादेशमात्र अभिविमान वैश्वानर आत्माकी उपा-

सना करे है सो उपासक सर्वलोकनमें, सर्वभूतनमें, सर्व आत्मामें अन्नको खावे है। सर्व विश्वको जानता है यांते वैश्वानरका नाम अभिविमान है. लोकपदसें भोगभूमिका ग्रहण है, आत्मापदसें भोक्ता चेतनका ग्रहण है. इति। आगे यह कहा है कि तिस वैश्वानरका स्वर्ग शिर है, चक्षु सूर्य है, वायु प्राण है, आकाश मध्यभाग है, जल वस्ति है, पृथिवी पाद हैं, वेदी उर है, वर्हि लोम हैं, गार्हपत्य हृदय, अन्वाहार्य मन है. आहवनीय मुख है. इति। उक्त वाक्यमें यह संदेह है कि वैश्वानरपद जठराग्निका या सामान्य अग्निका या अग्निशरीरवान् देवताका या परमात्माका वाचक है, और वैश्वानरपदसें तहां किसका ग्रहण है? पूर्वपक्षमें असिद्धिके बलसें जाठरादि ग्रहण कियेसें यह भगवान् सूत्रकारका समाधान है:—

वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् ॥ २४ ॥

वैश्वानरः। साधारणशब्दविशेषात्। इति प०।

अर्थ—साधारण शब्दोंमें कुछ विशेष है यातें वैश्वानरशब्दसें तहां परमात्माका ग्रहण है जाठरादिकका ग्रहण नहीं. तथाहि जाठर १, सामान्य २, देवता ३, जा त्रयमें वैश्वानर शब्द साधारण है अर्थात् जा त्रयका वाचक है और आत्मा शब्द जीव परमात्मा उभयमें साधारण है अर्थात् उभयका वाचक है तिन दोनो शब्दनको साधारण तिनके वाचक हुयेभी परमात्मबोधकत्व विशेष प्रतीत होवे है यातें वैश्वानर परमात्मा है. ताको परमात्मा मानेंगे तौ उक्त अंग बनेंगे, जो जठराग्नि मानेंगे तौ उक्त अंग नहीं बनेंगे; यातें वैश्वानर परमात्माही है. इति ॥ २४ ॥

किंचः—

स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ॥ २५ ॥

स्मर्यमाणम्। अनुमानम्। स्यात्। इति इति प०।

अर्थ—वैश्वानरपदसें परमात्माका अंगीकार कियेसें स्मर्यमाण नाम स्मृतिउक्त जो अनुमानलिंग सो सिद्ध होवेगा. 'जाका अग्नि मुख है, स्वर्ग शिर है, आकाश नाभि है, भूमि चरण हैं, सूर्य नेत्र हैं, दिशा श्रोत्र हैं, तिसके प्रति वंदना हो' इस स्मृतिका पूर्वश्रुति मूल है; यातें स्मृतिमें वैश्वानरकथनसें तत्मूल श्रुतिमें सोई मानना चाहिये. इति ॥ २५ ॥

शब्दादिभ्योऽन्तःप्रतिष्ठानाच्च नेति चेन्न तथादृष्ट्युपदेशादसम्भवात्पुरुषमपि चैनमधीयते ॥ २६ ॥

शब्दादिभ्यः । अन्तःप्रतिष्ठानात् । च । न । इति । चेत् । न । तथा । दृष्ट्युपदेशात् । असम्भवात् । पुरुषम् । अपि । च । एनम् । अधीयते । इति प० ।

अर्थ–ननु वैश्वानरशब्द जठराग्निमैं रूढ है और गार्हपत्यअग्निको हृदय कहा है इत्यादि अग्निकल्पनाका आदिपदसैं ग्रहण है. किंच अंतःप्रतिष्ठानात् नाम "पुरुषे अन्तः प्रतिष्ठितं वेद" इत्यादिक वाक्यनमैं अंतःस्थित सुना है यातें वैश्वानर परमात्मा नहीं किंतु जठराग्नि है, जा शंकाका आधे सूत्रसैं समाधान करें हैं. तथा नाम जठराग्निरूपसैं परमात्माकी दृष्टि नाम उपासनाका उपदेश किया है, जठराग्निका नहीं. जो जठराग्निकोही मुख्य वैश्वानर मानेंगे तौ सूर्यादिक अंगनका जठराग्निमैं असंभव पूर्व कहिदिया है यातें मुख्य जठराग्नि नहीं और इस वैश्वानरको कोई आचार्य पुरुषशब्दसैं भी कहे हैं यातें वैश्वानर परमात्मा है, जठराग्न्यादिक नहीं. इति ॥ २६ ॥

अतएव न देवता भूतं च ॥ २७ ॥

अतः । एव । न । देवता । भूतम् । च । इति प० ।

अर्थ–अतः नाम पूर्व कहे जे हेतु तिनसैं देवतास्वरूप और भूतस्वरूप अग्नि वैश्वानर नहीं, भूतस्वरूप जो अग्नि सो वैश्वानरका मुख कहा है; यातें उसीको वैश्वानर कहिना संभवे नहीं. और देवतास्वरूप जो अग्नि सो ईश्वराधीन है यातें तांके भी सूर्यादिक अंग संभवें नहीं; यातें सर्वरूप जो परमात्मा सो वैश्वानर है. जठराग्न्यादिक नहीं ॥ २७ ॥

साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ॥ २८ ॥

साक्षात् । अपि । अविरोधम् । जैमिनिः । इति प० ।

अर्थ–पूर्व जठराग्न्युपाधिक ब्रह्म उपास्य सिद्ध किया है वा जठराग्निप्रतीक ब्रह्म उपास्य कहा है. किंतु, जैमिनि आचार्य साक्षात् नाम प्रतीकोपाधिकल्पनाविनाही परमात्माकी उपासनाके अंगीकार कियेसैं विरोधका अभाव माने हैं। वैश्वानरको ब्रह्म सिद्ध हुए वैश्वानरपदको और अग्निपदको कैसे ब्रह्मका वाचक मानना उचित है. तथाहि–'**विश्वश्चायं नरश्च विश्वानरः**'[1] विश्व होवे सोई नर सो कहिये विश्वानर अर्थात् सर्वस्वरूप होनेसैं ब्रह्मका नाम विश्वानर है, वा '**विश्वेषां नरः विश्वानरः**' अर्थात् सर्वका कारण होनेसे ब्रह्मका नाम

१ 'नरे संज्ञायाम् । ६ । ३ । १२९ ' इति सूत्रेण दीर्घता ।

विश्वानर है, वा 'विश्वे नरा नियम्या अस्य इति विश्वानरः' अर्थात् सर्वका ईश्वर होनेसै ब्रह्मका नाम विश्वानर है. 'विश्वानरः एव वैश्वानरः' इस प्रकार वैश्वानरपद ब्रह्मका वाचक है. सर्वसैं जो आगे होवे सो अग्नि कहिये है. इति। यातें वैश्वानर परमात्मा उपाधिविना उपास्य अंगीकृत है. इति ॥ २८ ॥

अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ॥ २९ ॥

अभिव्यक्तेः । इति । आश्मरथ्यः । इति प० ।

यद्यपि वैश्वानरको परमात्मा मानेसैं तांको प्रादेशमात्र कहिना संभवे नहीं, तथापि उपासकोंके अनुग्रहार्थ व्यापक परमात्माभी हृदयादिस्थानविषे प्रादेशपरिमाणत्वरूपसैं प्रगट होवे है; यातें प्रादेशमात्र कहिना संभवे है, यह आश्मरथ्य आचार्य माने हैं. इति ॥ २९ ॥

अनुस्मृतेर्बादरिः ॥ ३० ॥

अनुस्मृतेः । बादरिः । इति प० ।

अर्थ—प्रादेशमात्र जो हृदयपद्म तिसमैं स्थित जो मन तिसकरके ध्यान करणेसैं वैश्वानरको प्रादेशमात्र कहा है, इस प्रकार बादरि आचार्य माने हैं. यथा प्रस्थपरिमित तंडुल प्रस्थ कहिये हैं. इति ॥ ३० ॥

सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथाहि दर्शयति ॥ ३१ ॥

सम्पत्तेः । इति । जैमिनिः । तथाहि । दर्शयति । इति प० ।

अर्थ—शिरसैं चिबुकतक प्रादेशमात्रमैं वैश्वानरको उपास्य कहा है, यातें परमेश्वरको प्रादेशमात्रत्व सिद्ध है; तिस प्रादेशमात्रकी संपत्ति नाम सिद्धिसैं प्रादेशमात्रबोधक श्रुति सफल है. इसप्रकार जैमिनि आचार्य माने हैं. तथा हि "प्रादेशमात्रमिह देवताः सुविदिता इत्यादि" अपर श्रुतिभी वैश्वानरको प्रादेशमात्रकी प्राप्ति दर्शयति नाम दिखावे है. इति ॥ ३१ ॥

आमनन्ति चैनमस्मिन् ॥ ३२ ॥

आमनन्ति । च । एनम् । अस्मिन् । इति प० ।

अर्थ—अपर आचार्यभी एनम् नाम परमेश्वरको अस्मिन् नाम प्रादेशपरिणामस्थानमैं माने हैं, यातें प्रादेशमात्रबोधक श्रुति सफल है. भ्रूघ्राणोंकी जो संधि है सो स्वर्गलोककी और ब्रह्मलोककी संधि है, जाविध मानके भ्रू और घ्राणोंके म-

ध्यमैं वैश्वानरका ध्यान करे यह अंगीकार किया है; यातें वैश्वानर परमात्मा है. इति सिद्धम् ॥ ३२ ॥

इति सूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ तृतीयपादप्रारम्भः ।

इस पादके तीन अधिक चालीस सूत्र हैं, तिनमें त्रयोदश अधिकरण हैं. तीस गुणरूप हैं.

तथाहि—

सूत्रसंख्या ।	अधिकरण ।	गुण	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	आयतनविचार.
२	+	गु०	आ०
३	+	गु०	आ०
४	+	गु०	आ०
५	+	गु०	आ०
६	+	गु०	आ०
७	+	गु०	आ०
८	अ०	+	भूमाविचार.
९	+	गु०	भू०
१०	अ०	+	अक्षरविचार.
११	+	गु०	अ०
१२	+	गु०	अ०
१३	अ०	+	ध्यातव्यविचार.
१४	अ०	+	दहरविचार.
१५	+	गु०	द०
१६	+	गु०	द०
१७	+	गु०	द०
१८	+	गु०	द०
१९	+	गु०	द०
२०	+	गु०	द०

२१	+	गु०	द०
२२	अ०	+	तेजोविचार.
२३	+	गु०	जे०
२४	अ०	+	अङ्गुष्ठमात्रविचार.
२५	+	गु०	अ०
२६	अ०	+	देवताविद्याधिका०
२७	+	गु०	दे०
२८	+	गु०	दे०
२९	+	गु०	दे०
३०	+	गु०	दे०
३१	+	गु०	दे०
३२	+	गु०	दे०
३३	+	गु०	दे०
३४	अ	+	शूद्रविद्याधिकारविचार.
३५	+	गु०	शू०
३६	+	गु०	शू०
३७	+	गु०	शू०
३८	+	गु०	शू०
३९	अ०	+	प्राणविचार.
४०	अ०	+	ज्योतिर्विचार.
४१	अ०	+	आकाशविचार.
४२	अ०	+	वाक्यसमूहविचार.
४३	+	गु०	वा०
	१३	३०	

अव०–पूर्वले पादमैं त्रैलोक्यस्वरूप वैश्वानर परमात्मा है यह अर्थ कहा है; तांको त्रैलोक्यस्वरूप मानेसैं तांका आसरा अपर कोई होवेगा जा शंकासैं भगवान् सूत्रकार उत्तरसूत्रका आरंभ करें हैं:–तहां पूर्वपक्षमैं प्रधानादिकोंकी उपासना फल है, सिद्धांतमैं ब्रह्मज्ञान फल है, अथर्वण उपनिषद् द्वितीय मुंडकमैं सुना है, कि– "प्रणवो धनुः शरो हि आत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ॥ यस्मिन्

द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम् ओतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः । तमेवैकं जानथ आत्मानम् अन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्य एष सेतुः इति"
अर्थ-ओंकार धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म लक्ष्य है, सो अप्रमत्तकरके वेधने योग्य है; सो वेधकरके शरकी नांई लक्ष्यरूप होवे । जामैं स्वर्ग पृथिवी अंतरिक्ष यह ओत नाम कल्पित हैं और मनसहित सर्व इंद्रियांभी कल्पित हैं, तिस एक आत्माको तुम अधिकारी जानो. अपर वाचाका त्याग करो. यह अमृतका सेतु है अर्थात् कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप अमृतका सेतु नाम साधन है. इति । उक्तवाक्यमैं ओतकथनसैं कोई आयतन प्रतीत होवैहै; सो प्रधान है वा वायु है वा जीव है वा ब्रह्म है यह तहां संदेह है. पूर्वपक्षमैं प्रधानादि अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत है:—

द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ॥ १ ॥

द्युभ्वाद्यायतनम् । स्वशब्दात् । इति प० ।

अर्थ-तहां विषयवाक्यमैं आत्माशब्द सुना है सो आत्माशब्द स्वनाम ब्रह्मका वाचक है, यातैं स्वर्ग भू आदिकोंका आयतन नाम आसरा ब्रह्म है. प्रधानादिक नहीं. इति ॥ १ ॥

किंच—

मुक्तोपसृप्यव्यपदेशाच्च ॥ २ ॥

मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् । च । इति प० ।

अर्थ-मुक्तपुरुषको जो उपसृप्य नाम प्राप्तियोग्य सो उत्तरवाक्यमैं कहा है; यातैं सर्वका आयतन ब्रह्म है, अपर नहीं. इति । तथाहि पूर्वश्रुतिके आगे मुंडकमैं यह वाक्य है । "भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे इति ॥ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय तथा विद्वान् नामरूपात् विमुक्तः परात्परं पुरुषम् उपैति दिव्यम् इति"

अर्थ-हृदयग्रंथिपदसैं मिथ्या ज्ञान रागद्वेषादिका ग्रहण है. यथा सर्व नदी स्व नाम रूपको त्यागकर समुद्रको प्राप्त होयके समुद्ररूप होकर स्थित होवे हैं तथा आत्मवेत्ताभी अविद्यासैं रहितहुआ अविद्यासैं परे जो परिपूर्ण अखंड एक रस ब्रह्म तिसको स्वस्वरूपकरके प्राप्त होवे है. इति । इस उक्त श्रुतिमैं मुक्तको प्राप्य ब्रह्म कहा है यातैं पूर्ववाक्यमैं जो आयतन कहा है सो ब्रह्म है, अपर नहीं. इति ॥ २ ॥ किंचः—

नानुमानमतच्छब्दात् ॥ ३ ॥

न । अनुमानम् । अतत्शब्दात् । इति प० ।

अर्थ–अनुमानपदसैं अनुमानगम्य प्रधानका ग्रहण है, तांका बोधक जो शब्द सो तत्शब्द अंगीकार है, नहीं जो होवे प्रधानबोधक शब्द सो अतत्शब्द अंगीकार है; अर्थात् प्रधानबोधक शब्द कोई सुना नहीं यातें प्रधान द्युभू आदिकोंका आसरा नहीं. इसीप्रकार वायुबोधक शब्दके न सुनेजानेसे ही वायु भी आसरा नहीं. इति ॥ ३ ॥ किंच—

प्राणभृच्च ॥ ४ ॥

प्राणभृत् । च । इति प० ।

अर्थ–प्राणभृत् नाम प्राणधारी जो जीव सोभी आयतन नहीं. यद्यपि प्रथम विषयवाक्यमैं आत्मशब्द सुना है सो जीववाचक है, तथापि जीवको सर्वज्ञता और सर्वका आयतनत्व संभवे नहीं; यातें आत्मापद तहां जीवका वाचक नहीं. यह निषेध पूर्वले सूत्रसैं नकारको ग्रहण करके है ॥ ४ ॥ किंचः—

भेदव्यपदेशात् ॥ ५ ॥

भेदव्यपदेशात् । इति प० ।

अर्थ–तू अधिकारी तिस एकको जान, जा कथनसैं तहां ज्ञाता ज्ञेयरूपसैं भेद कथन किया है; यांते भी प्राणधारी जीव आयतन नहीं, किंतु ज्ञेय ब्रह्म आयतन है. इति ॥ ५ ॥ किंचः—

प्रकरणाच्च ॥ ६ ॥

प्रकरणात् । च । इति प० ।

अर्थ–किसके जानेसैं यह सर्व जाना जाय है यह प्रथम मुंडकके आरंभमैं कहा है; सो जीवके ज्ञानसैं सर्वका ज्ञान संभवे नहीं यातें प्रकरणसैंभी प्राणधारी आयतन नहीं है. इति ॥ ६ ॥ किंचः—

स्थित्यदनाभ्यां च ॥ ७ ॥

स्थित्यदनाभ्याम् । च । इति प० ।

अर्थ–मुंडकके आरंभमैं तीसरा यह वाक्य है—"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्न-

न्यो अभिचाकशीति इति" इस श्रुतिमैं जीवको भोक्ता कहा है, ईश्वरको अभोक्ता कहा है; यातें स्थिति नाम भोगविना ईश्वरको स्थित होनेसैं और अदन नाम जीवको भोक्ता होनेसैं प्राणधारी जीव आयतन नहीं. इति ॥ ७ ॥

अव०–छांदोग्यके सप्तम प्रपाठकके आरंभमैं यह प्रसंग है कि नारदने सनत्कुमारको कहा कि हे भगवन्! अध्ययन करावो. सनत्कुमारने कहा जो तुम जानते हो सो कहो, तांसैं आगे हम कहेंगे. नारदने कहा कि हे भगवन्! मैं ऋग्वेदादिविद्या जानता हूं, सो मैं मंत्रवेत्ताही हूं, आत्मवेत्ता नहीं. और हमने सुना है "तरति शोकमात्मवित्" हे भगवन्! सो मैं शोकको प्राप्त हौं! हमको शोकसे पार करो. सनत्कुमारने कहा कि ये जे ऋगादिकविद्या तुमने अध्ययन किया है सो यह नाम है. नामही ब्रह्म है. तांकी उपासना करो. नारदने कहा नामसैं भी कोई बड़ा है? सनत्कुमारने कहा वाक्य नामसैं उत्तम हैं. इसप्रकार वाक्यके आगे मन, मनके आगे संकल्प, तांसैं आगे चित्त, तांसैं ध्यान, तांसैं विज्ञान, तांसैं बल, तांसैं अन्न, तांसैं जल, तांसैं तेज, तांसैं आकाश, तांसैं स्मर, तांसैं आशा, तांसैं आगे प्राणको ब्रह्मरूपकरके उपास्य विधान किया है। "प्राणो वा आशाया भूयान् यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वं समर्पितम् इति" इससैं आगे नारदके प्रश्न विनाहीं सनत्कुमारने सत्यका उपदेश किया, सत्यमैं जिज्ञासा हुई तौ विज्ञानको कहा, विज्ञानमैं जिज्ञासा हुई तौ मतिको[1] कहा, मतिमैं अभिलाषा हुई तौ श्रद्धाका उपदेश किया, तांमैं जिज्ञासा हुई तौ निष्ठाका[2] उपदेश किया, निष्ठामैं जिज्ञासा हुएसैं कृतिका[3] उपदेश किया. कृतिमैं जिज्ञासा हुई तौ सुखका उपदेश किया. सुखमैं जिज्ञासा हुएसैं आगे यह उपदेश किया है—"यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा तु एव विजिज्ञासितव्यः इति" नारदने कहा हे भगवन्! भूमाको आप कहो? तब सनत्कुमारने यह उपदेश किया:— "यत्र न अन्यत्पश्यति न अन्यत् शृणोति नान्यत् विजानाति स भूमा" इति। सर्वव्यवहाररहित पूर्ण वस्तुका नाम भूमा है. इति। सो प्राण है वा परमात्मा है यह उक्त वाक्यमैं संदेह है. भूमासैं पूर्व प्राणोंका उपदेश है, यातें प्राणोंका उपदेश है यह पूर्वपक्ष है. तहां यह सूत्रकारका उत्तर है:—

भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ॥ ८ ॥

भूमा। सम्प्रसादात्। अध्युपदेशात्। इति प०।

---

१ मनन। २ गुरुसेवादिमें। ३ इंद्रियसंयममें।

अर्थ०—सम्यक् सुखी होवे जीव जामें सो संप्रसाद कहिये है, अर्थात् सुषुप्तिका नाम है. ता अवस्थामैं प्राणचेष्टा बनी रहे हैं यांतें संप्रसादपदसैं सूत्रमें प्राणोंका अंगीकार है, तासैं अधि नाम आगे श्रुतिमें भूमाका उपदेश किया है; यांते भूमाशब्दसैं तहां परमात्मा अंगीकार है, प्राण अंगीकार नहीं. प्राणउपदेशसैं शोकनिवृत्ति संभवे नहीं, इत्यादिक हेतु प्राणोंके निषेधमें अंगीकार हैं. इति ॥ ८ ॥

धर्मोपपत्तेश्च ॥ ९ ॥

धर्मोपपत्तेः । च । इति प० ।

अर्थ—'जा अवस्थामैं अपरको देखे सुने जाने नहीं' इत्यादिक कहे जे धर्म ते परमात्मामैं उपपत्तेः नाम संभवे हैं अपरमैं नहीं; यातें परमात्माही भूमा ज्ञेय है, प्राण नहीं. इति ॥ ९ ॥

बृहदारण्यक पंचम अध्याय अष्टम ब्राह्मणमैं यह प्रसंग है कि गार्गीने याज्ञवल्क्यसैं पूंछा था कि जो स्वर्गके ऊपर है, जो पृथिवीके नीचे है, स्वर्ग पृथिवी जिसके अंतर है और जे भूत भावी वर्तमान हैं ते सर्व किसमैं ओतप्रोत हैं? याज्ञवल्क्यने कहा आकाशमैं ओतप्रोत हैं. गार्गीने कहा आकाश किसमैं ओतप्रोत है? तब याज्ञवल्क्यने यह उपदेश कियाः— "सहोवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति । अस्थूलम् अनणवह्रस्वम् अदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवायु अनाकाशम् असङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कम् अश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कम् अपाणिमुखममात्रम् अनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन । एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः । यो वा एतदक्षरं गार्गि अविदित्वा अस्मात् लोकात् प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्मात् लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः । तद्वा एतदक्षरं गार्गि अदृष्टं द्रष्टृ अश्रुतं श्रोतृ अमतं मन्तृ अविज्ञातं विज्ञातृ नान्यत् अतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यत् अतोऽस्ति श्रोतृ नान्यत् अतोऽस्ति मन्तृ नान्यत् अतोऽस्ति विज्ञातृ एतस्मिन् नु खलु अक्षरे गार्गि आकाश ओतश्च प्रोतश्च इति"

श्रुतिअर्थ—हे गार्गि! जो तुमने पूंछा है कि आकाश किसमैं ओत प्रोत है? इति । सो यह अक्षर है यह ब्राह्मण कहे हैं अर्थात् नाशरहित अक्षरको

ब्रह्मवेत्ता कहे हैं. सो अक्षर कौन है? जिसको ब्राह्मण कहे हैं जा शंकासैं कहे हैं, सो अक्षर स्थूल अणु ह्रस्व दीर्घ नहीं. अर्थात् चतुःपरिमाणधर्मवान् द्रव्यसैं भिन्न है. लोहित, स्नेह, छाया, तम, वायु, आकाश, रूप नहीं; असंग है. रस, गंध, नेत्र, श्रोत्र, वाक्, मन, तेज, प्राण, मुख, मात्रारूप नहीं. मात्रापदसैं मान मेयका निषेध अंगीकार है. सो अंतर नहीं, बाह्य नहीं, सो किसीको भक्षण नहीं करे है, तांको कोई भक्षण नहीं करे है. हे गार्गि! इस अक्षरकी प्रशासनामैं सूर्य चंद्रमा स्थित हुए देशकालके नियमसैं वर्ते हैं और स्वर्ग पृथिवी आदिक जिसकी आज्ञामैं स्थित हैं. जो इस अक्षरको नहीं जानके गमन करे है सो कृपण है. जो जानके गमन करे है सो ब्राह्मण है. हे गार्गि! सो अक्षर अदृष्ट है अर्थात् अविषय होनेसैं अपरकरके अदृष्ट है और स्वयं सर्वका द्रष्ट है अर्थात् द्रष्टा है तथा अपरकरके अश्रुत है, स्वयं सर्वका श्रोता है. मनका अविषय होनेसैं अपरकरके अमत है, आप मंता है. बुद्धिका अविषय होनेसैं अविज्ञात है, आप विज्ञानरूप होनेसैं विज्ञाता है. इस अक्षरसैं दर्शनक्रियाका कर्ता अपर नहीं. तिस अक्षरमैं हे गार्गि! आकाश ओत प्रोत है. इति । यह श्रुतिका अर्थ है.

उक्त ब्राह्मणमैं अक्षर पदसैं अक्षर वर्णरूप अंगीकृत है, वा ब्रह्म अंगीकृत है यह संदेह है. अक्षर पद वर्णोंका वाचक प्रसिद्ध है यांतें वर्णोंका ग्रहण है, यह पूर्वपक्ष है. 'न क्षरति इति अक्षरम्' जा योगवृत्तिको मानके सूत्रकारका यह समाधान है:—

अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ १० ॥

अक्षरम् । अम्बरान्तधृतेः । इति प० ।

अर्थ—भूमिसैं लेकर अंबर नाम आकाश अन्त नाम पर्यंत सर्व कार्यको ब्रह्म धृतेः नाम धारण करे है यांतें अक्षरपदसैं तहां ब्रह्मका अंगीकार है, अक्षर नहीं. उक्त प्रसंगमैं सर्वका धारक ब्रह्म प्रसिद्ध प्रतीत होवे है यांतें अक्षर ब्रह्मही है. इति ॥ १० ॥

सा च प्रशासनात् ॥ ११ ॥

सा । च । प्रशासनात् । इति प० ।

अर्थ—पूर्ववाक्यमैं कहा है कि हे गार्गि! अक्षरकी प्रशासनामैं धारण किये हुए सूर्यचंद्रादिक स्थित हैं. इति । प्रशासन नाम आज्ञाका है, आज्ञा चेतनका धर्म है, अचेतनका नहीं यातें सो नाम धारणा परमेश्वरका धर्म है अपर अचेतनका धर्म नहीं, यांतें अक्षर तहां ब्रह्म अंगीकृत है, प्रधानादिक नहीं. इति ॥ ११ ॥

किंच—

अन्यभावव्यावृत्तेश्च ॥ १२ ॥

अन्यभावव्यावृत्तेः । च । इति प० ।

अर्थ–अन्य जे प्रधानादिक तिनके जे भाव नाम धर्म ते अन्यभावपदसें अंगीकृत हैं, तिन धर्मनसें जे व्यावृत्त नाम भिन्न धर्म ते उक्त श्रुतिमें सुने हैं यातें अक्षरपदका वाच्य परमात्मा है, तिसकाही प्रशासना कर्म है । "अदृष्टं द्रष्टृ अश्रुतं श्रोतृ" इत्यादिक धर्मनका सूत्रके व्यावृत्तिपदसें ग्रहण हैं और अपर द्रष्टाका तहां निषेध किया है यातें अक्षर ब्रह्मही ज्ञेय है. पूर्वले अधिकरणका पूर्वपक्षमें ओंकारकी उपासना फल है, सिद्धांतमें ब्रह्मबोध फल है. इति ॥ १२ ॥

अव०–अथर्वणकी प्रश्नउपनिषद्के पंचम प्रश्नमैं पिप्पलाद गुरुसैं सत्यकामने पूंछा था कि हे भगवन्! मनुष्यनमैं जो मरणपर्यंत ॐकारका ध्यान करे हैं सो उपासक तिस ॐकारसैं किस लोकका जय करे हैं. पिप्पलादने यह उपदेश किया कि जो एकमात्र ॐकारका ध्यान करे है तांको ऋक् मनुष्यलोकमें प्राप्त करें हैं, द्विमात्र ॐकारका ध्यान करे तौ सो यजुद्वारा सोमलोकमें जावे है. तहांसैं तांकी पुनरावृत्ति होवे है. यह कहकर आगे यह उपदेश किया है कि "यः पुनरेतं त्रिमात्रेणैव ॐ इति एतेनैव अक्षरेण परपुरुषम् अभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरः त्वचा विनिर्मुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः सामभिः उन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्मात् जीवघनात् परात् परं पुरिशयं पुरुषम् ईक्षते" इति ।

अर्थ०–जो उपासक त्रिमात्र ॐकार अक्षरकरके परपुरुषका ध्यान करे है सो तेजरूप सूर्यमैं प्राप्त होकर यथा सर्प त्वचासैं रहित होवे है तथा सो पापनसैं रहित होवे है. तांको साम ब्रह्मलोकको प्राप्त करे हैं. सो उपासक जीवघन नाम ब्रह्मलोकसैं परे जो परमात्मा पुरुष तिसको साक्षात्कार करे है. सर्वजीवोंका अभिमानी जो हिरण्यगर्भ तांका ब्रह्मलोक आधार है, यांते ब्रह्मलोकका नाम जीवघन है, सर्व शरीरोंमैं जो रहे सो पुरिशय कहिये है. इति । उक्त वाक्यमैं ॐकारसैं जो ध्यान करणेयोग्य कहा है सो परब्रह्म है वा अपर ब्रह्म है यह तहां संदेह है. पूर्वपक्षमैं अपर ध्यातव्य अंगीकार कियेसैं यह भगवान् सूत्रकारने सिद्धांत किया है:—

ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्सः ॥ १३ ॥

ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् । सः । इति प० ।

अर्थ–पूर्ववाक्यमैं ईक्षति पदका अर्थ जो ज्ञान तांका कर्म पुरुषको कहा है यांते सः नाम ध्यानयोग्य तहां परब्रह्म अंगीकृत है, अपर नहीं. इति । पूर्वपक्षमैं कार्य ब्रह्मउपासना फल है, सिद्धांतमैं परब्रह्मउपासना फल है. इति ॥ १३ ॥

अव०–उत्तर अधिकरणका आकाशादिउपासना पूर्वपक्षमैं फल है. सिद्धांतमैं तद्द्वारा ब्रह्मबोध फल है. छांदोग्यके अष्टम प्रपाठकके आरंभमैं यह श्रुति है । "अथ यदिदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरे पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन् अन्तराकाशः तस्मिन् यदन्तः तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यम् इति । तं चेत् ब्रूयुः यदिदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन् अन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यत् अन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यम् इति । स ब्रूयात् यावान् वा अयमाकाशः तावान् एषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते इति ।"

अर्थ–यह जो ब्रह्मपुर नाम शरीर इसमैं दहर नाम सूक्ष्म हृदयरूप कमल है, तिसके अंतर सूक्ष्म आकाश है, सो जिज्ञासाके योग्य है. जो गुरुको शिष्य कहैं कि प्रथम तौ हृदय सूक्ष्म है तामैं जो आकाश सो भी सूक्ष्म है सो क्या वस्तु है जांकी जिज्ञासा करे? तो गुरु उनसैं यह कहे कि जेता यह आकाश है उतनाही हृदयके अंतर आकाश है, तामैं स्वर्ग और पृथिवी स्थित हैं. इति । इससैं आगैं यह कहा है—"एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः" इति । उक्त वाक्यमैं जो हृदयके अंतर सूक्ष्म आकाश कहा है, सो भूताकाश है वा ब्रह्म है यह तहां संदेह है. प्रसिद्धिसैं आकाशपदको भूताकाशका वाचक पूर्वपक्षमैं अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांतसूत्र हैः—

दहर उत्तरेभ्यः ॥ १४ ॥

दहरः । उत्तरेभ्यः । इति प० ।

अर्थ–उत्तर नाम आगे जे हेतु कहे हैं तिनसैं दहराकाशशब्दसैं तहां पर-

मात्मा उपास्य है, भूताकाश नहीं. दहराकाशको सुनकर जो शिष्योंका प्रश्न तांके उत्तरमैं उपमान उपमेय भाव सुना है, और तिसको सर्वका आश्रय कहा है और अजर अमरादिक तांके विशेषण कहे हैं वे धर्म भूताकाशमें संभवे नहीं यातें उक्त अनेक हेतुनसैं दहराकाश परमात्मा है, भूताकाश नहीं. इति ॥१४॥

गतिशब्दाभ्यां तथाहि दृष्टं लिङ्गं च ॥ १५ ॥

गतिशब्दाभ्याम् । तथाहि । दृष्टम् । लिङ्गम् । च । इति प० ।

अर्थ-दहरवाक्यके आगे तृतीयखंडमैं यह कहा है—"यथापि हिरण्यनिधिं निहितम् अक्षेत्रज्ञा । उपरि उपरि संचरन्तो न विन्देयुः एवमेव इमाः सर्वाः प्रजाः अहरहर्गच्छन्त्यः एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति अनृतेन हि प्रत्यूढाः" इति श्रुतिअर्थ-यथा भूमिमैं गाड़ाहुया जो धन तिस धनस्थानको जे नहीं जाने हैं ते तिसके ऊपर तो फिरते रहे हैं परंतु तिसको जानें नहीं, तथा यह सर्व प्रजा दिन दिनमैं ब्रह्मविषे गमन करे हैं परंतु अज्ञानकरके आच्छादित हुए संते इस ब्रह्मलोकको नहीं जाने हैं. इति । इस वाक्यमैं परमात्माका बोधक जो ब्रह्मलोक शब्द और जीवनका जो दिनदिनमैं ब्रह्ममैं गमन अर्थात् लय ते दोनो सूत्रके शब्द और गतिसैं गृहीत हैं. गतिपदसैं लयका ग्रहण है, शब्द शब्दसैं ब्रह्मलोक इस शब्दका ग्रहण है. तिन दोनोसैं दहराकाश ब्रह्म निश्चय होवे है । तथाहि-दृष्टम् नाम दिनदिनमैं जो जीवोंका लय सो अपर श्रुतिमैं देखा है । 'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति' यह श्रुति लय कहे है. ब्रह्मलोकमैं दिनदिनमैं गमन संभवे नहीं, यांतें ब्रह्मलोकपदमैं 'ब्रह्मणः लोकः ब्रह्मलोकः' यह समास संभवे नहीं. किंतु 'ब्रह्मैव लोकः ब्रह्मलोकः' यह कर्मधारय समास अंगीकृत है. इस अभेदसमासमैं दिनदिनमैं जो गमन सो लिंग नाम प्रमाण है. सो अभेद अर्थको प्रगट करे है. इति॥१५॥

किंचः—

धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ॥ १६ ॥

धृतेः । च । महिम्नः । अस्य । अस्मिन् । उपलब्धेः । इति प० ।

अर्थ-उक्त लयबोधक वाक्यके आगे यह कहा है—"य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानाम्" इति । इसमैं सर्वका धृतेः नाम धारकत्व सुना है; यातें धारकत्व हेतुसैंभी दहराकाश परमात्माही है. यह जो धारणरूप महिमा

सो परमात्मामैं अपर श्रुतिकरके उपलब्धेः नाम प्रतीत होवे है। "एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिः एष भूतपालः एष सेतुः इति" यह आत्मा वर्णाश्रमके असंकरका सेतु नाम हेतु है. विधृति नाम धारक है। इति श्रुतितात्पर्यम् ॥१६॥ किंचः—

प्रसिद्धेश्च ॥ १७ ॥

प्रसिद्धेः । च । इति प० ॥

अर्थ—दहराकाश शब्दभी परमात्मामैं ही प्रसिद्ध है, भूताकाशमैं नहीं. पूर्व जो उपमान उपमेय भाव कहा है सो प्रसिद्धिमैं कारण है. इति ॥ १७ ॥

इतरपरामर्शात्स इति चेन्नासम्भवात् ॥ १८ ॥

इतरपरामर्शात् । सः । इति । चेत् । न । असम्भवात् । इति प० ।

अर्थ—ननु दहरवाक्यके आगे यह वाक्य हैः—"अथ य एष सम्प्रसादोऽस्मात् शरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते एष आत्मा इति होवाच एतदमृतमभयमेतत् ब्रह्म इति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति" इति। इस वाक्यमैं इतर नाम जीवका परामर्श है; यातैं सः नाम जीवही दहराकाश है, परमात्मा नहीं; यह शंका करैं तौ जीवमैं आकाशउपमा अपहतपाप्मत्वादिक धर्मोंके असंभवसैं असंगत है. इति। श्रुतिअर्थ—परं नाम उत्कृष्ट ज्योतिः नाम प्रकाशस्वरूप जो आदित्य ताको उपसंपद्य नाम प्राप्त होकर अर्थात् आदित्यउपलक्षित देवयानमार्गको प्राप्त होकर स्वेन नाम स्वउपासनाका फलरूप जो सूर्य तद्विशिष्टरूपसैं अभिनिष्पद्यते अर्थात् ब्रह्मलोकको प्राप्त होवे है, सो उत्तम पुरुष है. इति ॥ १८ ॥

अव०—शास्त्रउपदेशसैं[1] स्वसंवेद्यताको आपादन करके आगे सप्तम खंडमैं यह ब्रह्माका वाक्य हैः—"य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकान् आप्नोति सर्वांश्च कामान् यः तम् आत्मानम् अनुविद्य विजानाति इति ह प्रजापतिः उवाच" इति। इस वाक्यको सुनके इंद्र और विरोचन प्रजापतिके समीप गये. तिन्होंने तहां द्वात्रिंशत् वर्ष ब्रह्मचर्य किया. ब्रह्माने कहा किसकी इच्छावान् होके स्थित हो? वे बोले आपके वाक्यको सुनके आत्माकी इच्छासैं स्थित हैं. तब तिनको

१ शास्त्रउपदेशसै जो स्वसंवेद्यताको आपादन करे.

ब्रह्माने यह उपदेश कियाः—"य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मा इति होवाच एतत् अमृतमभयम् एतत् ब्रह्म इति" इस वाक्यको सुनके वे छायाको आत्मा निश्चय कर चलेगये. विरोचन तो नहीं फिर कर गया और इंद्र उक्त आत्मामैं दोष मानके पुनः ब्रह्माजीके पास गया. ब्रह्माजीने कहा द्वात्रिंशत् वर्ष तप कर. जब तप कर चुका तब यह उपदेश कियाः—"य एष स्वप्ने महीयमानश्चरति एष आत्मा इति होवाच एतदमृतमभयम् एतद् ब्रह्म इति" इसमैं भी इंद्रने दोष कहे, तब ब्रह्माने कहा कि द्वात्रिंशत् वर्ष तप कर. जब तप करचुके तब यह उपदेश कियाः—"तद्यत्र एतत् सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानाति एष आत्मा इति होवाच एतदमृतमभयम् एतत् ब्रह्म इति" इसमैं भी इंद्रने दोष कहे. तब ब्रह्माजीने कहा पांच वर्ष ब्रह्मचर्य कर. जब एकशत वर्ष ब्रह्मचर्य हुआ तब यह उपदेश कियाः—"अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ अशरीरो वायुः अभ्रं विद्युत् स्तनयित्नुः अशरीराणि एतानि तद्यथा एतानि अमुष्मादाकाशात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यन्ते । एवमेव एष सम्प्रसादोऽस्मात् शरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते सः उत्तमः पुरुषः" इति । अशरीर जो वायु अर्थात् अविद्यमान शिरकरादिवान् जो शरीर तद्वान् जो वायु और अभ्र विद्युत् स्तनयित्नु यह उक्त विधिसैं शरीररहित हुए वर्षादि प्रयोजनसिद्धिके अर्थ स्वर्गलोकसंबंधी आकाशसैं उठके सूर्यसंबंधी अभितापको प्राप्त होकर तिस तापसैं भिन्न भिन्न भावको प्राप्त हुए स्वस्वरूपसैं स्थित होवे हैं. अर्थात् वायु पर्वत ज्योति लता गर्जित अशनिरूपसैं स्थित होवे हैं. इति । "स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्य परं ज्योतिरुपसम्पद्यते" जाविध श्रुतिमैं संबंध अंगीकृत है ॥ अविद्याका कार्य जो अहंकारादि अनर्थ तासैं तादात्म्य अभिमानसैं जो मग्न असत्के समान तांका तांसैं जो विवेक सो 'समुत्थाय' पदका अर्थ है. 'परम्' जा पदसैं ब्रह्मरूप ज्योतिको प्राप्तिके योग्य कहा है. 'अहं ब्रह्मास्मि' जाविध वृत्तिरूप साक्षात्कार 'अभिनिष्पद्यते' जा पदसे अंगीकृत है. 'उपसम्पद्य' जापदसैं ब्रह्मसाक्षात्कार कर केवलानंदब्रह्मरूपसैं अवस्थान अंगीकृत है. इति ॥ इस उक्त ब्रह्माके वाक्यमैं जो सम्प्रसाद पद सो जीवका वाचक है. यातैं पूर्व दहराकाश जीव अंगीकार किया चाहिये, यह शंका मानके समाधान करे हैं:—

---

१ स्त्रीआदिकोंकरके पूज्यमान अनेकविध स्वप्नभोगोंका अनुभव करे है. २ अर्थात् एकोत्तर शत (१०१). क्योंकि पहले तीन वार वत्तिस २ वर्ष तथा अवकी चौथी वार पांच वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करना कहा है, इससे सव मिलाके १०१ वर्ष होते हैं.

उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ॥ १९ ॥

उत्तरात् । चेत् । आविर्भूतस्वरूपः । तु । इति प० ।

अर्थ–उत्तरात् नाम नेत्राभिमानी स्वप्नाभिमानी सुषुप्त्यभिमानी जीवका संप्रसाद शब्दसैं ब्रह्माने उपदेश किया है, यातैं दहराकाश जीव है, परमात्मा नहीं; यह शंका करें तौ सत्य है, तथापि तहां जो सम्प्रसादपदसैं जीव कहा है सो जीवत्वरूपसैं जीव अंगीकार नहीं, किंतु आविर्भूत नाम पापादिकोंसैं रहित जो जीवका स्वरूप सो संप्रसादपदसैं ब्रह्माके वाक्यमैं अंगीकृत है. सो पापादिकोंसें रहित जो स्वरूप सो ब्रह्मस्वरूप है, सोई जीवका वास्तवस्वरूप है. जीवत्व वास्तवस्वरूप नहीं, यातैं दहराकाश परमात्मा है; जीव नहीं. इति ॥१९॥

अन्यार्थश्च परामर्शः ॥ २० ॥

अन्यार्थः । च । परामर्शः । इति प० ।

अर्थ–ब्रह्माके वाक्यमैं जो जीवका परामर्श है सो जीवार्थ नहीं, किंतु अंतमैं जो ज्योति कहा है तिस परमात्माके अर्थ परामर्श है. तहां जीवको प्राप्त होनेयोग्य परमात्मा है यह उपदेश किया है. सो उपदेश जीवके परामर्शविना संभवे नहीं, यातें संप्रसादपदसैं जीवका परामर्श है. इति ॥ २० ॥

अल्पश्रुतेरिति चेत्तदुक्तम् ॥ २१ ॥

अल्पश्रुतेः । इति । चेत् । तत् । उक्तम् । इति प० ।

अर्थ–आकाशको श्रुतिमैं अल्प श्रुतेः नाम सुना है यातें सो परमात्मा नहीं, यह शंका करें तौ इसका समाधान 'अर्भक०'(ब्र०१।२।७) जा सूत्रमैं उक्तम् नाम कह दिया है, तहां दहराकाश परमात्मा उपास्य है, जीव नहीं. इति सिद्धम् २१

अव०–द्वितीय मुंडकमैं यह वाक्य है:—"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इति । अर्थ–यथा घटादिकोंमैं सूर्यआलोकादिक भासकत्वरूपसैं भासमान हैं तथा तत्र नाम ब्रह्ममैं भासकत्वरूपसैं सूर्यादिक भासमान नहीं, और अल्प अग्नि किस हेतुसैं प्रकाशेगी. यथा सूर्यादिकोंकरके प्रकाश्य घटादिक सूर्यादिकोंके प्रकाशक नहीं, तैसे ब्रह्मकरके प्रकाश्य सूर्यादिकभी ब्रह्मके प्रकाशक नहीं. ननु–गुरुके गमन कियेसैं जो शि-

ष्यका पाछे गमन है सो स्वनिष्ठ गमनकृत है तथा 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' जा वाक्यमैं तिसके भानपाछे जो भान कहा है सो सूर्योदिकोंका जो स्वनिष्ठ भान तिसकरके ही संभवे है. जा शंकाका तस्य जा वाक्यसैं समाधान करें हैं. यथा अयःपिंडकी जो दाहक्रिया सो अग्निनिष्ठ है तथा सूर्यादिकोंका भान ब्रह्मनिष्ठ है, भिन्न नहीं. इति ॥ २१ ॥

अव०—इस उक्त वाक्यमैं जो सर्वका भासक कहा है सो तेजविशेष है वा ब्रह्म है जा संदेह हुए लोकमैं तेजको प्रकाशकता प्रसिद्ध है, यातें तेजविशेष है; जा पूर्वपक्षमैं यह सूत्रकारका सिद्धांत है:—

अनुकृतेस्तस्य च ॥ २२ ॥

अनुकृतेः । तस्य । च । इति प० ।

अर्थ—'अनुभाति सर्वम्' जा वाक्यमैं स्वयंप्रकाशरूपसैं भासमान चेतनके पीछे सर्व सूर्यादि भासमान होवे हैं यह कहा है, सो सूत्रगत अनुकृतिपदका अर्थ है; यातें 'तं भान्तम्' जा वाक्यमैं परमात्माका अंगीकार है, तेजका नहीं. और तस्य नाम 'तस्य भासा' जा वाक्यमैंभी चेतननिष्ठ सर्वभासकत्व कहा है, तेजको सर्वका भासक कहिना संभवे नहीं; यांते उक्त विषयवाक्यसैं सर्वका जो प्रकाशक कहा है सो ब्रह्म है, तेज नहीं. इति ॥ २२ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ २३ ॥

अपि । च । स्मर्यते । इति प० ।

अर्थ—'न तत् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः' यह गीतामैं भी उक्त अर्थही भगवान्ने स्मरण किया है; यातें अपरकरके अप्रकाश्य सर्वका प्रकाशक तहां परमेश्वरही ज्ञेय है, तेज नहीं. इति । तेजकी उपासना पूर्वपक्षमैं फल है, सिद्धांतमैं निर्विशेष ब्रह्मज्ञान फल है. इति ॥ २३ ॥

अव०—उत्तरसूत्रका पूर्वपक्षमैं भेदसिद्धि फल है, सिद्धांतमैं अभेद फल है। कठकी चतुर्थ वल्लीमैं यह वाक्य है। मनसा[1] एव इदम् आसव्यं नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते

१ इह नाम ब्रह्ममैं अणुमात्रभी नाना नही हैं. जो अविद्यावान् इह नाम अनानारूप ब्रह्ममैं स्वप्नवत् नाना देखे है, सो मरणसैं मरण प्राप्त होवे है। अंगुष्ठमात्र हृदयगत अंतःकरणउपाधिक देहमैं स्थित है. जो कालत्रयका ईशिता है, तांको जो जाने है वह ज्ञानानंतर आत्माको गुप्त करणेकी इच्छा नहीं करे है।

इति" । अंगुष्ठमात्र पुरुष देहके मध्य हृदयरूप पद्ममैं स्थित है. यह उक्तवाक्यमैं कहा है. तहां अंगुष्ठमात्रवाक्य जीवका बोधक है वा ब्रह्मबोधक है, जा संदेह हुएसें अंगुष्ठमात्र परिमाण ब्रह्मका तो संभवे नहीं, यातें उक्तवाक्य जीवबोधक है जा पूर्वपक्ष हुएसे यह सिद्धांत हैः—

शब्दादेव प्रमितः ॥ २४ ॥

शब्दात् । एव । प्रमितः । इति प० ।

अर्थ– शब्दात् नाम उक्तवाक्यमैं ईशान शब्द है तांसै प्रत्यक् अभिन्न परमात्मा अंगुष्ठवाक्यकरके प्रतिपाद्य है, यह अर्थ प्रमितः नाम निश्चित है. यद्यपि अंगुष्ठपरिमाण जीवका लिंग है, तथापि जहां श्रुतिका लिंगसैं विरोध होवे तहां श्रुति बलवान् होवे है. प्रसंगमैं ईशान यह श्रुति है, अंगुष्ठमात्र यह जीवका लिंग है; यातें ईशान यह बलवान् है. त्वंपदका वाच्य जो जीव तांका अनुवाद करके ब्रह्मात्माको अभेदका बोधक अंगुष्ठवाक्य है. इति तात्पर्यम् ॥ २४ ॥

अव०—वास्तवसैं जीवका स्वरूप व्यापक माना है, यांते तांको अंगुष्ठमात्रत्व कैसे है? जा शंकासैं कहे हैंः—

हृद्यपेक्षा तु मनुष्याधिकारत्वात् ॥ २५ ॥

हृदि । अपेक्षा । तु । मनुष्याधिकारत्वात् । इति प० ।

अर्थ—तु पद शंकानिषेधार्थक है. वास्तवसैं व्यापक जो परमात्मा सो जीवरूपको प्राप्त है, यातें अंगुष्ठपरिमाण जो हृदय तत् अपेक्षा नाम तत् अवच्छिन्नरूपसैं तांको अंगुष्ठमात्र कहिना संभवे है. यद्यपि गजादिक शरीरोंमैं हृदयके अंगुष्ठपरिमाणका नियम संभवे नहीं, यांते जीवका अंगुष्ठमात्र नियम कैसे होवेगा, तथापि शास्त्रमैं मनुष्यका अधिकार है, गजादिकोंका नहीं. मनुष्यनका हृदय अंगुष्ठमात्र है, यांते हृदयकी दृष्टिसैं जीवको अंगुष्ठमात्र कहिना संभवे है. इति ॥ २५ ॥

अव०—बृहदारण्यकके चतुर्थ ब्राह्मणमैं यह वाक्य हैः—"ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानम् एव अवेत् अहं ब्रह्मास्मि इति । तस्मात्तत् सर्वमभवत् तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत् तथा ऋषीणां तथा

१ तत् । ब्रह्म । आत्मानं नित्यदृग्रूपं । अवेत् विदितवत् ॥

मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवꣳ सर्वं सूर्यश्चेति। तत् इदम् अपि एतर्हि य एवं वेद अहं ब्रह्मास्मि इति स इदꣳ भवति। तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते। आत्मा हि एषाꣳ स भवति" इति। उक्त वाक्यमैं कहा है कि देवनके मध्यमैं मनुष्यनके मध्यमैं ऋषिनके मध्यमैं जिसने ब्रह्मको जाना है सो तत्‌रूप हुआ है. इति। तहां यह संदेह है कि देवनका ब्रह्मविद्यामैं अधिकार है? वा नहीं. इति। पूर्वशास्त्रमैं मनुष्यनका अधिकार माना है यातें देवनका विद्यामैं अधिकार नहीं यह पूर्वपक्ष है, तहां यह भगवान् सूत्रकारका सिद्धांत हैः—

तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवादिति ॥ २६ ॥

तदुपरि। अपि। बादरायणः। सम्भवात्। इति प०।

अर्थ–तत् नाम मनुष्यनके उपरि नाम ऊपर जे देवता तिनका भी ब्रह्मविद्यामैं अधिकार है यह बादरायण आचार्य माने हैं. अर्थित्व सामर्थ्यादिक जे अधिकारके कारण हैं, ते देवनमैं भी हैं, यातें देवनका विद्यामैं अधिकार संभवे है. इति ॥ २६ ॥

विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॥ २७ ॥

विरोधः। कर्मणि। इति। चेत्। न। अनेकप्रतिपत्तेः। दर्शनात्। इति प०।

अर्थ–ननु–विग्रह विना विद्यामैं अधिकार संभवे नहीं, यातें देवनका विग्रह माना चाहिये. तांके अंगीकार कियेसैं यथा कर्मकर्ता कर्मोंके समीप हुआ कर्मोंपर उपकारक होवे है तथा देवतानको भी कर्मके समीप होकर कर्मोंमैं उपकारक हुआ चाहिये, सो उपकारकत्व एकशरीरका एककालमैं अनेक कर्मनविषे संभवे नहीं यातें देवनको विग्रहवान् मानेसैं कर्मनमैं उक्तविधिसैं विरोध सिद्ध होवेगा, इति चेत् नाम यदि यह शंका करें तौ अनेक प्रतिपत्तिके दर्शनसैं संभवे नहीं. एक देवताको अनेक शरीरकी प्रतिपत्ति नाम प्राप्ति एककालमैं दर्शनात् नाम श्रुतिमैं देखी है, यातें उक्त दोष संभवे नहीं. इति। अथवा यथा एक महात्माको अनेक जीव एक कालमैं वंदना करे हैं तथा एक देवताके अर्थ अनेक जीव एक कालमैं अनेक कर्म करे हैं यातें देवतानके उपकारकत्वमैं रंचक विरोध नहीं. इति ॥ २७ ॥

1 तत् ब्रह्म एतत् आत्मानं पश्यन् प्रतिपेदे प्रतिपन्नवान् ॥

शब्द इति चेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥२८॥

शब्दे । इति । चेत् । न । अतः । प्रभवात् । प्रत्यक्षानु-
मानाभ्याम् । इति प० ।

अर्थ–ननु–यद्यपि कर्मनमैं विरोध नहीं तथापि शब्द नाम वेदमैं विरोध है, वैदिक शब्द नित्य हैं देवताविग्रह अनित्य हैं यांते शब्दका अर्थसैं जो नित्य-संबंध ताके असंभवसैं शब्दमैं विरोध होवेगा जा शंकाका यह समाधान है कि देवतानिष्ठ नित्य जो आकृति तांका वाचक वैदिक शब्द है. अतः नाम नित्य आकृतिवाचक वेदसैं देवादिप्रपंचका प्रभव नाम उत्पत्ति सुनी है सो प्रत्यक्ष नाम श्रुतिसैं अनुमान नाम स्मृतिसैं उक्त अर्थही निश्चित है; यातें वैदिकशब्दोंको नित्य आकृतिका वाचक होनेसैं शब्दमैं भी विरोध नहीं. इति ॥ २८ ॥

अत एव च नित्यत्वम् ॥ २९ ॥

अतः । एव । च । नित्यत्वम् । इति प० ।

अर्थ–नित्य जो आकृति सो शब्दका अर्थ है. अतः नाम तिस नित्य आकृतिरूप शब्दार्थसैं वेदनिष्ठ भी नित्यत्व सिद्ध होवे है. तथाहि अनुमानम्–'वेदः अवान्तरप्रलयावस्थायी जगद्‌हेतुत्वात् ईश्वरवत्' इति ॥ २९ ॥

समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च ॥ ३० ॥

समाननामरूपत्वात् । च । आवृत्तौ । अपि । अ-
विरोधः । दर्शनात् । स्मृतेः । च । इति प० ।

अर्थ–ननु–नित्य आकृति पदार्थ अंगीकार किये भी प्रलयमैं सर्वआकृतिक व्यक्तिके नाश हुएसैं पुनः सोई आकृतिक व्यक्ति उपजे है जा अर्थका साधक प्रमाण कोई नहीं, यातें नित्यानित्य संबंध विरोध दूर होवे नहीं;जा शंकाका उत्तर कहे हैं कि उत्पत्ति और प्रलयकी आवृत्ति हुए भी शब्दमैं विरोध नहीं. प्रलय और उत्पत्तिमैं समान नाम रूप होवे हैं. प्रलयमैं जगतका निरन्वय नाश होवे तौ जगत् विलक्षण होवे. निरन्वय नाश होवे नहीं किंतु अन्वय नाश होवे है अर्थात् संस्काररूपसैं अविद्यामैं जगत् स्थित रहे है. यथा अनुभवमैं भावनारूप संस्कार रहे हैं, यथा मृत्तिकामैं घटके संस्कार रहे हैं, यथा सुषुप्तिमैं सर्वके संस्कार रहे हैं तथा प्रलयमैं सर्वके संस्कार रहे हैं यांते उत्पत्तिप्रलयमैं समान नाम रूप होवे है । "अस्मिन्प्राण

एकधा भवति तदा एनं वाक् सर्वैर्नामभिः सहाऽप्येति चक्षुः सर्वैः रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति स यदा प्रतिबुध्यते यथाऽग्नेर्ज्वलतः सर्वा दिशो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन् एवमेव एतस्मात् आत्मनः सर्वे प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः" यह श्रुति दिन दिनमैं उत्पत्ति प्रलय कहे है. इनमैं यथा समान नाम रूप होवे हैं तथा पूर्वकल्पप्रपंचके समानही नाम रूप उत्तर प्रपंचका होवे है; यातें पूर्वआकृतिक व्यक्तिके अंगीकारसैं शब्दमैं रंचक विरोध नहीं. श्रुतिमैं प्राणपद परमात्माका वाचक है. एकधापदसैं अभेदग्रहण है, सर्वप्राणपदसैं वाक्यादिकका ग्रहण है. देवपद अग्नि आदिकोंका वाचक है, लोकपद विषयवाचक है. इति ॥ स्मृतेः नाम "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इत्यादि श्रुति स्मृतिसैं भी समानही नामरूप निश्चित है. इति ॥ ३० ॥

मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ॥ ३१ ॥

मध्वादिषु। असम्भवात्। अनधिकारम्। जैमिनिः। इति प०।

अर्थ—"असौ वा आदित्यो देवमधु" जा श्रुतिमैं सूर्यको देवमधु कहा है अर्थात् देवनको मधुरूपसैं सूर्यकी उपासनाका विधान किया है, तहां सूर्यको देवनमैं मानके एकही सूर्यको उपास्य उपासक और प्राप्य प्रापक कहिना संभवे नहीं, यातें यथा मधुआदिक उपासनामैं देवनका अधिकार नहीं, तथा ब्रह्मविद्यामैंभी देवनका अधिकार नहीं. तहां यह अनुमान है:—'ब्रह्मविद्यामैं देवनका अधिकार नहीं, विद्या होनेसैं, मधुआदि विद्यावत्' इति। यह जैमिनि आचार्य माने हैं. इति ॥ ३१ ॥

ज्योतिषि भावाच्च ॥ ३२ ॥

ज्योतिषि। भावात्। च। इति प०।

अर्थ—चले जाते जे ज्योतिर्मंडल प्रतीत होवे हैं तिनको लोकमैं सूर्यादिक देवता वाचक शब्दोंसैं कहे हैं, ते मंडल मृत्तिकावत् अचेतन हैं, विग्रहसैं रहित हैं, यातें देवनका ब्रह्मविद्यामैं अधिकार नहीं; यह जैमिनि आचार्य माने हैं. इति।

भावं तु बादरायणोऽस्ति हि ॥ ३३ ॥

भावम्। तु। बादरायणः। अस्ति। हि। इति प०।

अर्थ—तु पद पूर्वपक्षनिषेधार्थक है, देवनका ब्रह्मविद्यामैं 'भावम्' नाम अधि-

कारित्व अस्ति नाम है. यह बादरायणाचार्य माने हैं. यद्यपि देवताका देवताउपासनामैं अधिकार नहीं तथापि निर्गुण ब्रह्मविद्यामैं अधिकार है. और सूर्यादिक शब्द केवल ज्योतिर्वाचक नहीं किंतु तत्अभिमानी देवतावाचक हैं. सूर्य पुरुष हुआ था इंद्र मेष हुआ था इत्यादि गाथासैं सामर्थ्यभी प्रतीत होवे है, यातें देवतावोंका विद्यामैं अधिकार है. इति ॥ ३३ ॥

अव०—शूद्रजातिका ब्रह्मविद्यामैं अधिकार है यह उत्तरसूत्रके पूर्वपक्षमैं फल है, सिद्धांतमैं अधिकारका अभाव फल है. छांदोग्यके चतुर्थ प्रपाठकमैं एक गाथा है कि कोई जानश्रुति राजा था वह बहुगुणोंकरके युक्त था, तिसके गुणोंकरके संतोषित देव ऋषि हंसोंके रूप धारकर ग्रीष्मकालमैं मंदरपर सोयेहुए राजाके ऊपरसैं पंक्ति बांध कर आये, तहां आकर पाछेका हंस आगेके हंसको बोला हे भद्राक्ष ! इस जानश्रुति राजाके स्वर्गलोकपर्यंत विद्यमान तेजको तैं नहीं देखे है, अर्थात् इसके ऊपरसैं नहीं चला चाहिये. इस वचनको सुनके आगेका हंस बोला कि यह राजा क्या रैक्कके तुल्य है? यह वाक्य सुनकर राजाने विचारा कि रैक्क कोई ब्रह्मवेत्ता है तांके समीप जाना चाहिये, जा विचारके तांकी खबर मँगायके तहां गौरथादिक लेजाकर कहा ! हे रैक्क ! इनको ग्रहण करके हमको उपदेश करो. इस वचनको सुनके रैक्कने यह वाक्य कहा कि—“अह हारेत्वा शूद्र ! तवैव गोभिरस्तु इति” इसमैं अह पद कोपयुक्त शब्दवाची है. हे शूद्र! हारेत्वा नाम हारयुक्त जो रथ सो गोसहित तुम्हारे लियेही हो. इति । इसमैं यह संदेह है कि ब्रह्मविद्यामैं शूद्रका अधिकार है वा नहीं. इति । आत्माअर्थी शूद्रभी है यातें देवनका यथा विद्यामैं अधिकार है तथा शूद्रकाभी ब्रह्मविद्यामैं अधिकार है. और जानश्रुतिको रैक्कने शूद्रसंबोधन देकर पाछे उपदेश किया है; यातें शूद्रका विद्यामैं अधिकार है. इस पूर्वपक्षमैं यह उत्तरका सूत्र है:—

शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि ॥३४॥

शुक् । अस्य । तत्–अनादरश्रवणात् । तत्[१]–आद्रवणात् । सूच्यते । हि । इति प० ॥

अर्थ–अस्य नाम इस जानश्रुतिको तत नाम हंसके अनादरश्रवणसैं जो शुक् नाम शोक उपजा था, सो शोक रैक्कने स्वसर्वज्ञताके प्रगट करनेके लिये शूद्रपदसैं सूच्यते नाम सूचन किया है. तत् नाम शोकके आद्रवणात् नाम

१ वा तदा आद्रवणात् नाम राजाको रैक्कके समीप प्राप्त होनेसैं ।

जानश्रुतिको प्राप्त होनेसै योगवृत्तिकरके शूद्रपद क्षत्रियवाचक है; यांते शूद्रका ब्रह्मविद्यामैं अधिकार नहीं. इति ॥ ३४ ॥

किंचः—

क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ॥ ३५ ॥

क्षत्रियत्वगतेः । च । उत्तरत्र । चैत्ररथेन । लिङ्गात् । इति प० ।

अर्थ–रैक्कके उपदेशके आगे प्राणविद्या है. उत्तरत्र नाम ता प्राणविद्यामैं अभिप्रतारिनाम चैत्ररथ प्रसिद्ध क्षत्रियके साथ सहचार सुना है. बाहुल्यता करके सहचार एकजातिवानोंका होवे है. लिंगात् नाम तिस सहचाररूप लिंगसैं जानश्रुतिमैं क्षत्रियत्व गति नाम अवगति अर्थात् निश्चय होवे है, यांतेभी जानश्रुति मुख्य शूद्र नहीं. तहां प्राणविद्यामैं यह कहा है कि शौनक कापेय और अभिप्रतारि काक्षसेनि यह दोनो भोजनस्थानमैं गये तब एक ब्रह्मचारीने उनसैं भिक्षा मांगी. इति ॥ तहां शुनकका पुत्र शौनक ब्राह्मण, कक्षसेनका पुत्र अभिप्रतारि राजा था। "एतेन वै चित्ररथं कापेया अयाजयन्" जा श्रुतिमैं कपि गोत्रवान्को चित्ररथ क्षत्रियका पुरोहित कहा है, यांते कपिगोत्रवान् चित्ररथके पुरोहितसैं संयोग होनेकरके अभिप्रतारिमैं चैत्ररथत्व सिद्ध होवे है. यद्यपि अभिप्रतारिमैं तिसके योगसैं चैत्ररथत्व सिद्ध होवे है, क्षत्रियत्व सिद्ध होवे नहीं, तथापि "तस्मात् चैत्ररथिर्नाम एकः क्षत्रपतिरजायत" जा श्रुतिसैं क्षत्रियत्व सिद्ध होवे है. तस्मात् नाम चित्ररथसैं चैत्ररथ नामक एक क्षत्रियोंका पति उपजा. इति ॥ ३५ ॥ .

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ ३६ ॥

संस्कारपरामर्शात् । तदभावाभिलापात् । च । इति प० ।

अर्थ–जा जा स्थानमैं विद्याका उपदेश है ता ता स्थानमैं उपनयनादि संस्कारोंका परामर्श होवे है, यांतेभी शूद्रजातिका विद्यामैं अधिकार नहीं। ननु–शूद्रके भी उपनयनादिक कल्पेसैं हानि नहीं, जा शंकासैं कहै हैं—"न शूद्रे पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति । शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिः" इत्यादिक वचनोंमैं तत् नाम उपनयनादि संस्कारोंका अभाव अभिलापात् नाम कथन किया है यांते संस्कारकल्पना संभवे नहीं । भक्ष्यअभक्ष्यविभागके अभावसैं शूद्रमैं पातक होवे नहीं. इति ॥ ३६ ॥

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥ ३७ ॥

तदभावनिर्धारणे । च । प्रवृत्तेः । इति । प० ।

अर्थ–छांदोग्यके चतुर्थ प्रपाठकमैं यह कहा है कि सत्यकाम एक ब्राह्मण था उसने पिताके मरे पीछे मातासैं पूछा, हम ब्रह्मचर्य करेंगे, हमारा गोत्र क्या है ? उसने कहा हमको खबर नहीं, हमारा नाम जवाला है. सत्यकाम तुम्हारा नाम है. सत्यकामने गौतमके पास जाकर कहा हे भगवन् ! आपके पास ब्रह्मचर्य करेंगे. तब गौतमने यह वाक्य कहा कि "**किंगोत्रो नु सोम्यासीति इति**" गौतमने कहा तुम्हारा गोत्र क्या है ? उसने कहा हमने मातासैं पूंछा था सो उसने कहा 'यौवनमैं बहुव्यवहारमैं हमारा चित्त रहिता था इसलिये तुम्हारे पिताको मैं जानती नहीं, जवाला मेरा नाम है, सत्यकाम तुम्हारा नाम है' सो मैं सत्यकाम जावाल हूं. तब गौतमने यह कहा कि "**नैतत् अब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सोम्य आहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगाः इति**" गौतमने उसको सत्यभाषणसैं ब्राह्मण निश्चय किया, तब उपनयनादि किये. सो सूत्रका यह अक्षरार्थ है कि सत्यकाममैं तत् नाम शूद्रत्वके अभावको निर्धारण नाम निश्चयकरके उपदेशमैं गौतमकी प्रवृत्तेः नाम प्रवृत्ति हुई थी यांते शूद्रजातिका विद्यामैं अधिकार नहीं. इति ॥ ३७ ॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३८ ॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् । स्मृतेः । च । इति प० ।

अर्थ–स्मृतिमैं साक्षात् वेदश्रवणका वेदाध्ययनका अनुष्ठानरूप अर्थका शूद्रको निषेध लिखा है यातें भी वेदपूर्वक विद्यामैं शूद्रका अधिकार नहीं. इति ॥ ३८ ॥

अव०–कठकी पंचमवल्लीके आरंभमैं यह कहा है—"**ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् । महद् भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ भयादस्याऽग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च**

१ तत् नाम ब्रह्मको कोईभी जन न अत्येति नाम तासैं अन्यत्वको प्राप्त होवे नहीं किंतु सुषुप्तिमैं तत्‌रूपताको जाग्रत्स्वप्नमैं तत्‌संबंधको प्राप्त होवे है. जगत्‌का मूल कोई नहीं या शंकासैं यह मंत्र प्रवृत्त होवे है.

मृत्युर्धावति पञ्चमः इति" ॥ उक्त वाक्यमैं यह सर्व जगत् प्राणोंको निश्चित हुए चेष्टा करे है, प्राणोंसैं उपजे है; सो प्राण महान् है, तासैं सर्व अग्निआदिक भय करे हैं, यातें भयरूप है. भयका कारण होनेसैं वज्ररूप है, तिसको जे जाने हैं ते अमृतरूप होवे हैं. इति ॥ इस वाक्यमैं जो प्राण कहा है सो वायु है वा ब्रह्म है यह संदेह है. पूर्वपक्षमैं प्रसिद्धिसैं वायु अंगीकार कियेसैं यह उत्तरका सूत्र हैः—

कम्पनात् ॥ ३९ ॥

अर्थ—कम्पनात् नाम जगतकी जो जीवनादि चेष्टा तांका प्राण कारण है यातें उक्त वाक्यमैं प्राणपद ब्रह्मका बोधक है, प्राणवायुका बोधक नहीं. "प्राणस्य प्राणः" इत्यादिक अनेक वाक्यनमैं प्राणशब्द ब्रह्मका बोधक देखा है और पूर्ववाक्यमैं भयहेतु भी सुना है, यातें ब्रह्महीका तहां अंगीकार है, वायुका नहीं. इति ॥ ३९ ॥

ज्योतिर्दर्शनात् ॥ ४० ॥

ज्योतिः । दर्शनात् । इति प० ।

अर्थ—"परं ज्योतिरुपसम्पद्य" जा छांदोग्यवाक्यमैं ज्योति कथन किया है. सो ज्योति सूर्यादिकोंका तेज है वा ब्रह्म है जा संशयसैं पूर्वपक्षमैं तेज अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत है कि आरंभमैं ब्रह्म सर्वपापरहित अमृत अजर अभयरूप कथन किया है यातें उक्तधर्मनके दर्शनसैं ज्योति तहां ब्रह्म अंगीकृत है. तेजका अंगीकार नहीं. पूर्वपक्षमैं सूर्यउपासना फल है, सिद्धांतमैं ब्रह्मबोध फल है. इति ॥ ४० ॥

अव०—ज्योतिवाक्यके आगे यह वाक्य हैः—"आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म तदमृतं स आत्मा इति" एक नाम पदका प्रसिद्ध अर्थ है. यह आकाशही नामरूपका निर्वहिता है. अर्थात् नामरूप आकाशके अंतर हैं; सो ब्रह्म है, सो आत्मा है, सो अमृत है. इति । इस उक्त वचनमैं भूताकाशका ग्रहण है वा परमात्मा अंगीकृत है जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं भूताकाश अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांतसूत्र हैः—

आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥

आकाशः । अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् । इति प० ।

अर्थ—आकाशको उक्त विषयवाक्यमैं नामरूपसैं भिन्न कहा है, भूताकाशको नामरूपसैं भिन्न कहिना संभवे नहीं; यांते तहां आकाशशब्दसैं परमात्माका

अंगीकार है, भूताकाशका नहीं. पूर्वपक्षमैं ब्रह्मउपासनासैं क्रममुक्ति फल है. सिद्धांतमैं ब्रह्मबोधसैं साक्षात्मुक्ति फल है. इति ॥ ४१ ॥

अव०—उत्तरसूत्रका पूर्वपक्षमैं कर्मकर्ताकी उपासना फल है, सिद्धांतमैं प्रत्यक्-ब्रह्म अभेदबोध फल है. बृहदारण्यकके षष्ठ अध्यायके चतुर्थ ब्राह्मणमैं ये वाक्य हैं:—"स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदये आकाशः तस्मिन् शेते सर्वस्य वशी सर्वस्य ईशानः सर्वस्याधिपतिः स न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयान् एष सर्वेश्वरः एष भूताधिपतिः एष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोकानाम् असम्भेदाय" इति। ये वाक्य जीवके बोधक हैं वा जीवका अनुवाद करके ब्रह्मके बोधक हैं जा संदेह हुएसैं उक्त वाक्यनमैं संसारीबोधक पद हैं ब्रह्मबोधक पद नहीं, यांते जीवके बोधक हैं जा पूर्वपक्षमैं यह उत्तरका सूत्र है:—

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन ॥ ४२ ॥

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योः। भेदेन। इति प०।

अर्थ—सुषुप्तिकालमैं और उत्क्रांतिकालमैं जीवसैं भिन्न कर ईश्वरको उक्तवाक्यनमैं कहा है, यांते उक्त वाक्य जीवका अनुवाद नहीं करें हैं किंतु विज्ञानमय सुषुप्तिअवस्थावान् जीवका अनुवाद करके ब्रह्माभेदके बोधक हैं. इति ॥ ४२ ॥

पत्यादिशब्देभ्यः ॥ ४३ ॥

पत्यादिशब्देभ्यः। इति प०।

अर्थ—उक्तवाक्यमैं पतिआदिक पद असंसारिबोधक भान होवे हैं, यांते असंसारी जीवके उक्तवाक्य बोधक हैं. सो, जीवका असंसारिस्वरूप परमात्मास्वरूप है, यांते उक्तवाक्य परमात्माबोधक हैं. इति ॥ ४३ ॥

इति सूत्रभावार्थप्रकाशिकाभाषाटीकायां प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थपादप्रारम्भः।

इस पादमैं अष्टाविंशति सूत्र हैं. तिनमैं आठ अधिकरण हैं. विंश गुण हैं.

तथाहि—

सूत्रसंख्या।	अधिकरण।	गुण	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	अव्यक्तका विचार.

२	+	गु०	अ०
३	+	गु०	अ०
४	+	गु०	अ०
५	+	गु०	अ०
६	+	गु०	अ०
७	+	गु०	अ०
८	अ०	+	अजाविचार.
९	+	गु०	अ०
१०	+	गु०	अ०
११	अ०	+	पञ्चजनविचार.
१२	+	गु०	प०
१३	+	गु०	प०
१४	अ०	+	कारणवाक्यविचार.
१५	+	गु०	का०
१६	अ०	+	वेदितव्यविचार
१७	+	गु०	वे०
१८	+	गु०	वे०
१९	अ०	गु०	द्रष्टव्यविचार.
२०	+	गु०	द्र०
२१	+	गु०	द्र०
२२	+	गु०	द्र०
२३	अ०	+	निमित्तोपादानविचार.
२४	+	गु०	नि०
२५	+	गु०	नि०
२६	+	गु०	नि०
२७	+	गु०	नि०
२८	अ०	गु०	सर्वमतनिषेध.
	८	२०	इति

अव०–प्रथमपादमैं सर्व वेदांतका ब्रह्ममैं समन्वय सिद्ध किया है, द्वितीयपादमैं अस्पष्ट लिंगयुक्त जे उपास्य ब्रह्मबोधक वाक्य तिनका विचार किया

है, तृतीयपादमैं अस्पष्टलिंगयुक्त जे ज्ञेय ब्रह्मबोधक वाक्य तिनका विचार किया है. कहूं कहूं वाक्यनमैं प्रधानबोधक पद प्रतीत होवे हैं यांते प्रधानको अशब्द कहिना संभवे नहीं, जा शंकासैं तिन पदनको अपर अर्थबोधकताके प्रतिपादनार्थ इस पादका आरंभ है। पूर्व सर्व जगतका कारण जो ब्रह्म सो सर्व वेदांतकरके प्रतिपाद्य है प्रधान प्रतिपाद्य नहीं जा अर्थ सिद्ध किया है, तहां यथा ब्रह्मको अंगीकार किया है तथा प्रधानकोभी जगत्कारण मानके वेदांतकरके प्रतिपाद्य मानना संभवे है. किसी कल्पमैं ब्रह्मको किसी कल्पमैं प्रधानको कारण मानेसैं हानि नहीं, जा शंकासैं उत्तरसूत्रका आरंभ है. तहां पूर्वपक्षमैं ब्रह्मविषे वेदांतसमन्वयकी असिद्धि फल है. सिद्धांतमैं समन्वय नियमसिद्धि फल है. कठकी तृतीयवल्लीमैं यह वाक्य हैं:—"**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥ यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ यस्तु अविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः। न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥ यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः। स तु तत्पदमाप्नोति यस्मात् भूयो न जायते॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः। सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम्॥ इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥ एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**" इति।

अर्थ—आत्मा भोक्ता होनेसैं प्रधान है यांते आत्माको रथका स्वामी जान। शरीर भोगका स्थान है यांते इसको रथ जान। बुद्धि विवेक अविवेकरूप वृत्तिसैं शरीरद्वारा भोक्ताको सुख दुःखमैं जोड़े है यांते बुद्धिको सारथि जान। विवेकाविवेकयुक्त मनसैं इंद्रियोंकी विषयोंमैं प्रवृत्ति और तहांसैं निवृत्ति होवे है यांते मनको प्रग्रह नाम वागडोरके समान जान। वश किये हुए इंद्रिय मुक्तिके मार्गमैं प्राप्त करे हैं, अवश इंद्रिय अनर्थको प्राप्त करे हैं; यांते इंद्रियोंको अश्वनके समान जान। यथा अश्व मार्गको देखकर चले है तथा इंद्रियरूप

घोड़ेभी विषयोंको देखके चले हैं यांते विषयोंको मार्गके समान जान । इंद्रियमनकरके युक्त आत्माको बुद्धिमान् भोक्ता कहे हैं । जो अयुक्त मनकरके सदा अविज्ञानवान् है तांकी इंद्रियां वशमैं नहीं, यथा दुष्ट अश्व सारथिके वश नहीं रहें हैं. जो युक्त मनकरके सदा विज्ञानवान् है तांकी इंद्रिया वशमैं हैं, यथा शिक्षित अश्व सारथिके वशमैं होवे हैं. जो अमनस्क, अशुचि, अविज्ञानवान् है सो परपदको नहीं प्राप्त होवे है; किंतु संसारको प्राप्त होवे है. जो सदा समनस्क है, शुचि है, विज्ञानवान् है, सो तिस पदको प्राप्त होवे है जासैं पुनः जन्म नहीं होवे है. जो विज्ञानसारथिवान् है, मनःप्रग्रहवान् है सो संसारमार्गके पारको प्राप्त होवे है. सो विष्णुका परमपद है. इति ॥ उक्त वाक्यनसैं अजितेन्द्रियको संसारप्राप्ति कहकर जितेन्द्रिय पुरुषको विष्णुके परपदकी प्राप्ति कही है. सो संसारमार्गसैं परे विष्णुका परपद कौन है ? जा संदेहसैं कहे हैं. इंद्रियोंसैं अर्थ नाम विषय परे हैं. सर्व इंद्रियोंसैं परे हैं. श्रुतिमैं विषयोंसैं इंद्रिय परे अंगीकृत हैं; यातें मनको इंद्रियोंसैं परे कहा है. निश्चयरूप बुद्धि मनसैं परे है. पूर्व जो रथीकरके आत्मा कहा है सो सर्वका स्वामी भोक्ता बुद्धिसैं परे है, सो आत्मा महान् है. तिस महान् आत्मासैं अव्यक्त परे है. अव्यक्तसैं परे पुरुष है. तांसै परे रंचक नहीं. सो अवधि है. सोई पर गति है. यह आत्मा सर्वभूतनसैं छपाहुआ है, प्रतीत होवे नहीं. सूक्ष्मदर्शी पुरुष सूक्ष्म बुद्धिकरके इसको जाने हैं. इति ॥ उक्त वाक्यमैं अव्यक्तपदसैं प्रधानका अंगीकार है वा रथरूप शरीरका अंगीकार है जा तहां संदेह हैं. सांख्यमतमैं महत् अव्यक्त । पुरुष । जा त्रय पद त्रय तत्वके वाचक माने हैं; यातें अव्यक्तपदसैं तहां प्रधान अंगीकृत है, यह पूर्वपक्ष है. इसका आधे सूत्रसैं अनुवाद करके आधे सूत्रसैं भगवान् सूत्रकार समाधान करे हैं:—

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ॥ १ ॥

आनुमानिकम् । अपि । एकेषाम् । इति । चेत् । न । शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेः । दर्शयति । च । इति प० ।

अर्थ—एकेषाम् नाम काठकोंकी शाखामैं अव्यक्तपदका वाच्य प्रधान है यातें आनुमानिक नाम अनुमानसिद्ध जो प्रधान तांको सांख्यमतानुसारी अव्यक्तपदका वाच्य माने हैं यातें प्रधानको अशब्द कहिना संभवे नहीं, इति चेत्

नाम यह शंका करें तौ संभवे नहीं. तथाहि आरंभवाक्यमैं शरीरकी रूपकविन्यस्ति नाम रथरूपकल्पनाका ग्रहण किया है यातें अव्यक्तपदसैं शरीर अंगीकृत है, व शरीरका रूपकविन्यास कहा है तांका गृहीतेः नाम अव्यक्तपदसैं ग्रहण है, और पूर्व उत्तर विचारसैं शरीरकोही अव्यक्त पदकरके बोधवाक्य दर्शयति नाम दिखावे है, यातें प्रधान अव्यक्तपदका वाच्य नहीं. इति ॥ १ ॥

अव०—ननु–शरीर तो व्यक्तपदका वाच्य है, यांते तांको अव्यक्त पदका वाच्य कहना संभवे नहीं; जा शंकासैं कहे हैंः—

सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ॥ २ ॥

सूक्ष्मम् । तु । तदर्हत्वात् । इति प० ।

अर्थ–तुपद शंकानिषेधार्थक है, तत् नाम अव्यक्त पदके अर्ह नाम योग्य सूक्ष्म भूत हैं यांते स्थूलशरीरके आरंभक जे सूक्ष्म भूत तिनको अव्यक्तपदसैं श्रुति कहे है वा तदभिमानी हिरण्यगर्भ अंगीकृत है, यथा 'गोभिः श्रीणीत मत्सरम्' इस वाक्यमैं गोपदसैं गोविकार जो पयस ताका ग्रहण है, तथा तहां श्रुतिमैं कारणवाचक अव्यक्तपदसैं तत्कार्य शरीरका ग्रहण है। दुग्धकरके सोमको मिलावे यह वाक्यका अर्थ है. इति ॥ २ ॥

अव०—ननु–सिद्धांतमैं जे सूक्ष्म भूत माने हैं तेही सांख्यमतमैं प्रधान प्रतीत होवे हैं, तांसैं भिन्न कोई प्रधान पदार्थ प्रतीत होवे नहीं; यांते प्रधान-कारणवाद सिद्ध होवे है; जा शंकासैं कहे हैंः—

तदधीनत्वादर्थवत् ॥ ३ ॥

तदधीनत्वात् । अर्थवत् । इति प० ।

अर्थ–प्रधान जो पदार्थ माना है तांको हम तत् नाम ईश्वरके अधीन माने हैं यातें प्रधानकारणवाद सिद्ध होवे नहीं. सो ईश्वरभी शक्तिविना कार्य करणेमैं समर्थ नहीं किंतु शक्तिको आश्रय करकेही कार्य करे है यातें अव्यक्तपदका वाच्य अर्थवत् है, अनर्थक नहीं. इति ॥ ३ ॥

किंचः—

ज्ञेयत्वावचनाच्च ॥ ४ ॥

ज्ञेयत्वावचनात् । च । इति प० ।

अर्थ–सांख्यमतमैं प्रकृतिपुरुषके विवेकज्ञानसैं मुक्ति मानी है यातें तांके मतमैं

मोक्षार्थ प्रधान ज्ञेय सिद्ध होवे है,प्रसंगमैं कठविषे प्रधानको ज्ञेय कहनेवाला वाक्य प्रतीत होवे नहीं किंतु प्रसंगमैं अव्यक्त पद मात्र सुना है, यातें प्रधानको ज्ञेय कहनेवाले वचनका अभाव होनेसैंभी अव्यक्तपदका वाच्य प्रधान नहीं. इति ॥४॥

वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ॥ ५ ॥

वदति । इति । चेत् । न । प्राज्ञः । हि । प्रकरणात् । इति । प० ।

अर्थ–कठमैं पूर्वोक्त वाक्यके आगे यह वाक्य है:—"**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् । अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते इति**" इसका यह अर्थ है कि सदा जो शब्दादिकोंसे रहित है तिसको निचाय्य नाम जानके मृत्युके मुखसैं छूटे है. इति ॥ यह वाक्य प्रधानको वदति नाम ज्ञेय कहे है यातें प्रधानको ज्ञेय करके कोई वाक्य कहे नहीं यह कथन असंगत है, जा शंकाका यह उत्तर है कि 'पुरुषसैं परे रंचक नहीं सोई गति है' इत्यादिक वचनोंकरके आत्माका तहां प्रकरण प्रतीत होवे है; यातें उक्तश्रुतिमैं निचाय्य नाम ज्ञेयरूपसैं प्राज्ञ आत्माका उपदेश है, प्रधानका नहीं. इति ॥ ५ ॥

किंचः—

त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॥ ६ ॥

त्रयाणाम् । एव । च । एवम् । उपन्यासः । प्रश्नः । च । इति । प० ।

अर्थ–कठमैं अग्नि, जीव, परमात्मा जा त्रयका एवम् नाम वक्तव्यताकरके उपन्यास नाम ग्रहण है. त्रयविषेही तहां प्रश्न है यातेंभी प्रधान अव्यक्त पदका वाच्य नहीं और ज्ञेय नहीं । यह त्रय प्रश्न हैं— "**स[1] त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम्**" यह अग्निविषे प्रश्न है । "**लोकादि[2]मग्निं तमुवाच तस्मै**" इत्यादि तहां उत्तर है । "**या[3] इयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्ति इत्येके नायम् अस्ति इति चैके एतत् विद्याम् अनुशिष्टः**" यह जीवविषे प्रश्न है । "**योनि[4]मन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्ये अनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्**" यह उत्तर है । "**अन्यत्र**

---

१ सो तैं यम स्वर्गसाधन अग्निको जाने है. हे मृत्यो! तांको मम श्रद्धावान् प्रति कहो। २ सर्वलोकनका आदि जो अग्नि विराट्स्वरूप तांको नचिकेता प्रति कहा। ३ मनुष्यके मृत्युहुए देहसैं भिन्न आत्मा है यह कोई कहे हैं कोई नहीं कहे हैं यह जो संदेह है तत्निवृत्तिका उपायरूप विद्याको तुम्हारे उपदेश करके जानूं सो कहो ? यह तीसरा वर बाकी है। ४ कोई अविद्यावान् शुक जीवन्मुक्त हुए शरीरग्रहणार्थ योनिमैं प्रवेश करे हैं, अत्यंत अधम स्थावरयोनिको पावे हैं, कर्मउपासनाके अनुसार।

धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात् कृताकृतात् । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत् पश्यसि तत् वद" यह परमात्माविषे प्रश्न है । "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" इत्यादि उत्तर है. प्रधानविषे उत्तर प्रश्न प्रतीत होवे नहीं; यातें प्रधान अव्यक्तपदका वाच्य नहीं. इति ॥ ६ ॥

किंचः—

महद्वच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—यथा । "वेद अहम् एतं पुरुषं महान्तम्" इत्यादि वेदमैं सुना जो महत्पद तिसको सांख्यमतवाले महत्तत्त्वका वाचक नहीं माने हैं, तथा वैदिक अव्यक्त पदभी प्रधानका वाचक नहीं; किंतु शरीरका बोधक है. इति ॥ ७ ॥

अव०—श्वेताश्वतरके चतुर्थ अध्यायमैं यह श्रुति हैः—"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः" इति । अर्थ—जन्मरहित सत्व रज तम गुणरूप सर्व प्रजा कारण प्रकृति एक है, एक अजन्मा पुरुष ता प्रकृतिको सेवन करताहुआ सो रहा है. अपर अजन्मा तांसैं भोगनको भोगकर तांको त्याग देता है. इति । इस वाक्यमैं जो अजा पद है तांसैं प्रधान अंगीकृत है वा तेज अप अन्नरूप अवांतर प्रकृति अंगीकृत है यह संदेह है. "न जायते इति अजा" या योगवृत्तिसैं सांख्यमतमैं प्रधान अंगीकार कियेसैं यह सूत्रकारका सिद्धांत हैः—

चमसवदविशेषात् ॥ ८ ॥

चमसवत् । अविशेषात् । इति प० ।

अर्थ—उक्तवाक्यमैं कोई असाधारण लिंग प्रधानका प्रतीत होवे नहीं, 'न जायते इति अजा' यह जो योगवृत्तिसैं अजात्वरूप लिंग है तांसैं प्रधानभिन्न पदार्थका ग्रहणभी संभवे है. यथा—'अर्वाक् बिलः चमस ऊर्ध्वबुध्नः' इस वाक्यसैं यह चमस है जाविध निश्चय होवे नहीं 'नीचे जांका मुख है, ऊपर बुध्न है, सो चमसपात्र है' जा योगवृत्तिसैं चमसका इदंताकरके निश्चय होवे नहीं; तथा योगवृत्तिसैं चमसवत् अविशेषात् नाम प्रधानभिन्नका ग्रहणभी तुल्य होवे है, यातें अजापदसैं नियमकरके प्रधानको ग्रहण करना संभवे नहीं. इति ॥८॥

ज्योतिरुपक्रमा तु तथा ह्यधीयत एके ॥ ९ ॥

ज्योतिरुपक्रमा । तु । तथा । हि । अधीयते । एके । इति प० ।

अर्थ—ज्योति नाम तेज होवे उपक्रम नाम आरंभमैं जिनके ते ज्योतिउपक्रम कहिये हैं अर्थात् तेज जल भूमिका ग्रहण है. तिन त्रयका अजापदसैं ग्रहण है. यथा अजामंत्रमैं लोहित शुक्ल कृष्ण रूप प्रकृति कही है । एके नाम छांदोग्यवान् तथाहि अधीयते नाम तेजजलअन्नको प्रसंगमैं लाकर तेजजलअन्नका लोहित शुक्ल कृष्णरूप कहे हैं यातैं अजासैं त्रयको ग्रहण करे हैं अथवा अनिर्वचनीय मायाका अजापदसैं ग्रहण है. इति ॥ ९ ॥

अव०—ननु छाग आदिकोंमैं यथा अजात्वजात्याधारत्व है तथा तेजजलभूमिमैं अजात्वजातिका आधारत्व नहीं, यातैं तेज जल भूमि रूप प्रकृतिमैं अजा पद रूढ़ नहीं और तेजजलभूमि उपजे हैं यातैं योगवृत्तिसैं भी अजापद तिनका वाचक नहीं जा शंकाका उत्तर कहे हैः—

कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ॥ १० ॥

कल्पनोपदेशात् । च । मध्वादिवत् । अविरोधः । इति प० ।

अर्थ—"असौ वाव आदित्यो देवमधुः" इस वाक्यमैं यथा मधुसैं भिन्न जो आदित्य तांका मधुरूपसैं उपदेश है, आदिपदसैं यथा वाचाकी धेनुरूपसैं उपासना करे जा वाक्यमैं धेनुभिन्न जो वाचा तांका धेनुरूपसैं उपदेश है तथा लोकप्रसिद्ध अजामैं जो भोगत्याग तत्तुल्यतारूप कल्पनासैं तेजजलभूमिका अजात्व उपदेश संभवे है, विरोध नहीं. यातैं प्रधान अशब्द है. इति सिद्धम् ॥१०॥

अव०—बृहदारण्यकके षष्ठ अध्याय चतुर्थ ब्राह्मणमैं यह प्रसंग हैः—"स हि सर्वस्य कर्ता" यह कहकर आगे यह कहा हैः—"यदैतमनुपश्यति आत्मानं देवमञ्जसा। ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ यस्मादर्वाक् संवत्सरोऽहोभिः परिवर्तते । तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ॥ यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः । तमेव मन्ये आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम् ॥ प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो ये विदुः। ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यम् ॥ मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ एकधा एवानुद्रष्टव्यम् एतदप्रमयं ध्रुवम् । विरजः पर आकाशात् अज

आत्मा महान् ध्रुवः ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । नानुध्यायाद् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनꣳ हि तत् इति" ॥

अर्थ—उक्त प्रसंगमें यह कहा है कि दिनोंकरके वर्ष जांके नीचे वर्ते है सो देव ज्योतियोंका ज्योति है. जामैं पंच पंचजन और एक आकाश स्थित है तांको हम आत्मा माने हैं. प्राणके प्राणको, चक्षुके चक्षुको, श्रोत्रके श्रोत्रको, मनके मनको जो जाने है अर्थात् चेष्टाका प्रदाता है. इसप्रकार जे त्वंपदके लक्ष्यको जाने हैं ते अलुप्त ब्रह्मको जाने हैं. उक्तवाक्यमैं यह संदेह है कि "पञ्च पञ्चजना" इतने वाक्यकरके पंचविंशति तत्त्वको ग्रहण किया चाहिये, वा प्राणादि पंचको ग्रहण किया चाहिये. तहां यह पूर्वपक्ष है कि 'पञ्च पञ्च जना' जा वाक्यमैं जो प्रथम पंच पद है सो पंचतत्त्वबोधक है, पंचजनपद पुरुषबोधक है, यातें पंचविंशति तत्त्व सिद्ध होवे हैं. ते तत्त्व कौन हैं? जा अभिलाषा हुएसैं सांख्यस्मृतिमैं कहे जे पंचविंशति तत्त्व ते उक्तवाक्यमैं गृहीत हैं; यातें प्रधान अशब्द नहीं. इति। सर्वश्रुतिअर्थ—यदा गुरुके मुखसैं भूतभावीके स्वामी प्रकाशरूप आत्माको साक्षात् देखे हैं तदा सर्वके स्वामीसैं आत्माके विशेषकरके गुप्त करणेकी इच्छा नहीं करे है, भेददर्शीके उक्त इच्छा होवे है, आत्मदर्शीके नहीं. आत्मवेत्ताको किसीसैं भय नहीं, यातें छिपनेकी तांको इच्छा नहीं, किंच जिस ईशानसैं स्वअवयवरूप दिनरातयुक्त वर्षरूप काल नीचे है तांकरके तिसका परिच्छेद नहीं होवे. सो आदित्यादिक ज्योतिपदार्थोंका भी ज्योति है, तिसकी देवता आयु अमृतरूपसैं उपासना करे हैं. किंच जा ब्रह्ममैं पंचजन गंधर्वदेवादि पंचही संख्यावान् और अव्याकृतरूप आकाश स्थित हैं तिस आत्माको ब्रह्मरूप हम माने हैं. आत्माको तांसैं भिन्न नहीं जाने हैं. अमृतरूप ब्रह्ममैं, किंच तिसके प्रकाशसैं प्राण चेष्टा करें हैं यातें सो प्राणोंका प्राण है, नेत्रोंका नेत्र है, श्रोत्रोंका श्रोत्र है, मनका मन है, जे इस प्रकार जाने हैं ते अग्रिम पुराणब्रह्मको जाने हैं, सो ब्रह्म शुद्ध मनकर जाननेयोग्य है, तिस दर्शनविषयरूप ब्रह्मविषे नाना रंचक नहीं. जो नानारहितमैं नाना आरोप करे है सो अविद्याकरके मृत्युसैं मृत्युको प्राप्त होवे है, यातें विज्ञानघन एकरसरूपसैं जाननेयोग्य है. सो ब्रह्म अप्रमेय है, नित्य है, धर्माधर्मादिरूप मलसैं रहित है, सर्वसैं पर है, अव्याकृतरूप आकाशसैं भी उपजे नहीं और अनाशी है; तिस आत्माको उपदेशसैं और शास्त्रसैं धीमान् ब्राह्मण जानके उपदिष्ट विषयमैं प्रज्ञाको बनावे. बहु शब्दोंका चिंतन नहीं करे, बहुशब्दोंका अभिध्यान ग्लानिश्रमके देनेवाला है. इति ॥ उक्त पूर्वपक्षका समाधान करे हैं:—

न संख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च ॥ ११ ॥

न । संख्योपसंग्रहात् । अपि । नानाभावात् । अतिरेकात् । च । इति प० ।

अर्थ–उक्त वाक्यसैं पंचविंशति संख्याका संग्रह होवे है. तिस पंचविंशति संख्याके संग्रहसैं सांख्यस्मृतिकरके प्रसिद्ध पंचविंशति तत्त्वोंके ग्रहणसैं भी प्रधानको अशब्दत्वका निषेध संभवे नहीं। तथाहि–पंच पंचत्वमैं जो साधारण इतर पंचकसैं व्यावृत्त धर्म तांके अभावका नानापदसैं ग्रहण है; यातें एक पंच-कमैं प्राप्त अन्य पंचकसैं व्यावृत्त धर्मवत्त्वका नानाभाव नाम अभाव है यातें नानाभाव होनेसैं 'पञ्च पञ्चजना' जा वाक्यसैं पंच पंचकका ग्रहण संभवे नहीं और पंचविंशतिसंख्यासैं अतिरेकात् नाम आत्मा और आकाश अधिक सुने हैं यातें सप्तविंशति संख्या सिद्ध होवे है, पंचविंशति नहीं. इति। तिस मंत्रका यह अक्षरार्थ है कि 'पंचजन' यह पद पुरुषमैं रूढ है यह कोशमैं लिखा है. दूसरा पंचपद पंचसंख्याका वाचक है. दोनों पदोंका 'पंच पुरुष हैं' यह अर्थ सिद्ध होवे है। ज्योति, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन यह पंच पुरुषसंबंधी होनेसैं पुरुषकरके ग्रहण किये हैं. पंच तो ये और एक अविद्यारूप आकाश जामैं ये पट् स्थित हैं, तांको हम आत्मा जाने हैं. इति ॥ ११ ॥

उक्त अर्थको सूत्रकार प्रगट करे हैं:—

प्राणादयो वाक्यशेषात् ॥ १२ ॥

प्राणादयः । वाक्यशेषात् । इति प० ।

अर्थ–वाक्यशेषात् नाम "प्राणस्य प्राणः" जा वाक्यमैं प्राणोंका प्राण कहा है, यातें इस वाक्यशेषसैं पंचजनवाक्यमैं प्राण, चक्षु, श्रोत्र, अन्न, मन जा पंचका ग्रहण है. इति ॥ १२ ॥

अव०–ननु उक्तवाक्यमैं अन्न नहीं ग्रहण किया. यांते पंचपदसैं पंचको ग्रहण करणा संभवे नहीं, जा शंकासैं कहे हैं:—

ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ॥ १३ ॥

ज्योतिषा । एकेषाम् । असति । अन्ने । इति प० ।

अर्थ–जा शाखामैं अन्नका ग्रहण नहीं किया तहां ज्योतिकरके पंचसंख्या पूर्ण किया चाहिये. इति ॥ १३ ॥

१ इंद्रियादिक पंचकोंमैं.

अव०—समन्वयकी सिद्धि असिद्धि दोनों पक्षनमैं उत्तर अधिकरणका फल है। जगत्कारणबोधक वाक्य ब्रह्ममैं प्रमाण हैं वा नहीं यह तहां संदेह है. "एतस्मात् आत्मन आकाशः सम्भूतः" जा वाक्यमैं प्रथम आकाश कहा है। "तत्तेजोऽसृजत" जामैं प्रथम तेज कहा है। एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि" जामैं अक्रमक उत्पत्ति कही है. कहूं सत्सैं उत्पत्ति कहूं असत्सैं उत्पत्ति कही है; जा उक्तविधिसैं परस्पर वाक्यनका विरोध है, यांते सर्वका ब्रह्ममैं समन्वय कहना संभवे नहीं, यह पूर्वपक्ष है. तहां यह सूत्रकारका समाधान है:—

कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः ॥ १४ ॥

कारणत्वेन । च । आकाशादिषु । यथाव्यपदिष्टोक्तेः । इति प०।

अर्थ—आकाशादिकोंमैं यथा एकशाखाविषे 'सदेव' जा श्रुतिकरके जैसा स्वरूप ईश्वर कारणकरके व्यपदिष्ट नाम कहा है, तैसा स्वरूपही ईश्वर 'सत्यं०' जा अपर वेदांतमैं कारण "उक्तेः" नाम कहा है; यांते ब्रह्मकारणत्वमैं विरोध नहीं. इति ॥ १४ ॥

समाकर्षात् ॥ १५ ॥

अर्थ—जो प्रथम "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" यह कहकर आगे:— "असत् वा इदम् अग्रे आसीत्" यह कहा है इस वाक्यमैंभी पूर्वले सतका आकर्षण है; अर्थात् असत्पदसैं नाम रूप व्यक्तिसैं रहित ब्रह्म अंगीकार किया है, शून्य अंगीकार नहीं. उक्त विधही अपर वाक्यनमें व्यवस्था है; यांते कारणत्वबोधक वाक्यनमैं विरोध नहीं. इति ॥ १५ ॥

अव०—कौषीतकि ब्राह्मणमैं बालाकिका अजातशत्रुसैं संवाद लिखा है:— बालाकिने अजातशत्रुको कहा कि हम तुम्हारे प्रति ब्रह्मउपदेश करे हैं। तिसने कहा कहो। तिसने उपदेश किया कि जो आदित्यमैं पुरुष है तांकी उपासना करे हैं १ जो चंद्रमैं पुरुष है तांकी उपासना करे हैं २ जो विद्युत्मैं है ३ जो स्तनयित्नुमैं है ४ जो वायुमैं है ५ जो आकाशमैं है ६ जो अग्निमैं है ७ जो जलमैं है ८ जो आदर्शमैं है ९ तिस पुरुषकी उपासना करे हैं, जो छायापुरुष है १० जो प्रतिश्रुत् कायामैं पुरुष है ११ शब्द जामैं लय होवे है १२ जांकर सुप्त स्वप्नाकर विचरे है १३ तिस पुरुषकी उपासना करे हैं जो शारीर पुरुष है १४ जो दक्षिण नेत्रमैं पुरुष है १५ जो सव्य नेत्रमैं पुरुष है, तांकी हम उपासना करे हैं, यह

षोडश १६ ब्रह्म बालाकिने राजाप्रति कहे. अजातशत्रुने सर्वमैं ततत्तत्उपदेशकालमैं दोष[1] दिखाकर अंतमैं कहा हम ब्रह्मको कहेंगे, यह मिथ्याही भाषण किया, यह कहकर आगे यह उपदेश किया हैः—"स होवाच यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वैतत् कर्म स वै वेदितव्यः इति"। तब बालाकि समित्पाणि होकर राजाको प्राप्त हुआ. तब राजा बालाकिको हाथ पकड़के सुप्तपुरुषके पास लेगया. अजातशत्रुने सुप्तको बुलाया तो नहीं बोला, तब प्राणोंको अभोक्ता निश्चय किया, ततअनंतर यष्टिसैं स्पर्श किया तब सो उठा, तब प्राणादिकोंसैं जीवको भिन्न निश्चय किया. ततअनंतर जीवसैं भिन्नमैं बालाकिके आगे यह त्रय प्रश्न किये—"क्व एष एतत् बालाके पुरुषोऽशयिष्ट। क्व एतत् अभूत्। कुत एतत् आगात् इति" प्रथम प्रश्न अधिकरणमैं है। द्वितीय प्रश्न भवनमैं है अर्थात् एकरूप होकर किस अधिकरणमैं सोया था इति। तृतीय प्रश्न अपादानमैं अर्थात् सोकर किससैं उठै है इति। बालाकिने इनका उत्तर नहीं दिया, तब अजातशत्रुने यह कहा—"अस्मिन् प्राणे एव एकधा भवति तदेनं वाक् सर्वैर्नामभिः सहाप्येति। चक्षुः सर्वैः रूपैः सहाप्येति। श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति। मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति। स यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतः सर्वा दिशो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन् एवमेव एतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः"। इति इस वाक्यकरके शयनभवनका आधार और उत्थानका अपादान प्राणशब्दके वाच्य परमात्माको कहा है. इति। पूर्व जो अजातशत्रुने वाक्योपदेश किया है तांका यह अर्थ है कि हे बालाके! जे षोडश ब्रह्म तुमने कहे हैं तिन सर्वका जो कर्ता है, जांका यह कर्म है, सो जाननेयोग्य है. इति। इस वाक्यमैं जो जाननेयोग्य कहा है सो प्राण है वा जीव है वा परमात्मा है जा संदेहसैं यह पूर्वपक्ष है। चलनरूप कर्म प्राणोंका है यांते प्राणवायु तहां अंगीकृत है. इति। तहां यह सूत्रकारका समाधान हैः—

१ अजातशत्रुने कहा जो आदित्यमैं पुरुष है सो सब भूतनका मस्तक है, ब्रह्म नहीं. जो चंद्रमैं है सो चार विध अन्नका कारण है वा स्वरूप है। जो विद्युतमैं है सो तेजका कारण है। जो मेघमैं है सो शब्दका कारण वा स्वरूप है। जो गगनमैं है सो क्रियारहित है। जो वायुमैं है सो ऐश्वर्यवान् है। जो अग्निमैं है सो विविध सहनशील है। जो जलमैं है सो नामकारण है। अथ जो आदर्शमैं है सो सदृश है। जो छायारूप है सो द्वितीय है। जो दिशामैं है सो असु है। जो शब्दपुरुष है सो मृत्यु है। जो स्वप्नद्रष्टा है सो यमराज है। जो शरीरमैं है सो प्रजापति है। जो दक्षिणनेत्रमैं है सो वाचाका कारण है। जो वामनेत्रमैं है सो विद्युतका स्वरूप है.

जगद्वाचित्वात् ॥ १६ ॥

जगद्वाचित्वात्। इति प०।

अर्थ–'क्रियते इति कर्म' जा व्युत्पत्तिसैं कर्मपद जगतका 'वाचित्वात्' नाम वाचक है यातें अजातशत्रुवाक्यमैं जो वेदितव्य कहा है सो परमात्मा है प्राणादिक नहीं, प्राणोंको सर्व उक्त पुरुषनका कर्ता कहिना संभवे नहीं किंतु सर्वका कर्ता परमात्मा है. इति ॥ १६ ॥

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेत्तद् व्याख्यातम् ॥ १७ ॥

जीवमुख्यप्राणलिङ्गात्। न। इति। चेत्। तत्। व्याख्यातम्। इति प०।

अर्थ–अजातशत्रुके वाक्यमैं जीवलिंग और मुख्य प्राणलिंग प्रतीत होवे हैं यातें उक्तवाक्य ब्रह्मबोधक नहीं यह शंका करें; तौ प्रतर्दनअधिकरणमैं 'तत् व्याख्यातम्' नाम जीवमुख्यप्राणलिंगको ब्रह्मबोधक सिद्ध किया है. इति ॥१७॥

अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके ॥ १८ ॥

अन्यार्थम्। तु। जैमिनिः। प्रश्नव्याख्यानाभ्याम्। अपि। च। एवम्। एके। इति प०।

अर्थ–जैमिनि आचार्य अजातशत्रुवाक्यमैं जीवके परामर्शको अन्यार्थ नाम ब्रह्मबोधार्थ माने हैं यातें सो वाक्य ब्रह्मबोधक है प्राणादिकोंका बोधक नहीं. तहां प्रश्न, व्याख्यान यह दो हेतु हैं. प्रश्न नाम अजातशत्रुका जो अधिकरण, भवन, अपादानमैं प्रश्न और व्याख्यान नाम तिन त्रय प्रश्नका जो उत्तर तांसैं सर्वका कर्ता परमात्मा वेदितव्य करके कहा है, और एके नाम वाजसनेयि अर्थात् बृहदारण्यकशाखावान् भी एवम् नाम जीवप्राणोंसैं भिन्न परमात्माको माने हैं. इति ॥ १८ ॥

अव०–बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्यायमैं यह मैत्रेयीप्रति याज्ञवल्क्यवाक्य है "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। इति" इस वाक्यपर्यंत पुत्र पशु-

वित्तादि सर्व प्रपंचको आत्मार्थ प्रिय कहा है, यातें अनन्य अर्थत्वरूप निरुपाधिप्रियत्व आत्मामैं सिद्ध किया, तिस निरुपाधिप्रियत्वसैं आनंदरूप आत्माको ज्ञातव्यकर उत्तरवाक्यनैं कहा है:— "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन इदं सर्वं विदितम् इति" इस वाक्यमें द्रष्टव्यादिरूपसें जीवका उपदेश है, वा परमात्माका उपदेश है यह तहां संदेह है. आरंभमें भोक्ता जीवका उपदेश है यातें जीवका द्रष्टव्यरूपसें उपदेश है यह पूर्वपक्ष है. तहां यह सूत्रकारका सिद्धांत है:—

वाक्यान्वयात् ॥ १९ ॥

वाक्यान्वयात् । इति प० ।

अर्थ—उपक्रमादिकोंसैं वाक्य नाम 'आत्मा द्रष्टव्यः' जा वाक्यका ब्रह्ममैं अन्वय नाम समन्वय सिद्ध होवेहै यातें उक्त वाक्यमें द्रष्टव्यकरके परमात्माका उपदेश किया है जीवका नहीं. मोक्षइच्छावान् मैत्रेयीको जीवका उपदेश तौ बनता जो जीवके ज्ञानसैं मोक्ष होती, जीवके ज्ञानसैं मोक्ष संभवे नहीं यातें ताप्रति जीवउपदेश संभवे नहीं. इति ॥ १९ ॥

प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ॥ २० ॥

प्रतिज्ञासिद्धेः । लिङ्गम् । आश्मरथ्यः । इति प० ।

अर्थ—जीव कार्य है ब्रह्म कारण है यातें जीवब्रह्मका भेद अभेद है. अत्यंत भेद मानेसैं एकके विज्ञानकी प्रतिज्ञा संभवे नहीं, तिस प्रतिज्ञाकी सिद्धिके अर्थ अभेद अंशको अंगीकार करके वाक्यके आरंभमैं भोक्ता जीवका लिंग है, यह आश्मरथ्य आचार्य माने हैं इति ॥ २० ॥

अव०—जीवको कार्य कहिना और भेदसहित अभेद कहिना संभवे नहीं यह मानके अपर उत्तर कहे हैं:—

उत्क्रमिष्यत एवंभावादित्यौडुलोमिः ॥ २१ ॥

उत्क्रमिष्यतः । एवंभावात् । इति । औडुलोमिः । इति प० ।

अर्थ—संसारकालमैं जीवका ब्रह्मसैं अत्यंत भेद है। ब्रह्मका आत्मारूपसैं साक्षात्कार हुएसैं कार्यकारणसंघातसैं जीव रहित होवे है । 'उत्क्रमिष्यतः' नाम संघातरहित जीवका 'एवंभावात्' नाम परमात्मासैं अभेद होवे है यातें

भविष्यत् अभेदको मानके वाक्यके आरंभमें जीवका लिंग है, यह औडुलोमि आचार्य माने हैं. इति ॥ २१ ॥

सूत्रकार स्वसिद्धांत कहे हैं:—

अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ॥ २२ ॥

अवस्थितेः । इति । काशकृत्स्नः । इति प० ।

अर्थ—अविद्याकल्पित भेदसें ब्रह्मही जीवरूपसें स्थित है यातें जीवका आरंभमें ग्रहण है, इस प्रकार काशकृत्स्न आचार्य माने हैं, यातें मैत्रेयीवाक्यका परब्रह्ममें तात्पर्य है. इति ॥ २२ ॥

अव०—'जन्माद्यस्य यतः' जा अधिकरणमें ब्रह्मको जगत्का कारण कहा सो आगे तांका विचार करे हैं कि ब्रह्म जगतका निमित्तमात्र कारण है वा उपादानभी है यह तहां संशय है। 'बहु स्याम्' इत्यादिक वचनोंकरके सर्ववेदांतमें इच्छापूर्वक कर्ता सुना है, यातें कुलालवत् ब्रह्म निमित्तमात्र कारण है, जा पूर्वपक्षमें भगवान् सूत्रकारका यह उत्तर है:—

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॥ २३ ॥

प्रकृतिः । च । प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् । इति प० ।

अर्थ—प्रकृति नाम उपादानकारण जगतका ब्रह्म है, चकारसें निमित्तकारणभी सूत्रकारको ब्रह्मही अंगीकृत है, तहां यह हेतु है:— "येनाश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतम् अविज्ञातं विज्ञातम् । यथा सोम्य एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिका इति एव सत्यम् इति" इस वाक्यमें एकके ज्ञानसें सर्वके ज्ञानकी प्रतिज्ञा करी है और तहां दृष्टांत कहा है; सो प्रतिज्ञा ब्रह्मको उपादान मानेविना नहीं बनेगी, और दृष्टांतभी नहीं बनेगा, निमित्तकारणके ज्ञानसें सर्वकार्यका ज्ञान होवे नहीं, उपादान उपादेयका अभेद होवे है यातें उपादानके ज्ञानसें सर्वका ज्ञान संभवे है, जो निमित्तको उपादानसें भिन्न मानेंगे तौ उक्त प्रतिज्ञा दृष्टांत दोनोंही उपरोध नाम पीडित अर्थात् अनर्थक होवेंगे; यातें प्रतिज्ञा दृष्टांत दोनोंको अनुपरोध नाम अनर्थकत्वनिवृत्त्यर्थ प्रतिज्ञा दृष्टांत अनुसारतासें ब्रह्मही उपादान है, ब्रह्मही निमित्त कारण है. इति ॥ २३ ॥

किंच—

अभिध्यानोपदेशाच्च ॥ २४ ॥

अभिध्यानोपदेशात् । च । इति प० ।

किसी पुस्तकमैं "अभिध्योपदेशात्" यहभी पाठ है ।

अर्थ–'सोऽकामयत' इस वाक्यमैं ध्यानउपदेशसैं ब्रह्म कर्ता प्रतीत होवे है और 'बहु स्याम्' जा ध्यानउपदेशसैं ब्रह्म उपादान प्रतीत होवे है, यातें आत्माही कर्ता और उपादान है. इति ॥ २४ ॥

साक्षाच्चोभयाम्नानात् ॥ २५ ॥

साक्षात् । च । उभयाम्नानात् । इति प० ।

अर्थ–"सर्वाणि ह्वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते" इस वाक्यमैं आकाशपदसैं ब्रह्मको ग्रहण करके तासैं साक्षात् उत्पत्ति प्रलय दोनोंही आम्नानात् नाम कहे हैं यातें ब्रह्मही उपादान है, जिस कार्यकी जासैं उत्पत्ति प्रलय होवे ता कार्यका सो उपादान होवे है, यथा घटमृत्तिकादिक हैं. इति ॥ २५ ॥

आत्मकृतेः परिणामात् ॥ २६ ॥

आत्मकृतेः । परिणामात् । इति प० ।

अर्थ–लोकमैं जो प्रयत्नवान् होवे है तांको कर्ता कहे हैं, यथा–कुलालादिक हैं । प्रयत्नका जो विषय होवे सो उपादान देखा है, यथा मृत्तिकादि हैं । "तत् आत्मानं स्वयम् अकुरुत" जा वाक्यमैं ब्रह्मको भी प्रयत्नवान् और प्रयत्नका विषय सुना है, स्वपदसैं प्रयत्नवान् प्रतीत होवे है और आत्मा पदसैं प्रयत्नका विषय प्रतीत होवे है यातें ब्रह्मही उपादान है, ब्रह्मही निमित्त है । आत्मासंबंधी जो होवे कृति नाम प्रयत्न सो आत्मकृति कहिये हैं. यद्यपि आत्मा कर्ता होनेसैं पूर्व सिद्ध है यातें तामैं प्रयत्नविषयत्व संभवे नहीं, तथापि परिणामसैं संभवे है. परिणामपदसैं विवर्तका ग्रहण है; जो विवर्तरूप होवे है सो पूर्वसिद्धभी साध्य होवे है यातें पूर्वसिद्धभी आत्माको कृतिविषयत्व संभवे है, यातें ब्रह्म अभिन्न निमित्त उपादान कारण है. इति ॥ २६ ॥

योनिश्च हि गीयते ॥ २७ ॥

योनिः । च । हि । गीयते । इति प० ।

अर्थ-"यत् भूतयोनिं प्रपश्यन्ति धीराः" ॥ "कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्" इत्यादिक श्रुतिनमैं जो कारणवाचक योनिपद तासैं योनि नाम कारण गीयते नाम कहा हैं; यातें उपादान और निमित्तकारण ब्रह्मही है. इति ॥ २७ ॥

एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॥ २८ ॥

एतेन । सर्वे । व्याख्याताः । व्याख्याताः । इति प० ।

अर्थ-'ईक्षतेर्नाशब्दम्' इस अधिकारणसैं लेकर 'योनिश्च हि गीयते' जा सूत्रपर्यंत अशब्दत्वादिक अनेक हेतुसैं प्रधानकारणवादको खंडन किया है. एतेन नाम प्रधानकारणवादखंडनसैंही व्याख्याताः नाम अणुआदिक पक्षभी खंडित हुए जानने चाहिये. यातें सर्व वेदांतका सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परिपूर्ण सच्चिदानंद ब्रह्मविषे समन्वय है. और "व्याख्याता व्याख्याताः" इस पदका उच्चारणभी अध्यायकी समाप्तिको द्योतित करता है. इति सिद्धम् ॥ २८ ॥

इति सूत्रभावार्थप्रकाशिकाभाषाटीकायां प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ४

अथ द्वितीयाध्यायप्रारम्भः ।

दोहा-सिमरण तर्क विरोध हर, परमत दुष्ट प्रबोध ।
भूत जीव वपु वचनका, इनमैं हरें विरोध ॥ १ ॥

पूर्व अध्यायमैं सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जगत्कारण ब्रह्मविषे सर्ववेदांतका तात्पर्य सिद्ध किया है. इस अध्यायके प्रथमपादमैं सांख्यादि स्मृतिसैं और तांकी तर्कोंसैं स्वपक्षके विरोधका परिहार करे हैं, दूसरे पादसैं सर्व मतनकी दुष्टता प्रतिपादन करेंगे, तृतीयपादमैं अर्द्धसैं पंचमहाभूतबोधक श्रुतिवचनका जो परस्परविरोध तिसका परिहार करेंगे, अर्द्धसैं जीव नित्यानित्यत्वबोधक श्रुतिवचनोंके विरोधका निषेध करेंगे, चतुर्थ पादमैं लिंगशरीरबोधक वाक्यनके विरोधका परिहार करेंगे. इतने अर्थोंके निमित्त इस अध्यायका आरंभ है.

तहा प्रथमपादमें सप्त अधिक तीस ३७ सूत्र हैं. तहां अधिकरण त्रयोदश हैं १३, गुण २४ हैं. तथाहि—

सूत्रसंख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	सांख्यस्मृति अप्रामाणिक है.
२	+	गु०	सा०
३	अ०	+	योगस्मृति अप्रामाणिक है.
४	अ०	+	ब्रह्मकारणखण्डनपूर्वपक्ष.
५	+	गु०	पू०
६	+	गु०	चेतनकारणसिद्धान्त.
७	+	गु०	चे०
८	+	गु०	पूर्वपक्ष.
९	+	गु०	सिद्धान्त.
१०	+	गु०	सांख्यमततुल्यदोष.
११	+	गु०	सि०तर्कखण्डन.
१२	अ०	+	परमाणुवादखण्डन.
१३	अ०	+	भोक्तादिव्यवस्था.
१४	अ०	+	कार्यकारणअभेदविधान.
१५	+	गु०	का०
१६	+	गु०	का०
१७	+	गु०	का०
१८	+	गु०	का०
१९	+	गु०	का०
२०	+	गु०	का०
२१	अ०	+	पूर्वपक्ष.
२२	+	गु०	सिद्धान्त.
२३	+	गु०	सि०
२४	अ०	+	ब्रह्मकारणसिद्धि.
२५	+	गु०	ब्र०
२६	अ०	+	पूर्वपक्ष.
२७	+	गु०	पूर्वपक्षखण्डन.

२८	+	गु०	सिद्धान्त.
२९	+	गु०	सांख्यमतदोष.
३०	अ०	+	ब्रह्मकारणसिद्धि.
३१	+	गु०	पूर्वपक्ष.
३२	अ०	+	सि०
३३	+	गु०	सि०
३४	अ०	+	वैषम्यादिदोषनिषेध.
३५	+	गु०	संसारअनादि.
३६	+	गु०	सं०
३७	अ०	+	कारणत्वादिसिद्धि.
	१३	२४	इति

इस पादका यह प्रथम सूत्र है ।

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्य-नवकाशदोषप्रसङ्गात् ॥ १ ॥

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गः । इति । चेत् । न । अन्य-स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् । इति । प० ।

अर्थ–पूर्व अध्यायमैं जो ब्रह्मविषे सर्व वेदांतका तात्पर्य कहा है तिसका सांख्यादिस्मृतिसैं विरोध है वा नहीं यह इस अधिकरणमैं संदेह है। तहां यह पूर्वपक्ष है कि कपिलादि ऋषि सर्वज्ञ हुए हैंः–"ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानश्च पश्येत्" यह श्वेताश्वतर श्रुति कपिलमुनिके अप्रतिहत ज्ञानको दिखावे है, यातें तत्रचित सांख्यस्मृति प्रामाणिक है, ब्रह्मको कारण अंगीकार कियेसैं महान् कपिलकृत प्रधानकारणवादबोधक स्मृतिको अनवकाशरूप दोषकी प्रसंग नाम प्राप्ति होवेगी, अनवकाश नाम प्रधानबोधक श्रुतिके अभावसैं स्मृतिभी प्रधानबोधक नहीं सिद्ध होवेगी, यातें तत् अर्थका अभाव सिद्ध होवेगा. इति । इसका अर्द्धसूत्रसैं समाधान करे हैं. यथा ब्रह्मको कारण मानेसैं प्रधानको कारणबोधक स्मृतिमैं दोष है तथा प्रधानको कारण अंगीकार कियेसे अन्य स्मृतिको अनवकाशरूप दोपकी प्राप्ति होवेगी । 'अहं सर्वस्य

जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा' इत्यादिक स्मृतिनमैं चेतनको कारण स्मरण किया है यातें प्रधानको कारण माननेसैं उक्तस्मृतिनमैं दोप प्राप्त होवेगा, यातें परस्पर दोनों स्मृतिनका विरोध हुएसैं जो स्मृति श्रुतिसैं अविरुद्ध है सो प्रामाणिक है, जो विरुद्ध है सो अप्रामाणिक है. सांख्यस्मृतिका मूल श्रुतिसे मिले नहीं यांते सो अप्रामाणिक है, यांते समन्वयका तासैं विरोध नहीं. और श्वेताश्वतर श्रुतिवाक्य अपर कपिलका बोधक है, सांख्यस्मृतिकर्ता कपिलका बोधक नहीं. इति॥१॥

उत्तरहेतुसैंभी सांख्यस्मृतिमैं अनवकाशही है यह सूत्रकार कहे हैं:—

इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥

इतरेषाम् । च । अनुपलब्धेः । इति प० ।

अर्थ—सांख्यस्मृतिमैं प्रसिद्ध जे इतर नाम प्रधानसैं भिन्न महत्तत्व आदिक पदार्थ तिनकी लोकमैं और वेदमैं अनुपलब्धि नाम प्रतीति होवे नहीं, यातें भी सांख्यस्मृति अप्रामाणिक है. इति ॥ २ ॥

एतेन योगाः प्रत्युक्ताः ॥ ३ ॥

एतेन । योगाः । प्रत्युक्ताः । इति प० ।

अर्थ—योगमैं ईश्वर अंगीकार है सांख्यमैं नहीं इतना योगमैं सांख्यसैं विशेष है, अपर प्रधानादि सर्व प्रक्रिया दोनों मतनमैं तुल्य हैं, यातें एतेन नाम कपिलमतके खंडनसैं पतंजलिका योगमार्गभी प्रत्युक्ताः नाम असंगत कहदिया जाना चाहिये. जो अंश योगमैं श्रुतिअनुसारी है सो प्रामाणिक है, अपर सांख्यतुल्य अप्रामाणिक है. इति तात्पर्यम् ॥ ३ ॥

आगे युक्तिविरोध परिहार करे हैं:—

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥ ४ ॥

न । विलक्षणत्वात् । अस्य । तथात्वम् । च । शब्दात् । इति प० ।

अर्थ—' आकाशादिकं न चेतनकार्यं द्रव्यत्वात् घटवत् ' इस तर्कसैं समन्वयका विरोध है वा नहीं जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं यह सूत्रका अर्थ है। 'अस्य' नाम जगत्को चेतनसैं विलक्षण होनेसैं चेतन जगत्का कारण नहीं. चेतन ब्रह्म शुद्ध है, जगत् अचेतन अशुद्ध है इत्यादि विलक्षणता है. जो जासैं विलक्षण होवे है सो तांका कार्य होवे नहीं यथा तंतुसैं विलक्षण घट तंतुका कार्य नहीं, ब्रह्मकी जगतसैं त-

थात्व नाम विलक्षणता शब्दात् नाम श्रुतिसैं निश्चित है. तथाहि **'विज्ञानं चाविज्ञानं चाभवत्'** इत्यादिक श्रुतिसैं विलक्षणता निश्चित है, यातें ब्रह्म जगत्का कारण नहीं. इति । इस अध्यायमैं समन्वयविरोध पूर्वपक्षका फल है, अविरोध सिद्धांतका फल है. इति ॥ ४ ॥ **सिद्धांत**—ननु बृहदारण्यकश्रुति **'ते हि इमे प्राणा अहंश्रेयसे विवदमाना मृदब्रवीत् ता आपोऽब्रुवन्'** इत्यादि श्रुतिसैं जगतकोभी चेतन सुना है यातें चेतनको कारण कहिना संभवे है, जा शंकासैं पूर्वपक्षी कहे हैंः—

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ ५ ॥

अभिमानिव्यपदेशः । तु । विशेषानुगतिभ्याम् । इति प० ।

अर्थ—उक्त शंकानिषेध तु पदका अर्थ है. उक्त श्रुतिसैं जगतमैं चेतनताका अंगीकार नहीं किंतु अभिमानी नाम नेत्रादिकोंके अभिमानी जे देवता तहां व्यपदेश नाम कथन है, इंद्रिय मृत्तिकादिमात्र ग्रहण नहीं. विशेष और अनुगति यह दो तहां हेतु हैं. **" अथातो निःश्रेयसादानम् एता ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमाना अस्मात् शरीरात् उच्चक्रमुः तद्वा प्राणात् शुष्कं दारुभूतं शिष्ये"** जा कौषीतकिश्रुतिमैं इंद्रियोंको देवता शब्दसे ग्रहण किया है, सो देवतापद सूत्रोक्त विशेषपदसैं ग्रहण किया है । श्रुतिअर्थ—उक्त उपासना अनंतरका वाचक अथपद है, अपरफल इच्छानिमित्त अतःपदका अर्थ है, निश्रेयस जो मोक्षविशेष तद्गुणविशिष्ट प्राणोंका आदान नाम ग्रहण करे हैं. देवताशब्दके वाच्य जे वाक्यादिक ते सर्वही 'अहंश्रेयसे' नाम अहंवादसैं आत्माकी जो अधिकता तदर्थ विवाद करते हुए प्रजापतिको प्राप्त होकर बोले हमारेमैं श्रेष्ठ कौन है ? प्रजापतिने कहा जिसके निकलनेसैं शरीर शवसमान होवे सो उत्तम है. सर्व इंद्रियनसैं शरीर शवसमान नहीं हुआ, और प्राणके निकलनेसैं अमंगलरूप शिष्ये नाम शयन करता हुआ इति । और **"अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत् । वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् । आदित्यः चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत् । दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्"** जा श्रुतिमैं देवनकी प्रवेशरूप अनुगति सुना है, यातें विशेष, अनुगति जा दोनो हेतुओंसैं जगत् चेतनरूप नहीं, किंतु विलक्षण है यातें ब्रह्म जगत्का कारण नहीं । उक्त श्रुति ऐतरेयके द्वितीय खंडमैं है. इति ॥५॥

सिद्धान्तसूत्र ।

दृश्यते तु ॥ ६ ॥

दृश्यते । तु । इति प० ।

अर्थ—पूर्वपक्षका निषेध तु पदका अर्थ है, चेतन पुरुषसैं तासैं विलक्षण नखलोमादि उपजे हैं और अचेतनगोमयादिकोंसैं तासैं विलक्षण वृश्चिकादि उपजे हैं, यातैं चेतनसैं विलक्षण जगत्का ब्रह्म उपादान नहीं यह कल्पना असंगत है. जो कार्यकारणको अत्यंत तुल्य अंगीकार करें तौ तिनका कार्यकारणभाव नहीं बनेगा, यातैं किसी अंशमैं तुल्यता कही चाहिये सो जगत् स्फुरणतादि रूपसैं विद्यमान है. जा उक्त विधिसैं दृश्यते नाम लोकमैं विलक्षणोंका कार्यकारणभाव देखा है, यातैं शंका असंगत है. इति ॥ ६ ॥

असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रपरत्वात् ॥ ७ ॥

असत् । इति । चेत् । न । प्रतिषेधमात्रपरत्वात् । इति प० ।

अर्थ—नामादिकोंसैं रहित चेतनको नामादिवान् जगतका कारण अंगीकार कियेसैं उत्पत्तिसैं पूर्व जगत् असत् सिद्ध होवेगा, इति चेत् नाम यह शंका करें तौ संभवे नहीं. तथाहि असत् होवेगा यह जो प्रतिनिषेध नाम जगतका निषेध है सो निषेधमात्र है; ताका निषेध्य कोई भान होवे नहीं. कार्यकी सत्ता कारणसैं भिन्न रंचक नहीं, किंतु कारण ब्रह्मही जगताकार है, यातैं ब्रह्मरूप जगत् उत्पत्तिसैं पूर्व सत्यस्वरूप था असत् नहीं, यातैं निषेध संभवे नहीं. इति ॥ ७ ॥

पूर्वपक्ष ।

अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॥ ८ ॥

अपीतौ । तद्वत् । प्रसङ्गात् । असमञ्जसम् । इति प० ।

अर्थ—यथा शाकादिकोंमैं लीन हुआ हिंगु स्वगंधादिक धर्मनसैं शाकादिकोंको दूषित करे है तथा अपीतौ नाम प्रलयकालमैं जड़तादिक धर्मवान् जगत् ब्रह्ममैं लीन होकर स्वधर्मनसैं ब्रह्मको दूषित करेगा, यातैं तद्वत् नाम कार्यवत् कारणरूप ब्रह्ममैंभी जड़तादिक धर्म प्राप्त होवेंगे, ते तुमको इष्ट नहीं, यातैं चेतन ब्रह्म जगतका उपादान है यह असमञ्जस नाम असमीचीन है. इति ॥ ८ ॥

सिद्धान्तसूत्र ।

न तु दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥

न । तु । दृष्टान्तभावात् । इति प० ।

अर्थ-यथा घटादि कार्य मृत्तिकादि कारणमैं लीन हो मृत्तिकादिकोंको स्वधर्मनसैं दोषवान् करैं नहीं. और यथा स्वप्न जाग्रत् स्वधर्मनसैं कारणरूप आत्माको दोषवान् करे नहीं तथा उत्पत्तिआदिक धर्मवान् जगत् स्वधर्म जडतादिकोंसैं कारणको दोषवान् करैं नहीं. 'दृष्टान्तभावात्' नाम उक्त दृष्टांतवत् इस अर्थमैं अनेक दृष्टांत विद्यमान हैं, यातें पूर्व जो असमञ्जस कथन किया था सो न तु नाम असंगत है. इति ॥ ९ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ १० ॥

स्वपक्षदोषात् । च । इति प० ।

अर्थ-जगत् व ब्रह्म परस्पर विलक्षण हैं यातें तिनका कार्यकारणभाव संभवे नहीं. उत्पत्तिसैं पूर्व जगत् असत् सिद्ध होवेगा, इत्यादिक जे दोष सांख्यनैं कल्पना किये थे ते दोष स्वनाम सांख्यपक्षमेंभी तुल्यही हैं, शब्दादिकोंसैं रहित जो प्रधान तासैं शब्दादिवान्ही विलक्षण जगत्की उत्पत्ति मानेसैं तुल्यता प्रसिद्धही है. इति ॥ १० ॥

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ॥ ११ ॥

तर्काप्रतिष्ठानात् । अपि । अन्यथा । अनुमेयम् । इति । चेत् । एवम् । अपि । अविमोक्षप्रसङ्गः । इति प० ।

अर्थ-केवल तर्क अप्रतिष्ठित नाम अपर तर्कसैं बाधित होवेहै यातें समन्वयका तर्कसैं विरोध नहीं. यह 'तर्काप्रतिष्ठानादपि' इतने सूत्रभागका अर्थ है. 'अन्यथानुमेयम् इति चेत्' इतना भाग आगे पूर्वपक्ष है. इसका यह अर्थ है. ननु-यद्यपि तर्कपर तर्क किये तर्क अप्रतिष्ठित होवे है तथापि अन्यथा नाम प्रतिष्ठित जो तर्क तासैं समन्वयविरोध अनुमेय है अर्थात् ताकर विरोध जाना जाय है. इति । इसका यह समाधान है, एवम् अपि नाम ब्रह्मभिन्न पदार्थोंमैं

तर्कको प्रतिष्ठित हुएभी लिंगादिकोंसैं रहित ब्रह्मविषे वेदविरोधी तर्क अप्रतिष्ठित है, जो वेदविरोधी तर्क अंगीकार करेंगे तौ 'अविमोक्षप्रसङ्गः' नाम तर्ककर्ताका संसारसैं मोक्ष नहीं होवेगा, यातें वेदविरोधी तर्कको अप्रामाणिक होनेंसैं तासैं समन्वयका विरोध नहीं. इति ॥ ११ ॥

एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ॥ १२ ॥

एतेन । शिष्टापरिग्रहाः । अपि । व्याख्याताः । इति प० ।

अर्थ—ब्रह्म न जगत उपादानम् । विभुत्वात् । व्योमवत् । इस वैशेषिक अनुमानसैं ब्रह्मकारणबोधक समन्वयका विरोध है वा नहीं यह इस अधिकरणमें संदेह है. पूर्वपक्षमैं विरोध मानके परमाणुको कारण अंगीकार कियेसैं सिद्धांतमैं यह अर्थ है कि मनुआदिकोंने सत्कार्यवाद अंशमैं प्रधानकारणवाद अंगीकार किया है, एतेन नाम तिस प्रधानकारणवादके खंडनप्रकारसैं मनुआदिक शिष्टोंकरके अपरिग्रह नाम किसी अंशमैंभी नहीं ग्रहण किया जो परमाणुकारणवाद सोभी खंडन कियाही जाना चाहिये. तर्क वेदसैं बाधित है. इति तात्पर्यम् ॥ १२ ॥

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत्स्याल्लोकवत् ॥ १३ ॥

भोक्त्रापत्तेः । अविभागः । चेत् । स्यात् । लोकवत् । इति प० ।

अर्थ—अद्वितीय ब्रह्मसैं उत्पत्तिवक्ता समन्वयका प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसैं विरोध है वा नहीं यह इसमैं संदेह है. ननु—अद्वितीय ब्रह्मको जगतका उपादान मानेसैं भोक्ताको भोग्यरूपकी और भोग्यको भोक्तारूपकी आपत्ति नाम प्राप्ति होवेगी, सर्व प्रपंचको ब्रह्मरूप होनेसैं उक्त दोष होवेगा, यातें प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध जो विभाग नाम भेद सो नहीं सिद्ध होवेगा; यातें समन्वयका प्रत्यक्षसैं विरोध है, इति चेत् नाम यह शंका करें तौ संभवे नहीं. यथा मृत्तिकारूपसैं अभिन्न जे घटशरावादिक तिनका परस्पर भेद प्रसिद्ध है और एक रज्जुके कार्य जे दंडसर्पधारादिक तिनका परस्पर भेद है तथा भोक्तादिक प्रपंचका भेद 'स्यात्' नाम है. कल्पित भेद अंगीकार है यातें प्रत्यक्षसैं विरोध नहीं. इति ॥ १३ ॥

अव०—जगत् अनिर्वचनीय अंगीकृत है यातें ब्रह्मसैं भिन्न ताकी सत्ता नहीं; यह अर्थ विस्तारसैं सूत्रकार सिद्ध करे हैं।

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥

तदनन्यत्वम् । आरम्भणशब्दादिभ्यः । इति । प० ।

अर्थ–संदेह इसमैं पूर्ववत् जानाचाहिये. तत् नाम ब्रह्मसैं प्रपंचको अनन्यत्व है अर्थात् ब्रह्मसत्तासैं भिन्न सत्तारहित है. 'आरम्भणशब्दादिभ्यः' यह तहां हेतु हैं। 'यथा सोम्य एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिका इति एव सत्यम्' जा छांदोग्यश्रुतिमैं घटादिक कार्यको नाममात्र अंगीकार किया है, नामभिन्न कार्य नहीं कहा यातें मृत्तिकामात्रही कार्यका वास्तवस्वरूप है, तिसके ज्ञात हुए घटादिक ज्ञात होवे हैं, यातें कार्य मिथ्या है कारण सत्य है यह अर्थ यथा दृष्टांतमैं सिद्ध है तथा दार्ष्टांतमैंभी ब्रह्मभिन्न प्रपंचकी सत्ता नहीं यह अंगीकार है. आदिपदमैं 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' इत्यादिक वचनोंका ग्रहण है. इति ॥ १४ ॥

तहां अपरहेतु कहे हैं:—

भावाच्चोपलब्धेः ॥ १५ ॥

भावात् । च । उपलब्धेः । इति प० ।

अर्थ–केवल श्रुतिसैंही कार्यकारणका अभेद नहीं किंतु प्रत्यक्षउपलब्धिकाभी भाव नाम सद्भाव है, यातेंभी कार्यकारणका अभेद है. तंतुसैं भिन्न पटकी प्रत्यक्ष उपलब्धि होवे नहीं किंतु संयोगवान् तंतुही 'पट है पट है' इस व्यवहारका विषय होवे है, यातें कारणसैं कार्य अभिन्न है. इति ॥ १५ ॥

सत्त्वाच्चावरस्य ॥ १६ ॥

सत्त्वात् । च । अवरस्य । इति प० ।

अर्थ–उत्पत्तिसैं पूर्व अवरस्य नाम कार्यका कारणसैं अभिन्न सत्व अर्थात् विद्यमानत्व 'सदेव' इत्यादि श्रुतिसैं सुना है, यातें उत्पत्तिसैं अनंतरभी कारणसैं अभिन्न सिद्ध होवे है. जो उत्पत्तिसैं पूर्व प्रपंचको ब्रह्मरूप नहीं मानें तौ यथा सिकतारूपमैं अविद्यमान तेल सिकतासैं उपजे नहीं तथा ब्रह्मसैं प्रपंचभी नहीं उपजेगा. इति ॥ १६ ॥

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् १७

असद्व्यपदेशात् । न । इति । चेत् । न । धर्मान्तरेण । वाक्यशेषात् । इति प० ।

अर्थ–ननु छांदोग्यके तृतीयप्रपाठकमैं 'असद्वा इदमग्रे आसीत्' इस वाक्यमैं उत्पत्तिसैं पूर्व असद्व्यपदेश नाम कार्यको असत् कथन किया है यातैं कार्यको कारणरूपता संभवे नहीं, इति चेत् नाम उक्त शंका करें तौ संभवे नहीं. श्रुतिमैं जो असत् कथन है सो अत्यंत असत् अभिप्रायसैं नहीं किंतु प्रगट धर्मसैं अंतर नाम अपर जो अप्रगट धर्म तासैं असत् कथन किया है. उक्तवाक्यके आगे 'तत्सदासीत्' यह वाक्य है. इस वाक्यशेपसैं उक्त अर्थही निश्चित है. जो पूर्ववाक्यमैं अत्यंत असत् ग्रहण करेंगे तौ वाक्यशेपका बाध होवेगा, यातैं कारणसैं कार्य भिन्न नहीं. इति ॥ १७ ॥

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥ १८ ॥

युक्तेः । शब्दान्तरात् । च । इति प० ।

अर्थ–युक्तिसैं और शब्दान्तरसैंभी कार्यको कारणरूपता और उत्पत्तिसैं पूर्व विद्यमानता अवश्य सिद्ध होवे है. 'घटो जायते' जा प्रतीतिसैं घट स्वउत्पत्तिका कर्ता भान होवे है. जो उत्पत्तिसैं पूर्व घटको अत्यंत असत् मानेंगे तौ उत्पत्तिका कर्ता नहीं सिद्ध होवेगा, यातैं कारणरूप सत्ही घट उत्पत्तिका कर्ता है यह युक्तिशब्दसैं ग्रहण है. 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' यह छांदोग्यवाक्य शब्दांतरसैं ग्रहण किया है; इसमैं जो सत्पद है तासैंभी कार्यकारणका अभेद निश्चित है. इति ॥ १८ ॥

पटवच्च ॥ १९ ॥

पटवत् । च । इति प० ।

अर्थ–'मृत्तिका व घट भिन्न भिन्न हैं, विलक्षण प्रतीतिका विषय होनेसैं, घट पटकी नांई' जा अनुमानमैं व्यभिचार दिखावैं हैं. यथा संवेष्टित और प्रसारित पट विलक्षण प्रतीतिका विषय है तौभी ताका भेद नहीं तथा मृत्तिका और घटकाभी भेद नहीं. इति ॥ १९ ॥

यथा च प्राणादि ॥ २० ॥

यथा । च । प्राणादि । इति प० ।

अर्थ—यथा प्राणायामादिकोंसैं निरुद्ध किये हुए प्राण प्राणापानादि जीवनमात्र कार्यको सिद्ध करे हैं और नहीं निरुद्ध किये हुए आकुंचन प्रसारणादि कार्यको करे हैं, उक्त क्रियाके भेदसैं प्राणोंका भेद सिद्ध होवे नहीं, यातेंभी कार्यकारणका अभेदही है. इति ॥ २० ॥

पूर्वपक्षसूत्र ।

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥

इतरव्यपदेशात् । हिताकरणादिदोषप्रसक्तिः । इति प० ।

अर्थ—जीवाभिन्न ब्रह्मउपादानबोधक समन्वय इस अधिकारणका विषय है । जो जीव अभिन्न ब्रह्म उपादान है तौ जो जीवको अनिष्ट है सो नहीं रचा चाहिये, इस तर्कसैं समन्वयका विरोध है वा नहीं यह इसमैं संदेह है. पूर्वपक्षमैं यह अक्षरार्थ है—इतरस्य नाम जीवको 'तत्त्वमसि' आदिक वाक्यनसैं ब्रह्मरूपकथन किया है. यातें ब्रह्मको जगत्कर्त्ता मानेसैं जीवभी कर्ता सिद्ध होवे है, ताके सिद्ध हुएसैं हितका अकरण और आदिपदसैं अहितका करणरूप दोषनकी प्रसक्ति नाम प्राप्ति होवेगी. अहित जे जरामरणादिरूप दोष तिनकी प्राप्ति होवेगी यातें जीवाभिन्न ब्रह्म अनिष्टप्रपंचका कर्ता नहीं. इति ॥ २१ ॥

सिद्धान्तसूत्र ।

अधिकं तु भेदनिर्देशात् ॥ २२ ॥

अधिकम् । तु । भेदनिर्देशात् । इति प० ।

अर्थ—तु पूर्वपक्षनिषेधार्थ है. 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः । सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति' इत्यादिक श्रुतिमैं भेदका निर्देश नाम उपदेश किया है यातें अधिकम् नाम जीवसैं अपर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म है सो जगत्का कर्ता और उपादान है यह हमको अंगीकार है, यातें हित अकरणादि दोषकी प्राप्ति नहीं. नित्य ब्रह्मको कोईभी रंचक हिताहित नहीं, कल्पित भेदसैं सर्व संभवे है. इति ॥ २२ ॥

अव०—ननु एक ब्रह्मको जगत्का कारण अंगीकार कियेसैं कार्यकी विचित्रता नहीं सिद्ध होवेगी, जा शंकाका उत्तर कहे हैं:—

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥

अश्मादिवत्। च। तदनुपपत्तिः। इति प०।

अर्थ–यथा एक पृथिवीजन्य जे अश्म नाम पाषाण तिनकी वज्र, वैदूर्य, इंद्रनीलादि भेदसैं विचित्रता है तथा एक ब्रह्मके अनेक कार्योंकी स्वरूपसैं विचित्रता संभवे है. ननु–एक ब्रह्मके आश्रित जे कार्य तिनमैं धर्मविचित्रता कैसे है? और अर्थक्रियाविचित्रता कैसे है? जा शंकानिषेधके अर्थ सूत्रमैं आदिपद ग्रहण किया है. यथा एक पृथिवीके आश्रित जे बीज तिनमैं बहुविध पत्र पुष्प फल गंध रसादि विचित्रता है, यथा एक अन्नमैं केश नखादि विचित्र अर्थक्रियाकारित्व है तथा प्रसंगमैंभी संभवे है, यातें 'तदनुपपत्तिः' नाम उक्त दोषनकी प्राप्ति नहीं. इति ॥ २३ ॥

उपसंहारदर्शनान्नेति चेत् क्षीरवद्धि ॥ २४ ॥

उपसंहारदर्शनात्। न। इति। चेत्। क्षीरवत्। हि। इति प०।

अर्थ–सहायता विना ब्रह्मसैं उत्पत्ति कहनेवाला समन्वय इस अधिकरणका विषय है. सहायतारहित होनेसैं ब्रह्म जगत्का उपादान और कर्ता नहीं इस युक्तिसैं ता समन्वयका विरोध है वा नहीं यह तहां संदेह है. तहां यह आधे सूत्रसैं पूर्वपक्ष है. लोकमैं कर्ता जो कुलाल तिसको दंडचक्रादिकोंकी उपसंहार अर्थात् सहायता देखी है और मृत्तिकारूप उपादानको स्वभिन्न कुलालकी सहायता देखी है, ब्रह्म सहायतासैं रहित है यातें ब्रह्म जगत्का उपादान और कर्ता नहीं इस पूर्वपक्षका उत्तर कहे हैं. यथा लोकमैं क्षीर नाम दुग्ध बाह्यसाधन विनाही दधिरूप परिणामको प्राप्त होवे है तथा ब्रह्मभी अपरकी सहायता चाहे नहीं, यद्यपि क्षीरको उष्णताकी अपेक्षा है तथापि उष्णता दधि होनेमैं जो शीघ्रता तत्मात्रमैं निमित्त है. इति। और श्वेताश्वतरके षष्ठ अध्यायमैं यह कहा है–'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते। न समश्चाधिकश्च दृश्यते। पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'। यह वाक्यभी ब्रह्मको सहायताका निषेध करे है. इति ॥ २४ ॥

देवादिवदपि लोके ॥ २५ ॥

देवादिवत्। अपि। लोके। इति प०।

अर्थ–लोके नाम इतिहासादिकोंमैं यथा पितर ऋषि देवादिक चेतन स्वत-

स्सिद्धसामर्थ्यवान् वाह्यसाधनविना संकल्पमात्रसैं अनेक प्रकारके कार्यका कर्ता भान होवे है तथा ब्रह्मभी सहायताविना कार्यकर्ता है. इति ॥ २५ ॥

पूर्वपक्षसूत्र ।

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥

कृत्स्नप्रसक्तिः । निरवयवत्वशब्दकोपः । वा । इति प० ।

अर्थ–ब्रह्म निरवयव है, नानाप्रकारका परिणाम सावयवका होवे है. इस युक्तिसैं समन्वयका विरोध है वा नहीं यह इसमें संदेह है. पूर्वपक्षमैं यह अर्थ है कि ब्रह्म सावयव है वा निरवयव है? निरवयव मानके कार्याकार परिणामी मानेंगे तौ कृत्स्न नाम समग्र ब्रह्मको कार्याकार परिणामकी प्रसक्तिः नाम प्राप्ति होवेगी; यातें कार्यसैं अतिरिक्त ब्रह्म नहीं रहेगा. जो सावयवको कार्यरूपसैं परिणामी मानेंगे तौ 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्' जा श्वेताश्वतर श्रुतिरूप शब्दका कोप होवेगा. दोनों पक्षनमैं अनित्यत्वप्रसंग होवेगा. इति ॥ २६ ॥

सिद्धान्तसूत्र ।

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ॥ २७ ॥

श्रुतेः । तु । शब्दमूलत्वात् । इति प० ।

अर्थ–तु पूर्वपक्षको असंगतबोधन करे है. यथा ब्रह्मको जगतका उपादान सुना है तथा 'तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पुरुषः' इत्यादिक वचनोंमैं कार्यसैं अधिकभी ब्रह्मका स्वरूप सुना है यातें सर्व ब्रह्मको परिणामप्राप्तिरूप दोष नहीं. ननु पाछे जो युक्ति कही थी तासैं श्रुति बाधित है, यातें कार्यसैं अधिक ब्रह्मका सत्व श्रुति कैसे बोधन करेगी? जा शंकासैं कहे हैं:– ब्रह्मको शब्दमूलत्वात् नाम केवल शब्दप्रामाणिक होनेसैं शब्दअनुसार कार्य उपादानत्व और कार्य अतिरिक्त सत्व यह दोनों ब्रह्ममैं संभवे हैं, विरोध नहीं. इति ॥ २७ ॥

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॥ २८ ॥

आत्मनि । च । एवम् । विचित्राः । च । हि । इति प० ।

अर्थ–एवं नाम यथा ब्रह्ममैं विवर्तरूप विचित्र नाम अनेकप्रकारका कार्य उपजे है तथा 'न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति अथ रथान्

रथयोगान्पथः सृजते' इत्यादिक श्रुतिनमैं स्वप्नद्रष्टा निरवयव आत्मनि नाम जीवमैं विचित्र सृष्टि सुना है, यथा स्वप्नप्रपंचसैं स्वप्नसाक्षीमैं दोष नहीं तथा विवर्तरूप कार्य उपादानत्वसैं ब्रह्ममैंभी कृत्स्नप्रसक्ति आदिक दोष नहीं. इति रहस्यम्. इति । उक्त श्रुति बृहदारण्यकके षष्ठ प्र० तृतीय ब्राह्मणमैं है॥ २८ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥

स्वपक्षदोषात् । च । इति प० ।

अर्थ—सांख्यमतमैंभी निरवयव प्रधानको जगत्का उपादान अंगीकार किया है यातें स्वनाम सांख्यमतमैंभी कृत्स्नप्रसक्तिआदिक सर्व दोष तुल्य हैं और परमाणुवादमैं परमाणु दोनोंके संयोगसैं द्व्यणुकादि सृष्टि मानी है सो संयोग परमाणुके एकदेशमैं है वा सर्वजगा है. संयोगीके सर्वदेशमैं तो संयोग लोकमैं कोई देखा नहीं, एकदेशमैं मानेसैं सावयवत्व विना एकदेशका संयोग संभवे नहीं. सावयव मानेसैं निरवयव कथन असंगत होवेगा. इत्यादि दोष स्वपक्ष नाम न्यायपक्षमैंभी तुल्यही हैं. ब्रह्मवादमैं दोष रंचक नहीं, यातें परमात्माही सर्वका उपादान है. इति ॥ २९ ॥

सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

सर्वोपेता । च । तद्–दर्शनात् । इति प० ।

अर्थ—मायाशक्तिमान् ब्रह्म जगत्का कारण है, यह पूर्व कहा; सो ब्रह्म शरीररहित है. शरीरविना मायाकथन असंगत है. इस युक्तिसैं पूर्व उक्तका विरोध है वा नहीं यह तहां संदेह है. पूर्वपक्षमैं विरोध अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत है. परदेवता सर्वउपेता नाम सर्वशक्तिमान् है तत् नाम सर्वशक्तिमत्वदर्शनात् नाम श्रुतिमैं देखा है । तथाहि—'सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः' यह छांदोग्यतृतीयप्रपाठकगत श्रुति सर्वशक्तिमत्व ब्रह्ममैं दिखावे है इति । श्रुतिअर्थ—सर्व जगत् कर्म होवे जिसका सो सर्वकर्म कहिये अर्थात् सर्वको रचे है. इसीतरह आगे जानना चाहिये. इति ॥ ३० ॥

विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् ॥ ३१ ॥

विकरणत्वात् । न । इति । चेत् । तत् । उक्तम् । इति प० ।

अर्थ—सर्वशक्तियुक्त जे देवतादिक ते नेत्रादिकरणवान्ही विचित्रकार्यके कर्ता देखे हैं और ब्रह्मको 'अचक्षुष्कमश्रोत्रम्' जा श्रुतिमैं विकरणत्वात्

नाम करणोंसैं रहित सुना है, यातें ब्रह्म जगत्कर्ता नहीं, इति चेत् नाम यह शंका करें तौ इसका जो उत्तर है तत् नाम सो उक्तं नाम पूर्व कह दिया है. इति ॥ ३१ ॥

पूर्वपक्ष ।

न प्रयोजनवत्त्वात् ॥ ३२ ॥

न । प्रयोजनवत्त्वात् । इति प० ।

अर्थ–सर्वकामनासैं रहित ब्रह्मको जो समन्वय उपादान कहे है सो इस अधिकरणका विषय है. ब्रह्म फलसैं विना जगतको रचे नहीं, अभ्रांतचेतन होनेसैं । इस तर्कसैं तिस समन्वयका विरोध है वा नहीं, यह तहां संदेह है. पूर्वपक्षमैं यह अर्थ है—ब्रह्म नित्यतृप्त है यातें प्रयोजनसैं रहित है. बुद्धिमानकी प्रवृत्ति प्रयोजनविना होवे नहीं. यातें प्रयोजनवत्त्वात् नाम प्रवृत्तिको प्रयोजनवान् होनेसैं ब्रह्म जगत्कर्ता नहीं । इति ॥ ३२ ॥

सिद्धान्तसूत्र ।

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥ ३३ ॥

लोकवत् । तु । लीलाकैवल्यम् । इति प० ।

अर्थ–तु पद शंकानिषेध अर्थ है, यथा लोकमैं राजाकी फलविनाही केवल लीलारूप अनेक प्रकारकी प्रवृत्ति देखी है और यथा प्राणोंका व्यापार स्वाभाविक है तथा ब्रह्मकी भी विचित्र कार्यरचना लीलाकैवल्यम् नाम केवल लीलामात्र है. फल अभिलाषासैं नहीं. और किसी प्रकार राजाकी लीलामैं फलकल्पना संभवे है परंतु नित्यतृप्त ब्रह्मकी लीलामात्रही है. इति ॥ ३३ ॥

वैषम्यनैर्घृण्येन सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति ॥ ३४ ॥

वैषम्यनैर्घृण्येन । सापेक्षत्वात् । तथाहि । दर्शयति । इति प० ।

अर्थ–निरवयव ब्रह्मसैं उत्पत्ति कहनेवाला समन्वय इसका विषय है. जो विषमदृष्टिकर्ता होवे है सो सावद्य होवे है. इस तर्कसैं तिस समन्वयका विरोध है वा नहीं? यह इसमैं संदेह है. तहां यह पूर्वपक्ष है:—ब्रह्म प्राणिकर्मनिमित्तसैं जगत्कर्ता है वा तिससैं विनाही कर्ता है. कर्मनिमित्तसैं कर्ता मानें तौ ब्रह्मको अनीश्वर हुआ चाहिये. कर्मनिमित्त विना कर्ता मानें तौ वैषम्य और नैर्घृण्य दोष होवेंगे. तथाहि अनेक कीटपतंगादि योनिको अत्यंत दुखी उत्पन्न करना,

अनेक मनुष्यादिजीवको साधारण दुःखी सुखी उत्पन्न करना, अनेक देवादि जीवोंको अत्यंत सुखी उत्पन्न करना, यह वैषम्यदोष है और सर्वसंहारकर्ता होना, यह नैर्घृण्य दोष है. तिन दोषनसैं ब्रह्म सावद्य सिद्ध होवेगा. यातें निरवद्य ईश्वर जगत्कर्ता नहीं. इति । उक्त शंकाका यह समाधान हैः—पूर्व जे दोष कहे हैं ते 'न' नाम असंगत हैं. सापेक्षत्वात् नाम ईश्वरमैं कर्तापना प्राणिकर्मनिमित्तसैं अंगीकृत है, यातें दोष नहीं. उक्त दोष कर्मनिमित्तविना कर्ता मानेसैं होवे हैं. और कर्मनिमित्तसैं जो अनीश्वरतादोष कहा था सोभी असंगत है. भृत्यसेवाके अनुसार फलदाता राजाको अराजापना लोकमैं देखा नहीं तथा ईश्वरमैं अनीश्वरता होवे नहीं. अनेक बीज भूमिमैं पड़े रहे हैं, मेघविना अंकुर उपजे नहीं तथा ईश्वरविना कर्मफल उपजे नहीं । तथाहि दर्शयति नाम श्रुति स्मृति ईश्वरको प्राणिकर्मनिमित्तसैं जगत्का कर्ता कहे है. तथाहिः—'एष हि एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष उ एव असाधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषते ॥ पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' यह कौषीतकिश्रुति कर्मनिमित्तसैं ईश्वरको कर्ता कहे है. श्रुतिअर्थ—जिसको इस लोकसैं ऊपर प्राप्त करनेकी इच्छा करे है ताको पूर्वजन्मकृत सुकृतके वशसैं शुभ कर्म करावे है और जिसको नीचे प्राप्त करनेकी इच्छा करे है ताको अशुभ करावे है. पुण्यसैं सुखी होवे है पापसैं दुखी होवे है. इति । 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इत्यादिक स्मृतिभी कर्मनिमित्तसैं ही ईश्वरको कर्ता कहे है. इति ॥ ३४ ॥

न कर्माविभागादिति चेन्नाऽनादित्वात् ॥ ३५ ॥

न । कर्म । अविभागात् । इति । चेत् । न । अनादित्वात् । इति प० ।

अर्थ—'एकमेवाद्वितीयम्' इस छांदोग्यश्रुतिसैं उत्पत्तिसैं पूर्व अविभागात् नाम अभेद निश्चय होवे है. यातें तदा 'न कर्म' कहिये कर्मोंका अभाव था, यातें जगत्कर्तामैं कर्मनिमित्तविना विषम दृष्टि संभवे है, जा शंकाका यह उत्तर हैः—संसार बीजअंकुरवत् अनादि है, यातें उक्त शंका असंगत है. पूर्व किये जे धर्माधर्म ते अत्यंत नाश होवें नहीं. इति ॥ ३५ ॥

अव०—ननु संसार अनादि कैसे है? जा शंकासैं कहे हैं:—

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥

उपपद्यते । च । अपि । उपलभ्यते । च । इति प० ।

अर्थ—संसारमैं अनादित्व उपपद्यते नाम संभवे है. अनादि नहीं मानें तौ अकस्मात् सृष्टि अंगीकार कियेसैं मुक्तकोभी पुनः संसार होवेगा. और श्रुति-स्मृतिमैं संसार अनादि उपलभ्यते नाम प्रतीत होवे है । 'धाता यथापूर्व-मकल्पयत्' यह श्रुति और 'न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा' यह भगवद्वाक्य संसारको अनादि कहे है. इति ॥ ३६ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेः। च । इति प० ।

अर्थ—जो समन्वय निर्गुण ब्रह्मको जगत्का कर्ता कहे है ताका 'जो निर्गुण है सो उपादान नहीं' जा तर्कसैं विरोध है वा नहीं? जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं विरोध मानके यह उत्तरपक्ष हैः—जगत्कारणत्व सर्वज्ञत्वादिक जे कारणके सर्व धर्म ते पूर्व उक्त प्रकारसैं ब्रह्ममैं उपपत्तेः नाम बने हैं यांते ब्रह्मही जगत्का कारण है, यातें यह शास्त्र निर्दोष है. इस निर्दोष शास्त्रसैं ब्रह्ममैं जो सर्व वेदांतका समन्वय ताका स्मृति और युक्तिसैं विरोध रंचक नहीं. इति सिद्धम् ॥ ३७ ॥

इति सूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयपादप्रारम्भः ।

पूर्व समन्वयमैं परकल्पित दोषनका निरास करके अब अधिकारीकी अद्वैतशास्त्रमैं निस्संदेह प्रवृत्तिअर्थ सूत्रकार परमतदूषणप्रधान इस पादका आरंभ करे हैं. सांख्यमतमैं कहे जे पदार्थ तामैं श्रद्धाके निषेधार्थ प्रथम सांख्यमत-खंडन करे हैं । पूर्व तो वेदांत प्रधानका बोधक नहीं, यह सिद्ध किया है. इस पादमैं प्रधानसाधक युक्तिको खंडन करे हैं याते पुनरुक्तिदोष नहीं. इस पादके पंच अधिक चालीस सूत्र हैं. तिनमैं ८ अधिकरण हैं, ३७ गुण हैं. तथाहिः—

सूत्रसंख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	सांख्यखण्डन.
२	+	गु०	सा०

३	+	गु०	सा०
४	+	गु०	सा०
५	+	गु०	सा०
६	+	गु०	सा०
७	+	गु०	सा०
८	+	गु०	सा०
९	+	गु०	सा०
१०	+	गु०	सा०
११	अ०	+	वैशेषिकमतखण्डनसिद्धान्त.
१२	अ०	+	वैशेषिकमतखण्डन.
१३	+	गु०	वै०
१४	+	गु०	वै०
१५	+	गु०	वै०
१६	+	गु०	वै०
१७	+	गु०	वै०
१८	अ०	+	बुद्धमुनिबाह्यमतखण्डन.
१९	+	गु०	बु०
२०	+	गु०	बु०
२१	+	गु०	बु०
२२	+	गु०	बु०
२३	+	गु०	बु०
२४	+	गु०	बु०
२५	+	गु०	बु०
२६	+	गु०	बु०
२७	+	गु०	बु०
२८	अ०	+	बुद्धमुनि आन्तरमतखण्डन.
२९	+	गु०	बु०
३०	+	गु०	बु०
३१	+	गु०	बु०
३२	+	गु०	बु०

३३	अ०	+	जैनमतखण्डन.
३४	+	गु०	जै०
३५	+	गु०	जै०
३६	+	गु०	जै०
३७	अ०	+	केवलनिमित्तकारणखण्डन.
३८	+	गु०	के०
३९	+	गु०	के०
४०	+	गु०	के०
४१	+	गु०	के०
४२	अ०	+	भागवतमतखण्डन.
४३	+	गु०	भा०
४४	+	गु०	भा०
४५	+	गु०	भा०
	८	३७	इति

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॥ १ ॥

रचनानुपपत्तेः । च । न । अनुमानम् । इति प० ।

अर्थ–परमतयुक्तिविरोधसैं समन्वयकी असिद्धि पूर्वपक्षमैं फल है और परमतकी युक्तिके अविरोधसैं समन्वयसिद्धि सिद्धांतका फल है. यह पादसमाप्तिपर्यंत जाना चाहिये । अचेतन प्रधान जगत्का उपादान है, यह सांख्यसिद्धांत इस अधिकरणका विषय है. जामैं संदेह होवे सो विषय कहिये है. सो सिद्धांत प्रमाणमूल है वा भ्रांतिमूल है, यह तहां संदेह है. तहां यह पूर्वपक्ष है:—'यह सुख दुःख मोहरूप जो जगत् इसका स्वतुल्यही कोई उपादान है तामैं अन्वित होनेसैं, यथा मृत्तिका अन्वित घटादिकोंका उपादान है' इस अनुमानसैं जो सुखदुःख मोहरूप वस्तु सिद्ध होवे है सो प्रधान अंगीकार है याते सांख्यसिद्धांत प्रामाणिक है. इति। तहां यह उत्तर है. चेतनप्रेरणारहित रचनाज्ञानशून्य जो प्रधान तासैं अनेकविध विचित्र जगतरचना अनुपपत्तेः नाम संभवे नहीं यांते अनुमानम् नाम उक्त अनुमानकरके सिद्ध जो प्रधान सो जगतका उपादानकारण नहीं, चकारसैं स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास सूचना किया है, याते सांख्यसिद्धांत अप्रामाणिक है. इति ॥ १ ॥

प्रवृत्तेश्च ॥ २ ॥

प्रवृत्तेः । च । इति प० ।

अर्थ–साम्यावस्थाको प्राप्त जे गुण तिनका नाम प्रधान है. साम्यावस्थाकालमैं रंचक कार्य उपजे नहीं, किंतु साम्यावस्था हटकर गुणोंका अंगांगीभाव हुएसैं अर्थात् कम ज्यादा हुएसैं कार्य उपजे है, यह सांख्यसिद्धांत है सो असंगत है. लोकमैं जे अचेतन रथादिक तिनकी प्रवृत्ति चेतनाधीन देखी है. प्रधानका जो साम्यावस्थाका छोड़नारूप प्रवृत्ति सो चेतनप्रेरणाविना संभवे नहीं, याते 'प्रवृत्तेः' नाम उक्त विधसैं प्रवृत्तिके असंभवसैं सांख्यमत असंगत है. इति ॥ २ ॥

पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥ ३ ॥

पयोऽम्बुवत् । चेत् । तत्र । अपि । इति प० ।

अर्थ–ननु अचेतनकीभी स्वतः प्रवृत्ति होवे है. यथा पयस् नाम दुग्ध वत्सके लिये आपही प्रवृत्त होवे है, यथा जल स्वाभाविकही चले है अर्थात् निम्न देशमैं गमनार्थ प्रवृत्त होवे है तथा प्रधानभी चेतनप्रेरणाविना प्रवृत्त होवे है, इति चेत् नाम यह कल्पना करें तौ तत्रापि नाम तहां जलादिकोंमैंभी परमात्मा प्रेरक सुना है, यांते अचेतनकी प्रवृत्ति स्वतः संभवे नहीं. इति ॥ ३ ॥

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॥ ४ ॥

व्यतिरेकानवस्थितेः । च । अनपेक्षत्वात् । इति प० ।

अर्थ–प्रधानको स्वतंत्र कारण अंगीकार कियेसैं कदाचित्भी कार्यके व्यतिरेक नाम अभावकी 'अनवस्थितेः' नाम अवस्थितिका अभाव होवेगा. अर्थात् किसी कालमैंभी कार्यका अभाव नहीं होवेगा किंतु सर्वदा कार्य बना रहेगा। स्वतंत्रप्रधानका अपर कोई चेतन सहकारी 'अनपेक्षत्वात्' नाम तुमने अंगीकार नहीं किया याते उक्त अर्थ सिद्ध होवेगा. सो असंगत है. याते स्वतंत्र प्रधान जगत्का उपादान नहीं. इति ॥ ४ ॥

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ ५ ॥

अन्यत्राभावात् । च । न । तृणादिवत् । इति प० ।

अर्थ–ननु तृण जलादिक अपर निमित्तसैं विना दुग्धाकार परिणामको

प्राप्त होवे हैं, तथा प्रधान जगताकार अपर निमित्तविनाही होवे है. यह दृष्टांतभी असंगत है, तथाहि—अन्यत्र नाम धेनुआदिकोंसैं अपर जे वैलादिक तिनमैं तृणादिकोंके दुग्धाकार परिणामका अभाव देखा है, यातें तृणादिवत् कल्पना संभवे नहीं, यातें धेन्वादिक निमित्तसैंही तृणादिक क्षीररूप होवे है. इति ॥ ५ ॥

अभ्युपगमेऽपि अर्थाभावात् ॥ ६ ॥

अभ्युपगमे । अपि । अर्थाभावात् । इति । प० ।

अर्थ—प्रधानकी स्वतःप्रवृत्ति'अभ्युपगमे'नाम अंगीकार कियेसैंभी अर्थाभाव नाम प्रयोजन सिद्ध होवे नहीं. तथाहि—प्रधानकी प्रवृत्ति भोगअर्थ मानें तो भोग्य पदार्थ अनंत हैं, यातें कदाभी मोक्ष नहीं होवेगा, जो प्रधानकी प्रवृत्तिको अपवर्ग अर्थ मानेंगे तो भोग नहीं होवेगा, यातें प्रयोजनका अभावहोनेसैं प्रधान जगतका कारण नहीं. इति ॥ ६ ॥

पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि ॥ ७ ॥

पुरुषाश्मवत् । इति । चेत् । तथापि । इति । प० ।

अर्थ—ननु पुरुष यद्यपि असंग है यातें सो प्रधानका प्रवर्तक नहीं तथापि यथा पंगुपुरुष स्वप्रवृत्तिसैं रहितभी प्रवृत्तिमैं समर्थ अंधको प्रवृत्त करे है और अश्म नाम अयस्कांत संनिधिमात्रसैं लोहको प्रवृत्त करे है, तथा प्रधानका प्रवर्तक पुरुष है. यह कल्पना करें तो तथापि नाम तौभी दोष दूर होवे नहीं. तथाहि पुरुषको प्रेरक मानेसैं प्रधान स्वतंत्र है, जा प्रतिज्ञा भंग होवेगी और पुरुष अकर्ता नहीं सिद्ध होवेगा और दृष्टांतोंमैं पंगुपुरुषका वाणीरूप व्यापार है. अयस्कांतका अनित्य संनिधि व्यापार है. प्रधानपुरुषकी संविधि सदाही है, यातें सो व्यापार नहीं. जा विध दोष दूर होवे नहीं. इति ॥ ७ ॥

अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ॥ ८ ॥

अङ्गित्वानुपपत्तेः । च । इति । प० ।

अर्थ—गुणोंका अंगांगीभाव होकर महत्तत्वादि कार्य उपजे हैं यह सांख्यवाले कहे हैं. तहां यह पूंछा चाहिये। कि प्रकृति कूटस्थ है वा विकारी है ? प्रथम पक्ष मानें तौ गुणसाम्यावस्थाका भंग नहीं होवेगा यातें अंगित्व नाम गुणोंका कम

ज्यादारूप अंगांगीभाव 'अनुपपत्तेः' नाम नहीं बनेगा, यातें कार्य नहीं उपजेगा. जो विकारी मानें तो साम्यावस्थाभंगरूप विकार स्वतः होवे है वा परसैं होवे है ? स्वतःपक्षमें कार्य सदा बना रहेगा. परसैं मानें तौ पुरुषको उदासीन कहिना असंगत होवेगा. यातें अंगांगीभावके असंभवसैं कार्यका अभाव होवेगा. इति ॥ ८ ॥

अन्यथाऽनुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ॥ ९ ॥

अन्यथा । अनुमितौ । च । ज्ञशक्तिवियोगात् । इति । प० ।

अर्थ—ननु हमको उक्तविधसैं अंगीकार नहीं किंतु अन्यथा नाम कार्यसैं अंगांगीभावकी 'अनुमितौ' नाम अनुमिति अंगीकार कियेसैं उक्त दोष नहीं यहभी असंगत है. चेतनत्व धर्म पुरुषका है 'गुण' ज्ञशक्तिवियोगात् नाम ज्ञानरूप शक्तिसैं रहित हैं यातें तासैं अनुमिति संभवे नहीं. तात्पर्य यह है कि गुण साम्यावस्थाभंगके योग्य हैं तथापि ताका भंग निमित्तविना संभवे नहीं. निमित्त कोई बने नहीं, स्वतः भंग मानेसे सदा वैषम्यता रहेगी. जो स्वतः अवैषम्यता मानेंगे तौ सदा साम्यता रहेगी, यातें अंगांगीभाव संभवे नहीं. इति ॥ ९ ॥

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॥ १० ॥

विप्रतिषेधात् । च । असमञ्जसम् । इति । प० ।

अर्थ—सांख्यवाले कहूं तो महत्तत्वसैं पंचतन्मात्रकी उत्पत्ति कहे हैं और कहूं अहंकारसैं कहे हैं, कहूं एकादश इंद्रियां कहे हैं कहूं, सप्त इंद्रियां कहे हैं, यातें परस्पर विप्रतिषेधात् नाम निषेध करनेसैंभी सांख्यमत 'असमञ्जसम्' नाम असमीचीन है. इति सिद्धम् ॥ १० ॥

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥

महत् । दीर्घवत् । वा । ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् । इति । प० ।

अर्थ—जो समन्वय चेतन ब्रह्मसें जगत्की उत्पत्ति कहे है सो इस अधिकरणका विषय है. कारणके गुण स्वसमान गुणोंको कार्यमें आरंभ करे हैं, इस युक्तिसैं तिस समन्वयका विरोध है वा नहीं यह तहां संदेह है । ब्रह्मको प्रपंचका उपादान मानेसैं प्रपंचभी ब्रह्मवत् चैतन्य हुआ चाहिये, कारणके गुण कार्यमें

अवश्य जावे हैं यातें चेतनसैं जड़की उत्पत्ति माननी विरुद्ध है, यह पूर्वपक्ष है. उक्त कल्पनाका व्यभिचार है यातें सिद्धांतविरोध नहीं. अक्षरार्थ यह है कि यथा 'ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्' नाम द्व्यणुक और परमाणुसैं महत् दीर्घ त्र्यणुक उपजे है अर्थात् परमाणुसैं अणु ह्रस्व द्व्यणुक उपजे है. अणु ह्रस्व द्व्यणुकसैं महत् दीर्घ त्र्यणुकादि उपजे हैं तथा चेतनभी ब्रह्म अचेतनका कारण हैं. इति । यह वैशेषिकमत है. दो परमाणुवोंसैं ह्रस्व अणु द्व्यणुक उपजे है. तहां तीन तीन द्व्यणुकसैं महत् दीर्घ त्र्यणुक उपजे है. तहां परमाणुमैं जो परिमाणरूप गुण सो स्वसमान परिमाणको द्व्यणुकमैं नहीं उपजावे है, किंतु परमाणुगत जो द्वित्वसंख्या सो द्व्यणुकमैं ह्रस्वत्व अणुत्वका आरंभ करे है. और द्व्यणुकमें जे अणुत्व ह्रस्वत्व ते त्र्यणुकमैं स्वसमान अणुत्व ह्रस्वत्वका आरंभ नहीं करे हैं, किंतु द्व्यणुकमैं जो त्रित्व संख्या सो त्र्यणुकमैं महत्वादिकोंका आरंभक है. यह तिनका संकेत है. इनका इस मतमैं कारणके गुण कार्यमैं जावें हैं जा संकेतमैं व्यभिचार स्पष्ट भान होवे है, यातें उक्त नियम असंगत है. इति ॥११॥

आगे ताका मत खंडन करें हैं:—

उभयथाऽपि न कर्माऽतस्तदभावः ॥ १२ ॥

उभयथा । अपि । न । कर्म । अतः । तदभावः । इति । प० ।

अर्थ—परमाणुसैं जो जगतकी उत्पत्ति सो इस अधिकरणका विषय है. सो प्रमाणमूल है वा भ्रांतिमूल है यह तहां संशय है. पूर्वपक्षमैं प्रामाणिक अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत है. न्यायमतमैं प्रथम परमाणुमैं क्रिया मानी है. तिस क्रियाका परमाणु समवायिकारण है. आत्मपरमाणुसंयोग असमवायिकारण है. अदृष्टादि निमित्त कारण हैं. तिस क्रियासैं परमाणु दोका संयोग होवे है. संयोग होकर द्व्यणुक उपजे है. यह तिनका सिद्धांत है सो असंगत है. तथाहि—परमाणुमैं जो प्रथम कर्म है तामैं कोई निमित्त नहीं मानें तौ कर्म नहीं होवेगा. जो निमित्त मानें तौ दृष्ट है वा अदृष्ट है. दृष्ट तौ जीवप्रयत्न हस्तसंयोगादि हैं. ते तदा विद्यमान नहीं. और अदृष्टपक्षमैं यथा आत्मसमवेत अदृष्ट निमित्त है तथा अदृष्टवान् आत्माका संबंधभी सदा रहे है, यातें प्रलयका अभाव होवेगा यातें उभयथा नाम निमित्त मानेसैं और नहीं मानेसैं कर्म नाम क्रिया संभवे नहीं, अतः नाम कर्मके असंभवसैं तत् नाम कार्योत्पत्तिकाभी अभाव सिद्ध होवेगा यातें परमाणुकारणवाद असंगत है. इति ॥ १२ ॥

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ १३ ॥

समवायाभ्युपगमात्। च। साम्यात्। अनवस्थितेः। इति। प०।

अर्थ–द्व्यणुक परमाणुमैं समवायसंबंधसैं रहे है, यह न्यायमतमैं मानें हैं यातेंभी परमाणुकारणवाद असंगत है. तहां दोष कहे हैं–यथा द्व्यणुक परमाणुसैं अत्यंत भिन्न है, ताको समवायकी अपेक्षा है, तथा समवायभी परमाणुसैं अत्यंत भिन्न है यातें ताकोभी समवायकी अपेक्षा होवेगी. जैसे द्व्यणुकमैं भिन्नत्व है तथा समवायमैंभी भिन्नत्व है यातें साम्यात् नाम भिन्नत्वकी तुल्यतासैं ताको अपर समवायकी अपेक्षा अवश्य होवेगी. ताके अंगीकार कियेसैं 'अनवस्थितेः' नाम ताको अपर समवाय चाहिये जाविध अनवस्था प्राप्त होवेगी. जो समवाय नहीं सिद्ध हुआ तो द्व्यणुकादि कार्य कैसे होवेगा? इति ॥ १३ ॥

नित्यमेव च भावात् ॥ १४ ॥

नित्यम्। एव। च। भावात्। इति। प०।

अर्थ–किंच परमाणुका प्रवृत्तिस्वभाव है वा निवृत्तिस्वभाव है? प्रवृत्तिस्वभाव मानेसैं प्रवृत्तिको नित्य नाम सदा भावात् नाम होनेसैं प्रलय नहीं होवेगा. और निवृत्तिस्वभाव मानेसैं निवृत्तिको नित्य नाम सदा भावात् नाम होनेसैं उत्पत्तिका अभाव होवेगा. इति ॥ १४ ॥ किंचः—

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ॥ १५ ॥

रूपादिमत्त्वात्। च। विपर्ययः। दर्शनात्। इति। प०।

अर्थ–चतुर्विध परमाणु गंधादिवान् नित्य अणुरूप है यह वैशेषिक मानें हैं सोभी असंगत है. तथाहि–परमाणु अनित्य स्थूलरूप हैं रूपादिवान् होनेसैं पटादिकोंकी नांई है. इति। पटमैं रूपादिक हैं यातें सो तंतुसैं स्थूल और अनित्य है तथा जगत्कारणमैं रूपादिक अंगीकार कियेसैं सो स्थूल और अनित्य सिद्ध होवेगा यातें जगत् कारण रूपादिकोंसैं रहित है. अक्षर योजना यह है कि तुम्हारे मतमैं जगत् कारणका रूपादिमत्वात् नाम रूपादिकवान् होनेसैं अणुत्व नित्यत्वसैं विपर्यय नाम उलटे धर्म जे स्थूलत्व अनित्यत्वादि तिनकी प्राप्ति होवेगी, लोकमैं रूपादिकवान् जे पटादिक ते तैसेही दर्शनात् नाम देखे हैं. इति ॥ १५ ॥

उभयथा च दोषात् ॥ १६ ॥

उभयथा। च। दोषात्। इति। प०।

अर्थ–किंच रूप रस स्पर्श गंधवान् ४ पृथिवी स्थूल भान होवे है. रूप रस स्पर्शवान् ३ जल सूक्ष्म भान होवे है. रूपस्पर्शवान् २ तेज सूक्ष्मतर भान होवे है. वायु स्पर्शवान् सूक्ष्मतम भान होवे है. उनके अनुसार परमाणुको कल्पें तौ अणु कथन संभवे नहीं. जो रूपादिवान् नहीं कल्पेंगे तौ पृथिवी आदिकोंमैं रूपादिकोंका लाभ नहीं होवेगा, इस प्रकार उभयथा नाम दोनोंहीं प्रकारसैं दोष होनेसैं परमाणुकारणवाद असंगत है. इति ॥ १६ ॥

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॥ १७ ॥

अपरिग्रहात्। च। अत्यन्तम्। अनपेक्षा। इति। प०।

अर्थ–प्रधानकारणवादको सत्कार्यअंशमैं मनुआदिकोंने अंगीकार किया है परंतु परमाणुकारणवाद किसी अंशमैंभी ग्रहण नहीं किया; यातें सो अत्यंत नाम सर्व अंशमैं अनपेक्ष नाम अधिकरीको त्यागनेयोग्य है. यातें वैशेषिकमतसैं समन्वयका विरोध नहीं. इति ॥ १७ ॥

अव०–पूर्व वैशेषिकमतका खंडन किया है आगे वैनाशिकमतका खंडन करैं हैं। बुद्धमुनिने जिस आगमका उपदेश किया है सो आगम वैभाषिक १, सौत्रान्तिक २, योगाचार्य ३, शून्यवादी ४, जा चार शिष्योंकी बुद्धिअनुसार चार प्रकारका है. तहां आदिके दोयके मतमैं ज्ञानादिक सर्व पदार्थ क्षणिक माने हैं और सत्यरूप माने हैं. तिनमैंभी एता भेद है। वैभाषिकके मतमैं घटादिक पदार्थ प्रत्यक्ष हैं और सौत्रांतिकके मतमैं घटाकारज्ञान उपजे है ता ज्ञानसैं अप्रत्यक्ष घटादिकोंका अनुमान होवे है। 'घटादयः अप्रत्यक्षा भवितुमर्हन्ति स्वाकारज्ञानविषयत्वात् धर्मादिवत्' यह अनुमानका आकार है॥ उक्त उभय मतनको मिलाकर सूत्रकार खंडन करें हैं:–

समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ॥ १८ ॥

समुदाये। उभयहेतुके। अपि। तदप्राप्तिः। इति। प०।

अर्थ–उक्त मत प्रमाणमूल है वा भ्रांतिमूल है जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं प्रमाणमूल अंगीकार है. तथाहि–भूमि जल तेज वायु यह चारों भूत चतुर्विध पर-

माणुके पुंजस्वरूप हैं. परमाणुविना अवयवीरूप कार्य रंचक नहीं. यह परमाणुहेतुक जलादिसमुदाय बाह्य है. द्वितीय आध्यात्मिक समुदाय है तांके हेतु स्कंध हैं. तथाहि—रूप १, विज्ञान २, वेदना ३, संज्ञा ४, संस्कार ५, यह पंच स्कंध हैं. विषयोंसहित इंद्रियोंका नाम रूप स्कंध है, १ अहम् यह जो आलयविज्ञानप्रवाह सो विज्ञानस्कंध कहिये है २। सुखादि प्रत्यय वेदनास्कंध अंगीकार है ३, गौ है अश्व है इत्यादि शब्दविशिष्ट वस्तुविषय सविकल्प प्रत्यय संज्ञास्कंध है ४, राग, द्वेष, मोह, धर्माधर्म यह संस्कारस्कंध है ५. तहां विज्ञानस्कंधको चित्त और आत्मा कहे हैं. अपर चारों चैत्तस्कंध हैं. अर्थात् चित्तमें हैं. यह उभय स्कंधनका समुदाय सर्व व्यवहारका कारण है. यह आध्यात्मिकसमुदाय स्कंधहेतुक है. यह वैभाषिक और सौत्रांतिकका मत है. इनका खंडन करे हैं. उभयहेतुके नाम परमाणुहेतुक बाह्यसमुदायमैं और स्कंधहेतुक आध्यात्मिक समुदायमैं तत् नाम उभय समुदायकी अप्राप्ति है. परमाणु स्कंध उभयही अचेतनरूप हैं. (यातें स्वतः) तिनका समुदाय संभवे नहीं. अपर कोई समुदायकर्ता माना नहीं यातें समुदायप्राप्ति संभवे नहीं. इति ॥ १८ ॥

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्र-निमित्तत्वात् ॥ १९ ॥

इतरेतरप्रत्ययत्वात् । इति । चेत् । न । उत्पत्ति-मात्रनिमित्तत्वात् । इति । प० ।

अर्थ—ननु—चेतनविनाभी संघात संभवे है. तथाहि—अविद्या १, संस्कार २, विज्ञान ३, नाम ४, रूप ५, षडायतन ६, स्पर्श ७, वेदना ८, यह अविद्यादिक इतरेतर नाम परस्पर प्रत्ययत्वात् नाम हेतु हैं यातें घटीयंत्रवत् इनसैं संघातकी उत्पत्ति संभवे है यह आधे सूत्रसैं पूर्वपक्ष है। क्षणिक पदार्थमैं स्थिरत्वनित्यत्वादि भ्रांति अविद्या माने हैं सो विषयोंमैं रागादिरूप संस्कारोंका हेतु है तिस संस्कारसैं गर्भगत आद्य विज्ञान उपजे है. तिस विज्ञानसैं पृथिवी आदिक चार भूत उपजे हैं, तिनकोही नाम कहे हैं. रूपपदसैं शरीरका ग्रहण है. भूमिआदिक चार एक शरीर एक विज्ञान यह षट् आश्रय होवें जिसका ताका नाम षडायतन है अर्थात् इंद्रियोंका नाम है. नाम रूप इंद्रियोंका जो परस्पर संबंध सो स्पर्श अंगीकार है, तिनसैं सुखादिवेदना उपजे है. तासैं

पुनः अविद्या उपजे है जाविध परस्पर कारण हैं, यह कल्पनाभी असंगत है. दो प्रकारकी कार्योत्पत्ति तुमने मानी हैं एक हेतुअधीन मानी है एक समुदायअधीन मानी है. यथा बीजसैं अंकुर अंकुरसैं पत्र पत्रसैं कांड उपजे हैं यह हेत्वधीन है. भूमिआदिक भूतनके मिलनेसैं बीजसैं अंकुर उपजे है. सो समुदायाधीन है. और आध्यात्मिक उत्पत्तिभी दो प्रकारकी है. तहां अविद्यादिकोंकी उत्पत्ति हेतुअधीन है. और भूमि जल तेज वायु आकाशके समुदायसैं जो कार्योत्पत्ति सो समुदायाधीन है. तहां उभयविध उत्पत्तिमैं चेतनकी अपेक्षा नहीं. तहां प्रथमको अंगीकार करके द्वितीयको दूषित करे हैं. अविद्यादिकोंको परस्पर कारण मानेभी उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् नाम हेतुअधीन उत्पत्तिमैं निमित्त होनेसैं समुदायाधीन कार्योत्पत्ति संभवे नहीं. अपर चेतन कोई माना नहीं यातें संभवे नहीं इति ॥ १९ ॥

क्षणिकवादमैं हेतुअधीनभी उत्पत्ति संभवे नहीं यह कहे हैं:—

उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॥ २० ॥

उत्तरोत्पादे । च । पूर्वनिरोधात् । इति । प० ।

अर्थ—कार्यउत्पत्तिकालमैं विद्यमान जे मृत्तिकादि तेही कारणत्वरूपसैं प्रसिद्ध हैं. नष्ट हुआ कारणकार्यका जनक देखा नहीं और तुह्मारे मतमैं उत्तरोत्पादे नाम कार्योत्पत्तिकालमैं पूर्व जो कारण क्षण तिसका नाश माना है यातें हेतु अधीनभी कार्योत्पात्ति संभवे नहीं. इति ॥ २० ॥

हेतुविना उत्पत्ति माने दोष कहे हैं ।

असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ॥ २१ ॥

असति । प्रतिज्ञोपरोधः । यौगपद्यम् । अन्यथा । इति । प० ।

अर्थ—असति नाम हेतुविना कार्यउत्पत्ति अंगीकार कियेसैं पूर्वज्ञान १, नेत्र २, आलोक ३, विषय ४, यह चार हेतु होवें तौ नीलादिज्ञानरूप कार्य उपजे है जा प्रतिज्ञाका उपरोध नाम बाध होवेगा और अन्यथा नाम कार्यपर्यंत कारणकी स्थिति मानें तौ यौगपद्यम् कार्यकारणकी एककालमैं स्थिति होवेगी. तिसके सिद्ध हुएसैं क्षणिकत्व प्रतिज्ञा भंग होवेगी. इति ॥ २१ ॥

अव०—बुद्धिपूर्वक नाश अबुद्धिपूर्वक नाश आकाश यह त्रय अवस्तु हैं,

निर्हेतुक हैं, तुच्छ हैं, निरुपाख्य हैं. यह वैनाशिक माने हैं तहां पहिले दोनोंको प्रथम खंडन करे हैं.

प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिर-विच्छेदात् ॥ २२ ॥

प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिः । अविच्छेदात् । इति । प० ।

अर्थ—प्रतिसंख्यापदसैं बुद्धिका अंगीकार है. बुद्धिपूर्वक जो नाश सो प्रतिसंख्यानिरोध कहिये है. अबुद्धिपूर्वक जो नाश सो अप्रतिसंख्यानिरोध अंगीकार है. तिस उभय प्रकारके विनाशकी प्रवाहप्रवाहीमैं अप्राप्ति नाम असंभव है. अविच्छेदात् यह तहां हेतु है. तथाहि—उभय प्रकारका नाश प्रवाहप्रवाहीके विच्छेदसैं कहा चाहिये. प्रवाहका विच्छेद तो चर्मप्रवाहीके विच्छेदअधीन है. प्रवाही घटादिक क्षणिक हैं यातें तिनका बुद्धिपूर्वक नाश तो संभवे नहीं, और कारणरूप मृत्तिकादिक प्रतीत होवे हैं यातें अबुद्धिपूर्वकभी समूल नाश संभवे नहीं, यातें उभय प्रकारका निरोध संभवे नहीं. इति ॥ २२ ॥

उभयथा च दोषात् ॥ २३ ॥

उभयथा । च । दोषात् । इति । प० ।

अर्थ—किंच क्षणिकमैं स्थिरत्वभ्रांति तुमने अविद्या मानी है सो सम्यक् ज्ञानसैं नाश होवे है वा स्वतः नाश होवे है? ज्ञानसैं नाश मानें तो निर्हेतुक नाश कथन असंगत होवेगा. स्वतः नाश मानें तौ ज्ञानका उपदेश अनर्थक होवेगा. जाविध उभयथा नाम दोयही प्रकारसैं दोष होनेसैं सुगत (बुद्ध) मत असंगत है. इति ॥ २३ ॥

आकाशे चाविशेषात् ॥ २४ ॥

आकाशे । च अविशेषात् । इति । प० ।

अर्थ—' आत्मन आकाशः सम्भूतः ' इत्यादिक श्रुतिसैं और शब्दगुणत्वसैं आकाशे नाम आकाशमैंभी भूमिआदिकोंके अविशेष नाम तुल्यवस्तुज्ञान होवे है; याते आकाश निरुपाख्य अर्थात् अभावरूप नहीं. इति ॥ २४ ॥

किंचः—

अनुस्मृतेश्च ॥ २५ ॥

अनुस्मृतेः । च । इति । प० ।

अर्थ—अनुभवसैं अनु नाम पीछे उपजे जो ज्ञान सो अनुस्मृति अंगीकार है. तुमने अनुभवकर्ताको क्षणिक माना है. अपरके अनुभवसैं अपरका स्मरण होवे नहीं; यातें 'अनुस्मृतेः' नाम आत्माका स्मरण होनेसैं अनुभवकर्ताको क्षणिक कहना संभवे नहीं. इति ॥ २५ ॥

नासतोऽदृष्टत्वात् ॥ २६ ॥

न । असतः । अदृष्टत्वात् । इति प० ।

अर्थ—तुमने स्वग्रंथमैं साक्षात् अभावसैं भावकी उत्पत्ति मानी है, निरुपाख्य जे नरविषाणादि तिनसैं भावकी उत्पत्ति देखी नहीं यातें असतः नाम अभावसैं कार्योत्पत्ति युक्त नहीं. 'अदृष्टत्वात्' नाम लोकमैं अभावसैं भाव उपजा कहूं देखा नहीं यातैं सुगतमत असंगत है. इति ॥ २६ ॥

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॥ २७ ॥

उदासीनानाम् । अपि । च । एवम् । सिद्धिः । इति । प० ।

अर्थ—एवं नाम अभावसैं भावकी उत्पत्ति अंगीकार कियेसैं तत् तत् कार्यके साधन जे कृष्यादि तिनको त्यागके स्व स्व गेहमैं 'उदासीनानाम्' नाम जे स्थित हैं तिनको स्वस्ववांछित कार्यकी सिद्धि नाम प्राप्ति होनी चाहिये. याते भ्रांतिमूलक वैभाषिक सौत्रांतिकके इस बाह्य अर्थवादसैं समन्वयका विरोध नहीं. इति सिद्धम् ॥ २७ ॥

अव०—आगे विज्ञानवादीका खण्डन करै हैं। यह तिसका मत है। विज्ञानविना अर्थात् बुद्धिविना बाह्य पदार्थ कोई नहीं यह तिसका सिद्धांत उत्तर अधिकरणका विषय है. सो प्रमाणमूल है, वा भ्रांतिमूल है, यह तहां संदेह है. प्रमाणमूल है यह तहां पूर्वपक्ष है. तथाहि—नीलादि विज्ञानस्वरूपसे सर्व पदार्थोंका तुल्यत्व है यातें विज्ञानको नीलादिज्ञानत्वकी सिद्धिके अर्थ बाह्य अर्थवादीकोभी नीलादिआकारत्व अंगीकार किया चाहिये, ताके मानेसैं ज्ञाननिष्ठ जो नीलादि आकारत्व तिससैं सर्व व्यवहारसिद्धि संभव है. बाह्य नीलादिक मानने अनर्थक हैं. सो विज्ञान स्वप्रकाश है, क्षणिक है, साकार है यातें निराकार विज्ञानरूप ब्रह्मसैं उत्पत्तिकथन असंगत है. इति । इसमें यह सूत्रकारका सिद्धांत है:—

नाभाव उपलब्धेः ॥ २८ ॥

न । अभावः । उपलब्धेः । इति । प० ।

अर्थ–यह घट है यह पट है इत्यादि अनुभवसैं सिद्ध जो विज्ञान तासैं भिन्न पदार्थकी उपलब्धि नाम प्रतीति होवे है यातैं विज्ञानसैं भिन्न पदार्थका अभाव कहना संभवे नहीं, बाह्यविषय विना ज्ञानमैं विषयाकारताकथन असंगत है, यातैं बाह्यपदार्थोंके विद्यमान होनेसे ज्ञानको साकारता सिद्ध होवे नहीं, और ज्ञान क्षणिकभी नहीं ॥ २८ ॥

अव०–'ननु–जाग्रतअवस्थामैं उपजे जे ज्ञान ते निरालम्ब हैं अर्थात् निर्विषय हैं ज्ञान होनेसे स्वप्न गंधर्वनगरादिज्ञानवत्' जा अनुमानसैं ज्ञान निर्विषय सिद्ध होवे है, जा शंकासैं कहे हैंः—

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥ २९ ॥

वैधर्म्यात् । च । न । स्वप्नादिवत् । इति । प० ।

अर्थ–स्वप्नज्ञानमैं बाधित विषयत्व है, जाग्रतज्ञानमैं अबाधित विषयत्व है यातैं दोनो ज्ञानोंको 'वैधर्म्यात्' नाम विरुद्धधर्मवान् होनेसैं स्वप्नादिदृष्टांतसैं जाग्रतज्ञानको निर्विषय कहना संभवे नहीं. चकारपदसै दृष्टांतमैं अनुमानविषे साध्याभाव बोधन किया है. स्वप्नमैंभी प्रातिभासिक विषय है. ॥ २९ ॥

अव०–किंच बाह्य पदार्थ नहीं मानें तौ 'घटज्ञान' 'पटज्ञान' इत्यादि ज्ञानमैं विचित्रता नहीं सिद्ध होवेगी; जो पूर्व पूर्व अनादि विचित्र वासनासैं विचित्रता मानें तौ बाह्य पदार्थ कोई माना नहीं, यातें वासना सिद्ध होवे नहीं. यह सूत्रकार कहे हैं.

न भावोऽनुपलब्धेः ॥ ३० ॥

न । भावः । अनुपलब्धेः । इति । प० ।

अर्थ–तुम्हारे मतमैं बाह्य पदार्थकी अनुपलब्धि है अर्थात् बाह्यज्ञान हुआ नहीं यातें वासनाका संभव नहीं. इति ॥ ३० ॥

अव०–किंच संस्काररूप वासनाका तुम्हारे मतमैं आश्रयभी कोई नहीं. जो 'अहम्' जा आलयविज्ञानको आश्रय कहें तौ तिसका निषेध करे हैंः—

क्षणिकत्वात् ॥ ३१ ॥

एक पद है ।

अर्थ—आलयविज्ञान क्षणिक है यातें ताको वासनाका आश्रय कहना संभवे नहीं. आश्रय मानेंगे तौ सो क्षणिक नहीं सिद्ध होवेगा. इति ॥ ३१ ॥

सर्वथाऽनुपपत्तेश्च ॥ ३२ ॥

सर्वथा । अनुपपत्तेः । च । इति । प० ।

अर्थ—'दर्शनम्' इस शब्दके स्थानमें पश्यना यह अपशब्द उच्चारण करे हैं और 'स्थानम्' इस शब्दके स्थानमें तिष्ठना यह अपशब्द उच्चारण करे हैं यातें सर्वथा नाम ग्रंथसें और अर्थसें यह वेदबाह्य मत असंगत है. 'अनुपपत्तेः' नाम असंगत होनेसे मोक्षार्थी पुरुषोंको यह सौगतमत आदर करनेयोग्य नहीं. इति ॥ ३२ ॥

अव०—उक्त तीनों मतोंके अनुसार शून्यमत भी असंगत है. शून्य किसी प्रमाणसे सिद्ध होवे नहीं. सर्व प्रमाणोंकरके बाधित है, यातें ताके खंडनमें सूत्रकारने पृथक् प्रयत्न नहीं किया. इति । पूर्व मुक्तकच्छ बौद्धनके मतको खंडन करके आगे विवसन जैनोंके मतको खंडन करे हैं. यह जैनोंका सिद्धांत है—स्यादस्ति १, स्यान्नास्ति २, स्यादस्ति च नास्ति च ३, स्यादवक्तव्यः ४, स्यादस्ति चावक्तव्यः ५, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः ६, स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यः ७, जाविध अस्तित्व नास्तित्व आदिक विरुद्धधर्मोंको ग्रहण करके सर्व पदार्थोंमें उक्त सप्तभंगनयको जोड़तेहुए विवसन पदार्थमात्रको अनेकरूप कथन करे हैं. ग्रहणादिव्यवहारकी सिद्धिके लिये उक्तविधि नहीं माननेसें यह दोष कहे हैं, वस्तुका एकरूप अंगीकार कियेसें वस्तु है यह कहा चाहिये, वा वस्तु नहीं यह कहा चाहिये, प्राप्यरूपसैंभी वस्तुका सत्व है यातें वस्तुप्राप्तिके अर्थ ग्रहणादि व्यवहार नहीं सिद्ध होवेगा, यातें एकरूपता संभवे नहीं. किंतु घटादिरूपसैंही प्राप्यादि रूपसें नहीं जाविधही माना चाहिये; यातें वस्तुको अनेकरूपता संभवे है. सप्तभंगनयका यह अर्थ है. अस्तित्वादि सप्तकोटिविषे एक वस्तुमें जो विरोधका भंग सो सप्तभंग कहिये. तहां जो नय नाम युक्ति सो सप्तभंगनय कहिये. तिनका यह अक्षरार्थ है किसीप्रकार है १, किसीप्रकार नहीं २, किसीप्रकार है और नहीं ३, किसीप्रकार कहा नहीं जाय ४, किसी प्रकार है और कहा

नहीं जाय ५, किसी प्रकार है नहीं और कहा भी नहीं जाय ६, किसी प्रकार है भी, नहीं भी है और कहा भी नहीं जाय ७, इति। है कहनेकी[1] अभिलाषासैं प्रथम भंग प्रवृत्त होवे है, निषेधकी इच्छासैं द्वितीय २, क्रमसैं उभय इच्छासैं तृतीय ३, एककालमैं उभय इच्छासैं चतुर्थ ४, प्रथम चतुर्थकी क्रमसैं इच्छासैं पंचम ५, द्वितीय चतुर्थकी इच्छासैं षष्ठ ६, प्रथम, द्वितीय, चतुर्थकी इच्छासैं सप्तम भंग प्रवृत्त होवे हैं. इसप्रकार एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्वादि विरुद्ध धर्मोंको ग्रहण करके उक्त नयकी योजना करनी चाहिये. यातें वस्तुमात्रको सत्वअसत्वादि अनेक विरुद्ध धर्मवान् होनेसैं एकरूप ब्रह्ममैं समन्वय असंगत है. यह उक्त पक्षमैं दोष कहे हैं:—

नैकस्मिन्नसम्भवात् ॥ ३३ ॥

न। एकस्मिन्। असम्भवात्। इति। प०।

अर्थ—एकस्मिन् नाम परमार्थरूप एक वस्तुमैं असंभवात् नाम विरुद्धधर्मनका असंभव है यातें एक वस्तुको अनेकरूपता संभवे नहीं। जो है सो है ही, नास्ति नहीं। जो नित्य है सो नित्यही है, अनित्य नहीं. यथा प्रत्यग् आत्मा है. प्रपंचभी तुम्हारे मतमैं सत्स्वरूप है. यातें ताको अनेकरूप कहना संभवे नहीं. और हमारे मतमैं प्रपंच सत्य नहीं और असत्यभी नहीं किंतु अनिर्वचनीय है. यातें सर्व व्यवहारसिद्धि संभवे है. इति ॥ ३३ ॥

विवसन आत्माको देह जितना माने हैं ताका निषेध करें हैं:—

एवं चात्माऽकार्त्स्न्यम् ॥ ३४ ॥

एवम्। च। आत्माऽकार्त्स्न्यम्। इति। प०।

अर्थ—यथा तुम्हारे मतमैं एकविषे विरुद्ध धर्मनका असंभवरूप दोष है, एवं नाम तथाहि आत्माको 'अकार्त्स्न्यम्' नाम परिच्छिन्नत्वरूप अपर दोष है. जीवको देहपरिमाणवान् माना है यातें परिच्छिन्न होनेसैं घटादिवत् आत्मा अनित्य सिद्ध होवेगा, और गजादिशरीरमैं संपूर्ण प्रवेशभी नहीं होवेगा. इति ॥ ३४ ॥

अव०—जो सावयव मानके आत्माको वढ़ने घटनेवाला मानके दोषका निषेध करें तौ सोभी संभवे नहीं, यह कहे हैं:—

---

१ जीव है. २ जीव जडमें नहीं. ३ जीव शरीरकालमैं प्रसिद्ध है, अशरीरकालमें नहीं. ४ जीव है, कहा नहीं जाय.

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ॥ ३५ ॥

न । च । पर्यायात् । अपि । अविरोधः । विकारादिभ्यः । इति । प० ।

अर्थ-पर्यायात् नाम अवयवनके गमनागमनसैं भी आत्मामैं उक्त दोषका अविरोध संभवे नहीं. आत्माको सावयव मानके वढ़ने घटवाला माननेसैं आत्मा विकारी होवैंगा, अनित्य होवेगा, इत्यादिक दोप प्राप्त होवेंगे यातें उक्त दोप दूर होवे नहीं. इति ॥ ३५ ॥

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥ ३६ ॥

अन्त्यावस्थितेः । च । उभयनित्यत्वात् । अविशेषः । इति । प०।

अर्थ-मुक्त आत्माका जो परिमाण सो नित्य है यह जैनसिद्धांत है सो असंगत है. तथाहि-यथा अंत्यपरिमाणमैं परिमाणत्व है यातें आद्य और मध्य परिमाणमैं परिमाणत्व है, यातें आद्य मध्य परिमाणकोभी नित्य होना चाहिये यातें तीनोहीं तुल्य सिद्ध होवेंगे. अक्षरयोजना यह है कि अंत्य नाम अंतके परिमाणकी नित्यरूपसैं 'अवस्थितेः' नाम स्थिति होनेसैं उभय नाम प्रथम मध्यपरिमाणका भी नित्यत्व सिद्ध होवेगा. यातें अविशेष नाम तीनोही तुल्य सिद्ध होवेंगे. उक्तविधिसैं इस मतकोभी असंगत होनेसैं इनसैंभी समन्वयका विरोध नहीं. इति सिद्धम् ॥ ३६ ॥

अव०-ईश्वरवादी जे सांख्य, पतंजलि, शैव, कणभुक् आदिक ते ईश्वरको केवल निमित्तकारण माने हैं, उपादान नहीं माने हैं. आगे तिनके मतका खंडन करे हैं:—

पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥

पत्युः । असामञ्जस्यात् । इति । प० ।

अर्थ-ईश्वरको जगद्रचनामैं प्रवृत्त होनेसैं 'असामञ्जस्यात्' नाम वैषम्य नैर्घृण्यादि दोप प्राप्त होवेंगे यातें 'पत्युः' नाम परमेश्वरको निमित्तमात्र कहना संभवे नहीं ॥ ३७ ॥

सम्बन्धानुपपत्तेश्च ॥ ३८ ॥

सम्बन्धानुपपत्तेः । च । इति । प० ।

अर्थ-प्रेरणायोग्य जे प्रधानादिक तिनसैं ईश्वरका संबंध कहा चाहिये, संबंधविना प्रेरकता संभवे नहीं. ईश्वर निरवयव है ताका प्रधानादिकोंसैं संबंध

संभवे नहीं यातें संबंधके नहीं बननेसें निमित्तमात्र कारण कहना संभवे नहीं. इति ॥ ३८ ॥

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॥ ३९ ॥

अधिष्ठानानुपपत्तेः । च । इति । प० ।

अर्थ–प्रधानादिक नीरूप है यातें तिन विषयक ईश्वरको अधिष्ठान नाम प्रेरणा संभवे नहीं, यातें भी निमित्तमात्रकथन असंगत है. इति ॥ ३९ ॥

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ४० ॥

करणवत् । चेत् । न । भोगादिभ्यः । इति । प० ।

अर्थ–ननु अप्रत्यक्षरूप करण नाम इंद्रियोंका जीव यथा प्रेरक है तथा अप्रत्यक्षरूप प्रधानादिकोंका ईश्वरको प्रेरक मानना संभवे है, यह शंका करें तौ भोगादि दोषनसैं संभवे नहीं. जीव इंद्रियोंको स्वभोगार्थ प्रेरणा करे है तत् दृष्टांतसैं ईश्वरको प्रेरक मानेसैं ईश्वरकोभी भोगादिप्राप्तिरूप दोष होवेगा, इति ॥ ४० ॥

अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥ ४१ ॥

अन्तवत्त्वम् । असर्वज्ञता । वा । इति । प० ।

अर्थ–किंच प्रधान, जीव, ईश्वर, इन तीनोंकी जो संख्या और परिमाण तिन दोनोंको ईश्वर जाने है वा नहीं ? प्रथम पक्ष मानें तौ संख्यापरिमाणवान् होनेसैं तीनोंही घटादिकोंकी नांई विनाशी होवेंगे. दूसरे पक्षमैं ईश्वरको असर्वज्ञता सिद्ध होवेगी, यातें अभिन्न निमित्त उपादान ब्रह्ममैं जो समन्वय ताका उक्त मतनसैं विरोध नहीं. इति ॥ ४१ ॥

अव०–आगे भागवतमतखंडन करै हैं। भागवतमतमैं ईश्वरको अभिन्ननिमित्त उपादान माने हैं परंतु जीवकी उत्पत्ति माने हैं. तिस अंशमैं भागवतमत भ्रांतिमूल है वा प्रमाणमूल है यह तहां संदेह है ? पूर्वपक्षमैं प्रमाणमूल है. तथा हि वासुदेव परमात्मा जगतका उपादान और निमित्तकारण है. तिस वासुदेवसैं संकर्षण नाम जीव उपजे है, तासैं प्रद्युम्न नाम मन उपजे है, मनसैं अनिरुद्ध नाम अहंकार उपजे है, यातें जीवाभिन्न ब्रह्मसैं जगतकी उत्पत्तिका बोधक समन्वय असंगत हैं, इति. तहां यह सिद्धांत है:—

उत्पत्त्यसम्भवात् ॥ ४२ ॥

उत्पत्त्यसम्भवात् । इति । प० ।

अर्थ—वासुदेवपरमात्मासैं जीवकी उत्पत्तिका असंभव है यातें यह मत असाधु है. जो उत्पत्तिही अंगीकार करेंगे तौ जीव अनित्य सिद्ध होवेगा यातें भगवत्प्राप्तिरूप मुक्ति किसकी होवेगी. इति ॥ ४२ ॥

न च कर्तुः करणम् ॥ ४३ ॥

न । च । कर्तुः । करणम् । इति । प० ।

अर्थ—लोकमैं कर्ता जे देवदत्तादिक तिनसैं कुठारादिक करणोंकी उत्पत्ति देखी नहीं यातें जीव कर्तासे मनरूप करण उपजे है, यह कथन युक्त नहीं यातें भी यह मत असंगत है. इति ॥ ४३ ॥

अव०—ननु संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध. यह त्रय जीव नहीं किंतु वासुदेववत् विज्ञानस्वरूप ईश्वर हैं, जा शंकासैं कहे हैंः—

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ॥ ४४ ॥

विज्ञानादिभावे । वा । तदप्रतिषेधः । इति । प० ।

अर्थ—संकर्षणादित्रयको वासुदेववत् विज्ञानादि नाम ऐश्वरादि निर्दोषभाव नाम स्वरूप मानेसैं तत् नाम उत्पत्तिके असंभवरूप दोषका अप्रतिषेध नाम निषेध हौवे नहीं. तथाहि—चारोंको ईश्वर माननेका कुछ प्रयोजन प्रतीत होवे नहीं. एक ईश्वरसैंही कार्यसिद्धि संभवे है. और 'भगवान् एव एको वासुदेवः परमार्थतत्त्वम्' इस तुम्हारे सिद्धांतकीभी हानि होवेगी. जो संकर्षणादित्रयको वासुदेवके तुल्य मानके वासुदेवसैं तिनकी उत्पत्ति मानैं तौ उत्पत्ति असंभव दोष प्राप्त होवेगा. क्योंकि वासुदेवतुल्यनकी वासुदेवसै उत्पत्ति संभवे नहीं. इति ॥ ४४ ॥

विप्रतिषेधाच्च ॥ ४५ ॥

विप्रतिषेधात् । च । इति । प० ।

अर्थ—कहूं ज्ञान, ईश्वरी शक्ति, बल, वीर्य, तेज, यह वासुदेवके गुण कहे हैं, और कहूं उक्त गुणोंका गुणीसैं अभेद कहा है यातें परस्पर विप्रतिषेधात्

नाम निषेध करनेसैं यह भागवतमतभी असंगत है. यातें विवादरहित अद्वितीय ब्रह्ममैं सर्व वेदांतका समन्वय है. इति सिद्धम् ॥ ४५ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

अथ तृतीयपादप्रारम्भः।

इस पादमैं श्रुतिविरोधपरिहार करे हैं:—इस पादके त्रय अधिक पंचाशत् सूत्र हैं. तहां १७ अधिकरण हैं, ३६ गुण हैं। तथाहि—

सूत्रसंख्या।	अधिकरण।	गुण।	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	आकाशोत्पत्तिनिषेध.
२	+	गु०	पूर्वपक्ष.
३	+	गु०	आ०नि०
४	+	गु०	आ०
५	+	गु०	आ०
६	+	गु०	आकाशोत्पत्तिसिद्धि.
७	+	गु०	आ०
८	अ०	+	वायुउ०
९	अ०	+	ब्रह्मउत्पत्तिनिषेध.
१०	अ०	+	तेजउ०
११	अ०	+	जलउ०
१२	अ०	+	पृथिवीउ०
१३	अ०	+	भूतब्रह्मअधीन
१४	अ०	+	भूतलयवि०
१५	अ०	+	इंद्रियउत्पत्तिविचार.
१६	अ०	+	जीवउत्पत्तिनिषेध.
१७	अ०	+	जी०
१८	अ०	+	जीवस्वप्रकाश.
१९	अ०	+	जीवअणुपूर्वपक्ष.
२०	+	गु०	जी०

२१	+	गु०	जी०
२२	+	गु०	जी०
२३	+	गु०	जी०
२४	+	गु०	जी०
२५	+	गु०	जी०
२६	+	गु०	जी०
२७	+	गु०	जी०
२८	+	गु०	जी०
२९	+	गु०	जीवमहान् सिद्धांत.
३०	+	गु०	जीवबुद्धिसंयोगविचार.
३१	+	गु०	जी०
३२	+	गु०	अंतःकरणसिद्धि.
३३	अ०	+	आत्माकर्ता सिद्धि.
३४	+	गु०	आ०
३५	+	गु०	आ०
३६	+	गु०	आ०
३७	+	गु०	आ०
३८	+	गु०	आ०
३९	+	गु०	आ०
४०	अ०	+	कर्तृत्वउपाधिक सिद्धि.
४१	अ०	+	कर्तृईश्वरअधीन.
४२	+	गु०	ईश्वर प्रेरक.
४३	अ०	+	ईश्वरअंश जीव.
४४	+	गु०	ई०
४५	+	गु०	ई०
४६	+	गु०	ईश्वरमैं सुखादिनिषेध.
४७	+	गु०	ई०
४८	+	डु०	देहसंबंधानुज्ञापरिहार.
४९	+	गु०	कर्मसंकरनिषेध.
५०	+	गु०	ईश्वरआभास जीव.

५१	+	गु०	न्यायमतखण्डन.
५२	+	गु०	न्या०
५३	+	गु०	न्या०
	१७	३६	इति

तहां यह प्रथम सूत्र हैः—

न वियदश्रुतेः ॥ १ ॥

न। वियत्। अश्रुतेः। इति। प०।

अर्थ—आकाशकी उत्पत्तिमें संदेह हुए यह पूर्वपक्ष हैः—'तत् तेजोऽसृजत' जा छांदोग्यश्रुतिमैं तेजादिकोंकी उत्पत्ति सुनी है, आकाशकी नहीं और 'आत्मन आकाशः संभूतः' जा तैत्तिरीयश्रुतिमैं आकाशकी उत्पत्ति सुनी है, यातें वाक्यनका परस्पर विरोध है. इति। अध्यायसमाप्तिपर्यंत परस्पर विरोधसैं वाक्यनकी अप्रमाणता पूर्वपक्षका फल है और विरोधके असंभवसैं प्रमाणता सिद्धांतका फल है. एकदेशमतसैं समाधान करे हैंः—'अश्रुतेः' नाम आकाशउत्पत्तिबोधक वाक्य सुना नहीं यातें वियत् नाम आकाश उपजे नहीं. 'आत्मनः' यह श्रुति गौण है यातें आकाशकी उत्पत्ति नहीं होनेसैं वाक्यविरोध नहीं. इति ॥ १ ॥

शंकासूत्र।

अस्ति तु ॥ २ ॥

अस्ति। तु। इति। प०।

अर्थ—तु पद अपरपक्षके ग्रहणार्थ है. तैत्तिरीयमैं आकाशउत्पत्तिबोधक श्रुति अस्ति नाम है, यातैं विरोध दूर होवे नहीं. इति ॥ २ ॥

एकदेशी स्वाभिप्रायको कहे हैंः—

गौण्यसम्भवात् ॥ ३ ॥

गौणी। असम्भवात्। इति। प०।

अर्थ—आकाशकी उत्पत्तिमैं समवायि आदिक कारणोंका 'असम्भवात्' नाम अभाव है और विभु होनेसैं नित्यभी है यातें कारणके असंभवसैं आकाशजन्मबोधक श्रुति मुख्य नहीं, किंतु गौणी है. इति ॥ ३ ॥

शब्दाच्च ॥ ४ ॥

शब्दात् । च । इति । प० ।

अर्थ-'वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्' जा श्रुतिविषे अमृतपदसैं आकाश ग्रहण किया है, यातें 'शब्दात्' नाम अमृत शब्दसैंभी आकाशका जन्म संभवे नहीं. इति ॥ ४ ॥

अव०-ननु एक संभूत शब्दकोही आकाशमैं गौण मानना और तेजादिकोंमैं मुख्य मानना असंगत है, जा शंकासैं कहे हैंः—

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ॥ ५ ॥

स्यात् । च । एकस्य । ब्रह्मशब्दवत् । इति । प० ।

अर्थ-यथा भृगुवल्लीके द्वितीय अनुवाकके आरंभमैं 'अन्नं ब्रह्म इति व्यजानात्' यह कहकर षष्ठ अनुवाकके आरंभमैं 'आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानात्' यह कहा है. इसमैं अन्नके साथ ब्रह्म शब्द गौण है, आनंदके साथ मुख्य है; तथा ब्रह्मशब्दवत् आकाशके साथ संभूत शब्द गौण है, तेजादिकोंके साथ मुख्य है, यातें ब्रह्मशब्दवत् 'एकस्य' नाम एकही संभूत शब्दको गौणता व मुख्यता 'स्यात्' नाम संभवे है. इति ॥ ५ ॥

अव०-सूत्रकार स्वसिद्धांत कहे हैंः—

प्रतिज्ञाऽहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॥ ६ ॥

प्रतिज्ञाऽहानिः । अव्यतिरेकात् । शब्देभ्यः । इति । प० ।

अर्थ-ज्ञेय ब्रह्मसैं सर्व जगत् 'अव्यतिरेकात्' नाम अभिन्न है यातें अभेदज्ञानसैं सर्वके ज्ञानप्रतिज्ञाकी अहानि होवे है अर्थात् प्रतिज्ञा समीचीन होवै है. जो ब्रह्मसैं भिन्न मानके आकाशको नित्य मानेंगे तौ प्रतिज्ञाकी हानि होवेगी यातें प्रतिज्ञासिद्धिअर्थ आकाशका जन्म अवश्य माना चाहिये. किंच 'शब्देभ्यः' नाम कार्यकारण अभेदबोधक शब्दोंसैंभी प्रतिज्ञा सिद्ध होवे है. 'ऐतदात्म्यमिदम् सर्वम्' इत्यादिक शब्द सर्व कार्यकों ब्रह्माभिन्न कहे हैं. आकाशको नित्य माननेसैं उक्त शब्दोंका बाध होवेगा. उत्पत्ति माननेसैं जो विरोध कहा है; ताका यह परिहार है. छांदोग्यमैं उत्पत्तिमात्र सुनी है. अमुक प्रथम उपजा यह सुना नहीं. और तैत्तिरीयमैं 'आत्मन आकाशः

सम्भूतः। आकाशात् वायुर्वायोरग्निः' जाविध तेजकों तृतीय जगा सुना है, यातें आकाश वायुको रचके तेजको रचा जाविध तैत्तिरीय अनुसार छांदोग्यमैं अंगीकार कियेसैं उभय वाक्यनका विरोध नहीं. इति ॥ ६ ॥

अव०—उत्पत्तिकी सामग्री ब्रह्म है यह कहे हैंः—

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥

यावद्विकारम्। तु। विभागः। लोकवत्। इति। प०।

अर्थ—तु शंकानिषेधार्थक है, 'यावत्–विकारम्' नाम जितना कार्यमात्र है सो 'विभागो' नाम भेदवान् है. अविकाररूप ब्रह्ममैं भेद प्रतीत होवे नहीं, लोकमैं घटादिक विकारकोही भेदवान् देखा है. तहां यह अनुमान हैः— 'आकाश, दिशा, काल, मन, परमाणु, यह पराधीनसत्तावान् हैं, स्वसमान सत्ताको विभागवान् होनेसैं घटशरावादिवत्.' आकाशमैं जो अमृत शब्द कहा था सो 'अमृतादो वा' जा अमृत शब्दवत् सापेक्षक है, यातें आकाश ब्रह्मका कार्य है. इति ॥ ७ ॥

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥

एतेन। मातरिश्वा। व्याख्यातः। इति। प०।

अर्थ—एतेन नाम आकाशका जन्म साधनेसैं 'मातरिश्वा' नाम वायुभी आकाशावच्छिन्न ब्रह्मसैं उपजे है यहभी 'व्याख्यातः' नाम कहदिया. वायुकोभी नित्य मानेसैं प्रतिज्ञाहानि होवेगी. इति ॥ ८ ॥

असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॥ ९ ॥

असम्भवः। तु। सतः। अनुपपत्तेः। इति। प०।

अर्थ—ननु 'त्वं जातोऽसि विश्वतोमुखः' जा श्वेताश्वतरकी ब्रह्मजन्मबोधक श्रुतिका ब्रह्मनित्यत्वबोधक श्रुतिसैं विरोध है, यातें विरोधनिषेधार्थ ब्रह्मका जन्म अंगीकार किया चाहिये जा शंकामैं यह सिद्धांत हैः—'सतः' नाम सत्स्वरूप ब्रह्मकी उत्पत्तिका असंभव है. सत् सामान्यसैं सत् सामान्यकी तो उत्पत्ति 'अनुपपत्तेः' नाम बनै नहीं. विशेष जे घटादिक ते सामान्यजन्य हैं यातैं तिनसैंभी सत्सामान्यकी उत्पत्ति संभवे नहीं. और ब्रह्मको विशेष मानके ताका जन्म मानें तौ जो ताका जनक सामान्य है तिसको हम ब्रह्म

माननेंगे और जन्मबोधक जो श्रुति कही है सो औपाधिक जन्म कहे है, यातें श्रुतिविरोधभी नहीं. इति ॥ ९ ॥

तेजोऽतस्तथाह्याह ॥ १० ॥

तेजः । अतः । तथाहि । आह । इति । प० ।

अर्थ–'तत्तेजोऽसृजत' जा छांदोग्यश्रुतिमैं तेजको ब्रह्मजन्य सुना है 'वायोरग्निः' जा तैत्तिरीयमैं तेजको वायुजन्य सुना है. इन वाक्यनके विरोधका संदेह हुएसैं पूर्वपक्षमैं श्रुतिके बलसैं विरोध अंगीकार कियेसे यह सिद्धांत हैः—अतः नाम वायुसैं तेज उपजे है. तथाहि नाम वायुजन्यत्व 'वायोरग्निः' जा श्रुति आह नाम कहे है. यथा वायुरूपको प्राप्त ब्रह्मसैं तेजका जन्म छांदोग्यमैं कहा है तथा 'वायोरग्निः' इस वाक्यमैंभी वायुउपहित ब्रह्मसैं अग्नि उपजे है यह अंगीकार है, यातें उभयवाक्यनका विरोध नहीं. इति ॥ १० ॥

आपः ॥ ११ ॥

आपः । इति । प० ।

अर्थ–'तदपोऽसृजत' जा छांदोग्यवाक्यमैं जलको ब्रह्मजन्य सुना है और 'अग्नेरापः' जा तैत्तिरीय श्रुतिमें अग्निजन्य जल सुना है, यातें उभयवाक्यनके विरोधका संदेह हुएसे पूर्वपक्षमैं विरोध माननेसैं यह उत्तर है. पहला सूत्र इसमैं मिलाकर यह अक्षरार्थ हैः—'अतः' नाम तेजसैं 'आपः' नाम जल उपजे है. तथाहि नाम तेजोजन्यत्व जलको 'अग्नेरापः' यह श्रुति आह नाम कहे है. श्रुति–अविरोध पूर्ववत् जानना चाहिये. इति ॥ ११ ॥

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ॥ १२ ॥

एकपदम् । इति । प० ।

अर्थ–'ता अन्नम् असृजन्त' जा छांदोग्यवाक्यमैं जलसैं अन्नकी उत्पत्ति सुनी है. इसमें अन्नशब्दसैं व्रीह्यादिका ग्रहण है वा पृथिवीका ग्रहण है ? यह संदेह है. और 'पृथिव्या ओषधय ओषधिभ्योऽन्नम्' जा तैत्तिरीयश्रुतिमैं अन्नको पृथिवीजन्य सुना है, यातैं उभयवाक्यनका विरोध है. तहां यह उत्तर हैः— अधिकार १, रूप २, शब्दांतर ३, जा त्रय हेतुसैं अन्नशब्दसैं छांदोग्य श्रुतिमैं

पृथिवीका अंगीकार है, व्रीह्यादिकोंका ग्रहण नहीं । 'तत्तेजोऽसृजत' यह महाभूतउत्पत्तिका अधिकार है. तहांही 'यत् कृष्णं तदन्नस्य' जा श्रुति कृष्णरूप अन्न शब्दका वाच्य जो पृथिवी ताका बोधक है. और 'तद्यदपां शर आसीत् तत्समहन्यत सा पृथिवी अभवत्' जा बृहदारण्यक श्रुतिमैं जलजन्य जो पृथिवी ताका बोधक शर यह शब्दांतर है. श्रुतिअर्थ— 'तत्' नाम तत्र उत्पत्तिकालमैं 'यत् अपाम्' नाम जलोंका शर नाम कीच 'आसीत्' नाम हुआ सो 'समहन्यत' नाम संघातरूप हुआ. 'सा' नाम सो कठिनाकार परिणाम पृथिवी हुई. इति । जा उक्त त्रय कारणोंसैं व्रीह्यादिक अन्नका जल उपादान नहीं, किंतु पृथिवी उपादान है; यातें श्रुतिविरोध नहीं. इति ॥१२॥

अव०—पूर्व महाभूतउत्पत्तिबोधक श्रुतिवचनोंके विरोधका परिहार किया है. आगे महाभूतअभिमानी देवताओंका विचार करे हैं. ते देवता स्वतंत्र भौतिक कार्य उत्पत्तिमैं प्रवृत्त होवे हैं वा ईश्वरअधीन हुए प्रवृत्त होवे हैं ? यह उत्तरअधिकरणमैं संदेह है । 'आकाशात्' इत्यादिक श्रुतिमैं स्वस्वकार्यउत्पत्तिमैं देवतानको स्वतंत्रता सुनी है, यातें ब्रह्मसैं उत्पत्तिबोधक वाक्यनका भूतनसैं उत्पत्तिबोधक वाक्यनसैं विरोध है, यह पूर्वपक्ष है । तहां यह उत्तरसूत्र है:—

तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात्सः ॥ १३ ॥

तदभिध्यानात् । एव । तु । तल्लिङ्गात् । सः । इति । प० ।

अर्थः—'सः' नाम परमात्मा 'तत्' नाम तत्तत्कार्यविषयक जो ज्ञानरूप ध्यान तिसकरके सर्वकार्यको रचे है । 'पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद ॥ यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति एष ते आत्मा अन्तर्याम्यमृतः ।' इत्यादि बृहदारण्यकश्रुतिमैं 'तत्' नाम परमात्माकाही प्रेरणारूप लिंग प्रतीत होवे है । जो पृथिवीके अंतर है, पृथिवी जिसका शरीर है, पृथिवी जिसको जाने नहीं, पृथिवीमैं स्थित हुआ जो पृथिवीको अंतरप्रेरणा करे है, यह तुम्हारा अमृतरूप अंतर्यामी आत्मा है. इति । श्रुतिमैं 'पृथिवीमैं स्थित हुआ' जा कथनसैं पृथिवीअभिमानीदेवतानमैं स्थित हुआ प्रेरणा करे है, यह अंगीकार है, यातें भूताभिमानी देवनको स्वकार्यरचनामैं स्वतंत्रता नहीं. इति ॥ १३ ॥

अव०—आगे लयविचार करे हैं:—

विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ॥ १४ ॥

विपर्ययेण । तु । क्रमः । अतः । उपपद्यते । च । इति । प० ।

अर्थ०—भूतनकी उत्पत्तिका क्रम यथा श्रुतिमैं कहा है तथाहि लयका क्रम है वा तासैं उलटा है? यह इसमैं संदेह है. पूर्वपक्षमैं जन्मअनुसार लय अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत है:—'अतः' नाम उत्पत्तिके क्रमसैं लयका क्रम विपर्ययेण नाम उलटा है. स्वस्वकारणमैं कार्यलय होवे है और उलटाही लयक्रम 'उपपद्यते' नाम बने है. जो उत्पत्तिक्रमसैंही लयक्रम मानेंगे तो कार्यमैं कारणका नाश होवेगा, सो युक्त नहीं ॥ १४ ॥

अव०—भूतनके उत्पत्तिक्रमसैं इंद्रियउत्पत्तिक्रमका विरोध है वा नहीं? यह उत्तर—अधिकरणमैं संदेह है।

अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॥ १५ ॥

अन्तरा । विज्ञानमनसी । क्रमेण । तत्लिङ्गात् । इति । चेत् । न । अविशेषात् । इति । प० ।

अर्थ—ननु 'एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी' जा द्वितीयमुंडकश्रुतिका सूत्रके 'तत्—लिंग' जा पदसैं ग्रहण है. विज्ञानपदसैं बुद्धि और इंद्रियोंका ग्रहण है. ते इंद्रियां, बुद्धि, मन, भूत और आत्माके 'अन्तरा' नाम अन्तर हैं. अर्थात् मध्यमैं क्रमसैं उपजे हैं. 'तत्-लिंगात्' नाम उक्त श्रुतिवाक्य इसीप्रकार कहे है. आत्मासैं इंद्रियां, बुद्धि, मन उपजे हैं. तिनसैं भूत उपजे हैं. इति तात्पर्यम्। और 'आत्मन आकाशः सम्भूतः' जा श्रुतिमैं आत्मासैं भूतनकी उत्पत्ति कही है यातें उभयवाक्यनका विरोध है. इति । उक्त पूर्वपक्षका 'अविशेषात्' जा पदसैं निषेध करे हैं. इंद्रियां, मन, बुद्धि, यह भूतनका कार्य है; यातें भूतनकी उत्पत्तिके क्रमसैं इंद्रियां, बुद्धि, मन, उत्पत्तिका क्रम अविशेष है अर्थात् तुल्य है यातें विरोध नहीं । 'एतस्मात् जायते प्राणः' यह श्रुति सर्वका आत्मासैं जन्ममात्र कहे है, क्रम नहीं कहे है, यातें विरोध नहीं. इति ॥ १५ ॥

अव०—आगे जीवबोधक श्रुतिवचनोंके विरोधका परिहार करे हैं। जीवकी उत्पत्तिबोधक श्रुतिका जीवनित्यत्वबोधक श्रुतिसैं विरोध है वा नहीं? जा संदेह है. पूर्वपक्षमैं विरोध मानेसैं यह सिद्धांतसूत्र है:—

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥ १६ ॥

चराचरव्यपाश्रयः । तु । स्यात् । तत्-व्यपदेशः । भाक्तः । तद्-भावभावित्वात् । इति । प० ।

अर्थ–अमुक मरगया अमुक जन्मा यह लोकमैं जो जन्ममरणका व्यपदेश नाम कथन है, सो चरअचर–व्यपाश्रय है अर्थात् स्थावर जंगम देहविषयक मुख्य है. और जीवमैं 'भाक्त' नाम गौण है. जन्ममरणका जो कथन है सो तद्–भावभावित है अर्थात् देह उत्पत्तिनाशअनुसारी है, यातें जीवमैं गौण है अर्थात् औपाधिक है, यातें जीवनित्यत्वबोधक श्रुतिका जीवजन्मबोधक श्रुतिसैं विरोध नहीं. इति ॥ १६ ॥

अव०–'एतस्मादात्मनः सर्वे एते आत्मानो व्युच्चरन्ति' जा वाक्यमैं परसैं जीवकी उत्पत्ति कही है और 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' जा मुंडक-श्रुतिमैं 'अनेन जीवेनात्मना प्रविश्य' जा छांदोग्यमैं अविकारी ब्रह्मका जीवरूपसैं प्रवेश कहा है, इस विरोधके निषेधार्थ कहे हैं:—

नात्माश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥ १७ ॥

न । आत्मा । अश्रुतेः । नित्यत्वात् । च । ताभ्यः । इति । प० ।

अर्थ०–आत्मा नाम जीव उपजे नहीं. उत्पत्तिका जहां जहां प्रसंग है तहां तहां 'अश्रुतेः' नाम जीवकी उत्पत्ति सुनी नहीं. उलटा 'ताभ्यः' नाम श्रुति. वाक्यनसैं जीव नित्य निश्चित है। 'जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते' जा छांदोग्यवाक्यमैं और 'स वा एष महानज आत्माऽन्नादो वसुदानो विन्दते वसु य एवं वेद' जा बृहदारण्यकश्रुतिमैं जीवको नित्य कहा है. पूर्व जिस श्रुतिमैं जीवकी उत्पत्ति कही है तहां कार्यकारणसंघात उपाधिनिमित्तसैं कही है, यातें उक्तवाक्यनका विरोध नहीं. इति॥१७॥

ज्ञोऽत एव ॥ १८ ॥

ज्ञः । अतः । एव । इति । प० ।

अर्थ–अतः नाम उत्पत्तिरहित होनेसैं जीव 'ज्ञः' नाम स्वयंप्रकाशरूप है. स्वयंप्रकाशरूप ब्रह्मही उपहित हुआ जीवरूप है, यातें जीवभी स्वयंप्रकाशरूप है. 'अत्र अयं पुरुषः स्वयंज्योतिः' यह श्रुतिभी जीवको स्वप्नअवस्थामैं स्वयं-

प्रकाश कहे हैं. यद्यपि 'पश्यन् चक्षुः शृण्वन् श्रोत्रम्' इत्यादिक श्रुतिका उक्त श्रुतिसैं विरोध प्रतीत होवे है; तथापि यह श्रुति गौण स्वयंप्रकाश कहे है; यातें विरोध नहीं. श्रुतिमें चक्षुपद द्रष्टावाचक है ॥ १८ ॥

पूर्वपक्ष १० सूत्रः—

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥ १९ ॥

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् । एकपदम् ।

अर्थ—'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः' जा मुंडकश्रुतिमैं आत्माको अणु कहा है. और उत्क्रांति, गति, आगति, अर्थात् स्वत्वत्याग, गमनागमन यह त्रय उत्तरश्रुतिमैं सुने हैं. विभुमैं त्रयही संभवें नहीं; यातें जीवात्मा अणु है। 'स यदा अस्मात् शरीरात् उत्क्रामति स तदा वागादिभिः प्राणैः सह उत्क्रामति' जामें मरणसमय उत्क्रांति सुनी है। 'ये के च वै अस्मात् लोकात् प्रयन्ति चन्द्रमसम् एव ते सर्वे गच्छन्ति इति। तस्मात् लोकात् पुनः एति अस्मै लोकाय कर्मणा' इसमैं गमनागमन सुने हैं, यातें जीव अणु है. इति ॥ १९ ॥

स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २० ॥

स्वात्मना । च । उत्तरयोः । इति । प० ।

अर्थ—यद्यपि स्वत्वत्यागरूप उत्क्रांति आत्माको विभु मानेसेभी संभवे है, तथापि 'उत्तरयोः' नाम गति, आगति, यह उभय आत्मना नाम जीवके स्वरूपसैं संबद्ध हैं यातैं आत्मा अणु है. इति ॥ २० ॥

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॥ २१ ॥

न । अणुः । अतत् । श्रुतेः । इति । चेत् । न । इतराधिकारात् । इति । प० ।

अर्थ—ननु 'अतत्—श्रुतेः' नाम 'महानज आत्मा अनन्तं ब्रह्म' इत्यादिकोंमैं जीवको विभु सुना है, यातें जीव अणु नहीं. यह शंका सिद्धांती करे तौ संभवे नहीं. जीवसैं इतर जो ब्रह्म ताका 'एष महानज आत्मा' जामैं अधिकार है. अर्थात् सर्व वेदांतमैं प्रधानताकरके ज्ञेयरूपसैं प्रसंगमैं ब्रह्मको महान् सुना है. इति ॥ २१ ॥

---

१ कौषीतकि. २ बृहत्पष्ठगत.

स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॥ २२ ॥

स्वशब्दोन्मानाभ्याम् । च । इति । प० ॥

अर्थ–स्व नाम अणुत्वका वाचक 'एषोऽणुरात्मा' यह शब्द है, यातें जीव अणु है. और 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते' जा श्वेताश्वतर पंचमअध्यायगत श्रुतिका उन्मानपदसैं ग्रहण है. इससैंभी जीव अणु निश्चित है. सर्व स्थूलोंसैं जो निकले वा जो निकाला हो सो उन्मान कहिये है. इति ॥ २२ ॥

अव०–ननु आत्मा जो अणु होवे तो गंगाजलमैं निमग्नको देहव्यापी शीतका ज्ञान नहीं होवेगा, जा शंकासैं कहे हैंः—

अविरोधश्चन्दनवत् ॥ २३ ॥

अविरोधः । चन्दनवत् । इति । प० ।

अर्थ–यथा शरीरके एकदेशमैं स्थित जो चंदनबिंदु सो सर्वशरीरमैं व्यापके सुखको उपजावे है, तथा जीवभी देहव्यापी शीतज्ञानको बनावे है. इति ॥२३॥

अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमात् हृदि हि ॥ २४ ॥

अवस्थितेः । वैशेष्यात् । इति । चेत् । न । अभ्युपगमात् । हृदि । हि । इति । प० ।

अर्थ–चंदनबिंदुकी जो अवस्थिति नाम स्थिति सो 'वैशेष्यात्' नाम एकदेशमैं प्रत्यक्षका विषय है. जीवकी स्थिति प्रत्यक्षसैं निश्चित नहीं यातैं अतुल्यता होनेसैं चंदनदृष्टांत संभव नहीं; यातें व्यापक शीतज्ञानरूप कार्यसैं महत्वकल्पना युक्त है. इति । यह शंकाभी असंगत है. 'कतम आत्मेति योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदि अन्तर्ज्योतिः पुरुषः' जा बृहदारण्यक षष्ठगत श्रुतिमैं अल्पपरिमाणवान् हृदयविषे जीवकी स्थिति कही है, यातें अल्प हृदयमें 'अभ्युपगमात्' नाम अंगीकार करनेसैं जीव अणु है और उक्त शंका असंगत है. इति ॥ २४ ॥

गुणाद्वा लोकवत् ॥ २५ ॥

गुणात् । वा । लोकवत् । इति । प० ।

अर्थ–अथवा आत्माको अणु मानेभी जीवका जो ज्ञान गुण सो व्यापक है यातें व्यापक गुणसैं सर्व शरीरव्यापी कार्य उत्पत्ति संभवे है. यथा लोकमैं दीप अल्प है तोभी प्रभारूप दीपगुणसैं गृहव्यापी प्रकाशरूप कार्य होवे है तथा प्रसंगमैं संभवे है, विरोध नहीं ॥ २५ ॥

अव०–ननु ज्ञानको व्यापक मानेसैं जीवसैं अधिकदेशमैं भी ज्ञानगुण रहेगा और है नहीं. और दीपकी जो प्रभा है सो दीपसंयुक्त अपर द्रव्य है; यातें सो दृष्टांत संभवे नहीं; जा शंकासैं कहे हैंः—

व्यतिरेको गन्धवत् ॥ २६ ॥

व्यतिरेकः । गन्धवत् । इति । प० ।

अर्थ–यथा गन्धगुण गुणीसैं भिन्नदेशवृत्ति है तथा ज्ञानकोभी जीवसैं व्यतिरेक नाम भिन्नदेशमैं मानना संभवे है. इति ॥ २६ ॥

तथा च दर्शयति ॥ २७ ॥

तथा । च । दर्शयति । इति । प० ।

अर्थ–अणु आत्माको ज्ञानगुणसैंही देहव्याप्ति है, इस अर्थमैं सूत्रकार श्रुतिको दिखावे हैंः—'स एष इह प्रविष्ट आलोमभ्यः आनखेभ्यः' यह बृहदारण्यकश्रुति चेतनरूप गुणसैं सर्व देहमैं जीवको व्यापक कहे है इति ॥ २७ ॥

पृथगुपदेशात् ॥ २८ ॥

पृथक् । उपदेशात् । इति । प० ।

अर्थ–'प्रज्ञया शरीरं समारुह्य' जा श्रुतिमैं आत्मा और ज्ञानका कर्ताकरणरूपसैं पृथक् नाम भिन्न भिन्न उपदेश किया है, यातें व्यापक गुणद्वारा जीवकी शरीरमैं व्याप्ति प्रतीत होवे है. उक्त विधिसैं ज्ञानगुणको व्यापक होनेसैं और जीवको अणु होनेसैं महद्बोधक श्रुतिका बाध संभवे है. इति ॥ २८ ॥

अव०—आगे यह सिद्धांत है। अणु जो जीव सो ब्रह्मका कोई अपर स्वरूप है वा कार्य है वा ब्रह्मस्वरूप है? प्रथम पक्ष मानें तौ एकज्ञानसैं सर्वके ज्ञानकी प्रतिज्ञाका बाध होवेगा. कार्यरूपताभी पूर्व खंडन करी है यातें द्वितीय पक्षभी असंगत है. तृतीय पक्ष मानें तौ ब्रह्म महान् है यातें जीवभी महान् अवश्य सिद्ध होवेगा. 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः' जा श्रुतिमें वेदितव्य सुना है यातें इसमैं जीवका ग्रहण नहीं किंतु नेत्रादिकोंका जो अविषय ज्ञेय ब्रह्म ताका ग्रहण है, यातें उक्त श्रुति जीवको अणु नहीं कहे है. और 'वालाग्रशतभागस्य' यह श्रुति जीवके औपाधिकस्वरूपका बोध करे है. और 'स च आनन्त्याय कल्प्यते' इतने वाक्यसैं तिसमैं जीवको अपरिच्छिन्न कहा है. किंच अणु माननेसैं सर्व देहमैं व्यापी ज्ञान नहीं होवेगा. चंदनविंदुका जो दृष्टांत कहा है सो सावयव पदार्थ है यातें ताको अवयवद्वारा देहव्यापित्व संभवे है. आत्मा निरवयव है यातें दृष्टातकी तुल्यता नहीं. और गंधके दृष्टांतसैं जो ज्ञानगुणको व्यापक मानके सर्वदेहव्यापी कार्य माना है, सोभी असंगत है. गंधगुण आश्रयविना गमन करे नहीं. जो आश्रयविना ताका गमन मानें तौ सो गंध गुण नहीं सिद्ध होवेगा. और 'प्रज्ञया शरीरं समारुह्य' जा जो श्रुति कही सो इसमें प्रज्ञापदसैं बुद्धिका ग्रहण है. और जीवनिष्ठ जो अणुत्वकथन है सो उत्तरसूत्रसैं कहे हैं:—

तद्गुणसारत्वात् तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॥ २९ ॥

तद्गुणसारत्वात्। तु। तद्व्यपदेशः। प्राज्ञवत्। इति। प०।

अर्थ—तत् नाम बुद्धिके जे गुण नाम अणुत्व, उत्क्रांति, गमनागमन, सुखदुःखादि धर्म, ते धर्मसार नाम प्रधान होवें जिसमैं सो तत्–गुणसार कहिये. अर्थात् बुद्धिके गुणोंसैं गुणवान् जीवका तत्‌गुणसार इतने पदसैं ग्रहण है यातें जीवनिष्ठ तत् नाम अणुत्वव्यपदेश नाम कथन है. स्वाभाविक नहीं. 'प्राज्ञवत्' यह तहां दृष्टांत है. 'दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः अणीयान्' जा श्रुतिमैं सगुण उपासनाविषे उपाधिके वशसैं प्राज्ञ नाम परमात्माको अणु कहा है तथा जीवको अणु कहा है. इति ॥ २९ ॥

अव०—ननु बुद्धिउपाधिसैं आत्मामैं अणुत्वादि संसार अंगीकार कियेसैं कदाचित् आत्माका बुद्धिसैं वियोग हुए आत्मामैं संसार नहीं रहेगा, जा शंकाका उत्तर कहे हैं:—

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषः तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

यावत्–आत्मभावित्वात् । च । न दोषः । तद्दर्शनात् । इति । प० ।

अर्थ–बुद्धिका जो संयोग सो यावत् नाम जहांपर्यंत 'आत्मभावित्वात्' नाम आत्माको संसारभाव है तहांपर्यंत है, यातें उक्त दोषकी प्राप्ति नहीं तत् नाम बुद्धिसंयोग, देहवियोग हुएभी 'दर्शनात्' नाम श्रुतिमैं देखा है तथाहि—'कतम आत्मेति योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदि अन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समानः सन् उभौ लोकौ अनुसंचरति ध्यायति इव लेलायति इव' इस बृहदारण्यक षष्ठगत श्रुतिमैं आत्माको जहांपर्यंत संसार है तहांपर्यंत भ्रममूलक बुद्धिसंयोगको माना है. इति । अर्थ–जो यह बुद्धिउपाधिक है, प्राणोंसैं व्यतिरिक्त है. कमलाकार जो मांसपिंडरूप हृदय तामैं स्थित होनेसैं बुद्धिही हृदय है तासैंभी भिन्न है, सो बुद्धिके तुल्य हुआ उभय लोकमैं विचरे है. इति ॥ ३० ॥

अव०–ननु सुषुप्तिमैं ब्रह्मकी प्राप्ति और कार्यका नाश माना है यातें बुद्धिसंयोगको जहांपर्यंत संसार है तहांपर्यंत कहिना संभवे नहीं, जा शंकाका उत्तर कहे हैं:—

पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

पुंस्त्वादिवत्त्वस्य । सतः । अभिव्यक्तियोगात् । इति प० ।

अर्थ–यथा बालअवस्थामैं जे पुंस्त्वादि धर्म तिन 'सतः' नाम विद्यमान धर्मनकी यौवन अवस्थामैं अभिव्यक्ति नाम प्रगटताका योग कहिये संयोग होवे है. तथा बुद्धियोगादिक सुषुप्तिमैं सूक्ष्मरूपसैं विद्यमान रहे हैं. तिनकी जाग्रतमैं प्रकटतामात्र होवे है; यातें यावत् आत्मभावित्वका विरोध नहीं. इति ॥ ३१ ॥

अव०–ननु जाकर आत्मामैं संसार है तिस अंतःकरणका साधक कौन प्रमाण है? जा शंकासैं कहे हैं:—

१ चलतेकी नाईं है.

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरानि-यमो वाऽन्यथा ॥ ३२ ॥

नित्योपलब्ध्यनुलपब्धिप्रसङ्गः । अन्यतरनियमः । वा । अन्यथा । इति । प० ।

अर्थ–अंतःकरण अवश्य मानना चाहिये. अन्यथा नाम अंतःकरण अनंगीकार कियेसैं सर्व इंद्रियोंकी स्वस्वविषयसमीपता कालमैं नित्य उपलब्धिप्रसंग होवेगा अर्थात् एककालमैं सर्व विषयोंका ज्ञानहुआ चाहिये. मनविना ज्ञानकी सर्व-सामग्री विद्यमान है. जो सामग्री होतेभी ज्ञानरूप फल नहीं होवेगा तो नित्य अनुपलब्धिप्रसंग होवेगा, अर्थात् एकभी विषयका ज्ञान नहीं होवेगा. अथवा एकविषयका ज्ञान होवे अपरका नहीं जाविध इच्छा हुएसे ज्ञानसामग्रीके मध्यमैं 'अन्यतरस्य' नाम आत्माकी शक्तिका वा इंद्रियोंकी शक्तिका नियम नाम प्रति-बंध कहाचाहिये, सो संभवे नहीं. आत्मा तो निर्धर्मक है, यातें तामैं शक्तिका अभाव है और इंद्रियोंकी शक्तिको प्रतिबंध तो होवे, जो कोई प्रतिबंधक होवे. प्रतिबंधक कोई है नहीं यातें उक्त स्थलमैं इच्छाको ही नियामक कहा चाहिये. सो आत्माका धर्म नहीं किंतु ' कामः संकल्पः ' इत्यादिक श्रुति इच्छाको मनका धर्म कहे है, यातें अन्तःकरणविना इच्छाके नहीं बननेसैं और श्रुतिसैं अंतःकरण अवश्य सिद्ध होवे है. तिस अंतःकरणकरकेही आत्मामैं संसार है, स्वाभाविक नहीं. ॥ ३२ ॥

अव०–आगे आत्माको कर्ता सिद्ध करके पुनः बुद्धिगुणोंसैं गुणवान् सिद्ध करे हैं:—

कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॥ ३३ ॥

कर्ता । शास्त्रार्थवत्त्वात् । इति । प० ।

अर्थ–कर्ता आत्मा है वा बुद्धि है ? यह इसमैं संदेह है. पूर्वपक्षमैं बुद्धिको कर्ता अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत है । आत्माही कर्ता है, बुद्धि कर्ता नहीं. आत्माको कर्ता माननेसैं विधिशास्त्र अर्थवान् नाम सफल होवे है. आत्माको अकर्ता माननेसैं विधिशास्त्र सफल नहीं होवेगा. और बुद्धिको कर्ता मानके आत्माको भोक्ता मानें तौभी विरोध है, यातें आत्माही कर्ता है, बुद्धि नहीं. इति ॥ ३३ ॥

विहारोपदेशात् ॥ ३४ ॥

एकपदम् ।

अर्थ–'स यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्वे जनपदे यथाकामं परिवर्तते एवमेव एष एतत् प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्तते' जा बृहदारण्यक चतुर्थ अध्याय प्रथमब्राह्मणकी श्रुतिमैं कामनाअनुसार विहार कथन किया है, यातें विहारके उपदेशसैंभी जीवही कर्ता है. इति । श्रुतिअर्थ–यथा सो महाराजा जानपदान् नाम भृत्योंको ग्रहण करके स्वइच्छाअनुसार जनपदमैं वर्ते है. तथा विज्ञानमयभी प्राणोंको ग्रहण करके इच्छाअनुसार देहकरके विहरता हुआ वर्ते है. इति ॥ ३४ ॥

उपादानात् ॥ ३५ ॥

उपादानात् । एकप० ।

अर्थ–'स होवाच अजातशत्रुः यत्र एष एतत् सुप्तोऽभूत् यो विज्ञानमयः पुरुषः तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानम् आदाय य एषः अन्तर्हृदये आकाशः तस्मिन् शेते' जा श्रुतिमैं तहांही आत्माको उपादान सुना है, अर्थात् प्राण जे इंद्रियां तिनका स्वीकार करना सुना है यातें आत्माही कर्ता है, बुद्धि नहीं. प्राण नाम इंद्रियोंकी विज्ञान नाम बुद्धिसैं ग्रहणरूप शक्तिको ग्रहण करके स्वापकालमैं जीव हृदय आकाशमैं शयन करे है. यह श्रुतिका अक्षरार्थ है. इति ॥ ३५ ॥

व्यपदेशाच्च प्रक्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ ३६ ॥

व्यपदेशात् । च । प्रक्रियायाम् । न । चेत् । निर्देशविपर्ययः । इति । प० ।

अर्थ–'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुते' जा ब्रह्मानंदवल्लीगत श्रुतिमैं लौकिक वैदिक प्रक्रिया नाम कर्मोंविषे विज्ञानशब्दवाच्य आत्माको कर्ताका व्यपदेश नाम कथन किया है, यातें आत्मा कर्ता है. ननु विज्ञानपद बुद्धिवाचक है, जीववाचक नहीं; जा शंकासैं कहे हैं. न चेत् नाम जो विज्ञानपदको जीववाचक नहीं मानेंगे तो निर्देशविपर्यय होवेगा. अर्थात् बुद्धि-

को विज्ञानपदका अर्थ माननेसैं 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' जा पाठकी जगा निर्देश नाम पाठका विपर्ययः नाम 'विज्ञानेन यज्ञं तनुते' जाविध पाठ चाहिये. इति ॥ ३६ ॥

अव०—ननु आत्मा कर्ता होवे तो जो अपनेको इष्ट है सो किया चाहिये, अनिष्ट नहीं किया चाहिये, जा शंकासैं कहे हैंः—

उपलब्धिवदनियमः ॥ ३७ ॥

उपलब्धिवत् । अनियमः । इति । प० ।

अर्थ—यथा ज्ञानमैं आत्मा स्वतंत्र है, तौभी इष्टअनिष्टरूप उभय ज्ञान ताको होवे है, तथाहि इष्ट अनिष्ट उभय क्रियाको करे है । स्वअतिरिक्त करण अनपेक्षत्वरूप स्वतंत्रता ईश्वरकोभी नहीं तो जीवको कैसे होवेगी, किंतु सर्व-कारक प्रेरकत्वरूप स्वतंत्रता अंगीकार है यातैं अनिष्टसाधन कारकोंमैंभी इष्टसाधनत्वभ्रमसैं अनिष्टकोभी जीव करे है. इति ॥ ३७ ॥

शक्तिविपर्ययात् ॥ ३८ ॥

एकपद है ।

अर्थ—जो बुद्धिको कर्ता मानेंगे तौ शक्ति नाम करणशक्ति 'विपर्ययात्' नाम नहीं रहेगी, करणविना कर्तासैं कार्य होवे नहीं यातें बुद्धिरूप कर्ताका अपर करण कल्पना करना पड़ेगा, यातें करणभिन्न कर्ता कल्पना कियेसैं नाम-मात्रमैं विवाद प्रतीत होवे है. वस्तुमैं विवाद नहीं. ॥ ३८ ॥

समाध्यभावाच्च ॥ ३९ ॥

समाध्यभावात् । च । इति । प० ।

अर्थ—आत्माकारवृत्ति विद्यमानभी जा अवस्थामैं असत्की नांई होवे सो समाधि कहिये हैं. तिस समाधिका जो आत्माको कर्ता नहीं मानेंगे तो समाधिका अभाव सिद्ध होवेगा, यातें आत्माको कर्ता माने विना समाधिको नहीं बननेसैं आत्माको कर्ता अवश्य मानना चाहिये ॥ ३९ ॥

अव०—सो कर्तृत्व स्वाभाविक नहीं किंतु औपाधिक है, यह सूत्र-कार कहे हैंः—

यथा च तक्षोभयथा ॥ ४० ॥

यथा । च । तक्षा । उभयथा । इति प० ।

अर्थ—सांख्यमतमैं बुद्धिको कर्ता माना है ताको खंडन करके पूर्व आत्माको कर्ता सिद्ध किया है सो कर्तृत्व स्वाभाविक है वा औपाधिक है ? जा संदेहसैं न्यायमतमैं वास्तव अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत है । बृहदारण्यकके षष्ठके द्वितीय ब्राह्मणमें यह वाक्य है—'अयं पुरुषः प्राज्ञेन आत्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरं तद्वा अस्य एतत् आप्तकामम् आत्मकामम् अकामं रूपं शोकान्तरम्' यह कहकर आगे यह कहा है—'एषाऽस्य परमा गतिः एषाऽस्य परमा सम्पत् एषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परमानन्दः । एतस्य एव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति' इति। श्रुतिअर्थ—यह जीव प्राज्ञेन नाम परम आत्मासैं अभिन्न हुआ बाह्य अंतर विषयको नहीं जाने है. तत् एतत् नाम प्रसंगमैं प्राप्त जो ब्रह्म तत् अस्य नाम जीवका आत्मकाम है अर्थात् सर्वविषे स्वरूपसैं कामना करने योग्य है. आप्तकाम यह तहां हेतु है. 'अकाम' यह आप्तकाममैं हेतु है. अपर कामना नहीं होवे जिसको सो अकाम कहिये है. सर्व शोकसंबंधरहित होनेसैंभी आप्तकाम कहिये है, यह कहे हैं. 'शोकान्तरम्' इति । शोकसैं अंतर नाम भिन्न है. यह उक्त जो स्वरूप है, सो इसकी परमगति है. यही परम संपत् है. यही परमलोक है. यही परमानंद है. इस आनंदके एक अंशमात्रसैं सर्वभूत आनंदवान् हैं. इति । इस श्रुतिउक्त अर्थको भगवान् सूत्रकार कहे हैं—यथा तक्षा नाम खाती उभयथा नाम वास्यादि करण ग्रहण कियेसैं कर्ता होकर दुःखी होवे है, तिनको त्यागके अकर्ता होकर सुखी होवे है, तथा आत्माभी बुद्धिआदिक करणोंके संबंधसैं कर्ता संसारी होवे है, तिनको त्यागके अकर्ता परमानंद होवे है. चकारपदसैं स्वभाविक कर्तृत्वका निषेध किया है; यातें आत्मा औपाधिक कर्ता है. इति ॥ ४० ॥

परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ ४१ ॥

परात् । तु । तत् । श्रुतेः । इति प० ।

अर्थ—जो औपाधिक जीवमैं कर्तृत्व कहा है सो ईश्वराधीन है वा नहीं ?

जा इसमैं संदेह है. जीवको करणोंकी बाहुल्यतासैं कर्तृत्व संभवे है, ईश्वराधीन नहीं, यह पूर्वपक्ष है. तहां यह उत्तर है–'परात्' नाम परमेश्वरसैंही जीवको कर्तृत्वादि संसार है. और मोक्षभी परमेश्वराधीन है. तत् नाम ईश्वराधीनता श्रुतिमैं सुनी है तथाहि 'एष हि एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यः उन्निनीषते एष उ एव असाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते' जा कौषीतकिश्रुतिमैं ईश्वराधीनता कर्तृत्वको स्पष्टही प्रतीत होवे है. इति ॥ ४१ ॥

अव०–ननु जीवके कर्तृत्वको ईश्वराधीन मानेसैं ईश्वरको जीवसैं धर्मही कराना चाहिये अधर्म नहीं, अन्यथा ईश्वरमैं विषमता निर्दयता दोष होवेंगे; जा शंकासैं कहे हैंः—

कृतप्रयत्नापेक्षास्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४२ ॥

कृतप्रयत्नापेक्षाः । तु । विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः । इति । प० ।

अर्थ–तु शंकानिषेधार्थक है. जीवकृत नाम किये जो प्रयत्न धर्माधर्मरूप तिनकी अपेक्षासैंही इस जन्ममैं ईश्वर जीवसैं कर्म करावे है, तिन कर्मोंके अनुसारही सुखादि फल देवे है, यातें ईश्वरमैं विषमतादिदोषकथन असंगत है. ईश्वरको पूर्वकर्मद्वारा प्रेरक मानेसैं विहित, प्रतिषिद्ध, अवैयर्थ्य नाम अनर्थक नहीं होवे हैं. अन्यथा विधिनिषेधशास्त्र अनर्थक होवे हैं. धर्मकर्ता दुःखको, अधर्मकर्ता सुखको, संपादन करेगा यह आदिपदसैं ग्रहण है. इति ॥ ४२ ॥

अव०–पूर्व स्वयंप्रकाश आत्माको अकर्ता कथन किया है, आगे तिसका ब्रह्मसैं अभेद सिद्ध करे हैं. भेदाभेदबोधक श्रुतिके विरोधका संदेह हुएसैं पूर्वपक्षमैं विरोध अंगीकार है. पूर्व जो ईश्वरजीवका उपकारकउपकार्यरूप संबंध कहा है सो भेदविना संभवे नहीं. और अभेदविना 'तत्त्वमसि' आदिक वाक्य असंगत होवेंगे, यातें विरोधप्रसिद्ध है. इति। तहां यह सिद्धांतसूत्र हैः—

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॥ ४३ ॥

अंशः । नानाव्यपदेशात् । अन्यथा । च । अपि । दाशकितवादित्वम् । अधीयते । एके । इति प० ।

अर्थ–अंशः नाम जीव ईश्वरका अंश है. अर्थात् अंशइव अंश है. स्वाभाविक अंश नहीं. स्वाभाविक अंश मानें तौ ' निष्कलम् ' इत्यादि ईश्वरनिरंशबोधक श्रुतिसैं विरोध होवेगा, यातें ईश्वरका कल्पित अंश जीव है और भेदाभेदश्रुतिसैं भी जीव ईश्वरका अंश अंशीभाव है । ' य आत्मनि तिष्ठन् आत्मानमन्तरो यमयति ' इत्यादि श्रुतिमैं जीव ईश्वरका ' नानाव्यपदेश ' नाम भेद कथन किया है । और 'अन्यथा चापि' नाम अनानाव्यपदेशभी श्रुतिमैं किया है. तथाहि—' ब्रह्म दासा ब्रह्म दाशा ब्रह्मैव इमे कितवाः' इति । यातें अनाना नाम अभेदकथनसैंभी अंशांशीभाव है. श्रुतिमैं दासपद भृत्यवाची है, दाशपद कैवर्तवाची है. कितवपद द्यूतकृत् भ्रष्टवाची है. इति । प्रत्यक्षसिद्ध जो भेद ताका अनुवाद करके श्रुतिका अभेदमैं तात्पर्य है, यातें कल्पित भेदवान् अंश जीव है. इति ॥ ४३ ॥

मन्त्रवर्णाच्च ॥ ४४ ॥

मन्त्रवर्णात् । च । इति प० ।

अर्थ–'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपात् अस्य अमृतं दिवि ' जा छांदोग्यश्रुतिसैंभी जीव ईश्वरका अंश है. उक्त मंत्रके वर्णोंसैं भी जीव अंश है. यह सूत्राक्षरार्थ है । भूत नाम सर्व जीव इस परमात्माके पाद नाम एक अंश है. त्रय पाद अमृतरूप दिवि नाम स्वरूपमैं हैं, यह श्रुतिअर्थ है. इति ॥ ४४ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ ४५ ॥

अपि । च । स्मर्यते । इति प० ।

अर्थ–'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' जा गीतावाक्यमैं भगवाननेभी जीवको ईश्वरअंश स्मरण किया है. इति ॥ ४५ ॥

अव०–ननु यथा पादरूप अंशका दुःख अंशी देहमैं भान होवे है तथा जीवको ईश्वर अंश मानेसैं जीवके दुःखसैं ईश्वरको दुःखी हुआ चाहिये जा शंकासैं कहे हैंः—

प्रकाशादिवन्नैवं परः ॥ ४६ ॥

प्रकाशादिवत्। न। एवम्। परः। इति प०।

अर्थ–यथा सूर्यका प्रकाश काष्ठादि उपाधिकरके काष्ठादि आकारको प्राप्त हुआभी वास्तवसैं काष्ठवक्रताकार होवे नहीं तथा जीवको दुःख हुएभी एवम् नाम जीववत् पर नाम परमात्मा दुःखी नहीं होता. जीव प्रतिबिंबरूप है, ईश्वर बिंबरूप है. प्रतिबिंबके धर्म बिंबमैं जाते नहीं, यातैं ईश्वर दुःखी नहीं होता. इति ॥ ४६ ॥

स्मरन्ति च ॥ ४७ ॥

स्मरन्ति। च। इति प०।

अर्थ–'तत्र यः परमात्माऽसौ न नित्यो निर्गुणः स्मृतः। न लिप्यते फलैश्चाऽपि पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धैः स युज्यते' इत्यादिक स्मृतिमैं व्यासादिकभी जीवदुःखसैं ईश्वरको अदुःखी स्मरण करे हैं. इति ॥ ४७ ॥

अव०–ननु 'एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमन्तो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः अतोऽन्यदार्तम्' जा बृहदारण्यक सप्तमब्राह्मणमैं भेदमात्रका निषेध किया है. श्रुतिअर्थ पूर्व कर दिया है.

और 'यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। मनसैवेदवाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन' जा कठचतुर्थवल्लीमैं भेदमात्रका निषेध किया है. कठश्रुतिअर्थ–जो कार्यकारणसंघातयुक्त है सोई तत्संघातरहित है, जो संघातरहित है सोई संघातवान् है; तिस अभिन्न वस्तुमैं जो भिन्नत्व देखे है सो मृत्युसैं मृत्युको प्राप्त होवे है. इति। उक्तविध अभेद मानेसैं मित्र सेवितव्य है, शत्रु परिहर्तव्य है,

इत्यादिक अनुज्ञा परिहार असंगत होवेंगे जा शंकाका उत्तर भगवान् सूत्रकार कहे हैं:—

अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बधाज्ज्योतिरादिवत् ॥ ४८ ॥

अनुज्ञापरिहारौ । देहसंबन्धात् । ज्योतिरादिवत् । इति प० ।

अर्थ—उक्त अनुज्ञा और परिहार आत्माको एक मानेभी 'मनुष्योऽहम्' जाविध देहसम्बध नाम देहाभिमानसैं संभवे हैं तत्तत्देहविशिष्टरूपसैं आत्माका भेद है यातें ग्राह्यत्याज्यका भेद संभवे है; यथा ज्योतिः नाम अग्नि एक है तौभी श्मशानसम्बन्धी अग्नि त्याज्य है अपर ग्राह्य है तथा लौकिक वैदिक अनुज्ञा परिहार संभवे हैं. इति ॥ ४८ ॥

अव०—तथापि सर्वशरीरमें चेतन एकरूप है यातें देवदत्तशरीरावच्छेदसैं कर्म कियेसैं यज्ञदत्तशरीरावच्छेदसैं उपजे चाहिये ? जा शंकाका उत्तर कहे हैं:—

असन्ततेश्चाव्यतिकरः ॥ ४९ ॥

असन्ततेः । च । अव्यतिकरः । इति प० ।

अर्थ—परिच्छिन्न अंतःकरण उपाधिवान् जो परिच्छिन्न देवदत्तका आत्मा ताका यज्ञदत्तशरीरसैं 'असन्ततेः' नाम संबंध होवे नहीं यातें धर्माधर्मका व्यतिकर नाम संकर होवे नहीं, यातें देवदत्तको यज्ञदत्तशरीरावच्छेदसैं धर्मादिप्राप्ति संभवे नहीं. ॥ ४९ ॥

आभास एव च ॥ ५० ॥

आभासः । एव । च । इति प० ।

अर्थ—यथा अनेक घटजलोंमैं प्रतिबिंबित जे सूर्याभास तिनमैं किसी एक सूर्याभासके कंपमान हुए अपर सूर्याभास कंपमान होवें नहीं तथा ईश्वरका आभासरूप यह जीव है, यातें धर्मादिसंबंधी एक जीवमैं अपर जीवके धर्मादिकोंका संबंध होवे नहीं. किंच जिनके मतमैं अनेक विभु आत्मा माने हैं तिनके मतमैं धर्मादि संकरकी प्राप्ति है, तथाहि—सांख्यमतमें भोगसाधनरूप प्रधानका सर्व आत्मासैं संबंध है यातें एक आत्माका सुखादिकोंसैं संबंधहुए सर्व आत्मासैं सुखादिकोंका संबंध होवेगा; तथा न्यायमतमैंभी देवदत्तके आत्माका जो सुखादिहेतु मनःसंयोग सो सर्व आत्मामैं तुल्य है यातें फलका नियम नहीं रहेगा. इति ॥ ५० ॥

अव०—ननु अदृष्टके नियमसैं फलका नियम संभवे है, जा शंकासैं कहे हैंः—

अदृष्टानियमात्॥ ५१॥

एक पद है।

अर्थ—सांख्यमतमैं अदृष्ट प्रधानमें रहै है, सो प्रधान सर्वमैं साधारण है यातें अदृष्टके अनियमसैं फलकाभी नियम नहीं रहेगा. और न्यायमतमैं अदृष्टका हेतु मन आत्माका संयोग है सोभी सर्व आत्मामैं तुल्य है; यह इसका अदृष्ट है इसका नहीं, जाविध जो अदृष्टका नियम है तिसका अभाव है यातें फलकाभी नियम नहीं रहेगा. इति॥ ५१॥

अव०—ननु 'इदं प्रासवान् इदं परिहरिष्यामि इदं करिष्ये इदं न करिष्ये' इसप्रकारके जे अभिसंध्यादि ते भिन्न भिन्न हैं ते स्वसाध्य अदृष्ट नियमके हेतु होवेंगे, यातें व्यवस्था संभवे है, जा शंकाका उत्तर कहे हैंः—

अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम्॥ ५२॥

अभिसन्ध्यादिषु। अपि। च। एवम्। इति। प०।

अर्थ—अभिसंधिपद अभिप्रायवाची है. अर्थात् ज्ञानका अंगीकार है. आदिपदसैं इच्छादिका ग्रहण है. तोभी साधारण मनःसंयोगकरके साध्य हैं, यातें तांमैंभी एवं नाम अदृष्टवत् अनियम है. इति॥ ५२॥

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात्॥ ५३॥

प्रदेशात्। इति। चेत्। न। अन्तर्भावात्। इति। प०।

अर्थ—ननु आत्मा विभु है, यातें स्वस्वशरीरावच्छिन्न आत्मा प्रदेशमैं अभिसंधि आदिकोंका हेतु मनका संयोग होवे है, यातें अभिसंध्यादि नियम संभवे है जा कल्पनाभी असंगत है. सर्व आत्मा सर्व शरीरके अंतर हैं यातें इस आत्माका यह शरीर है इस नियममैं कोई हेतु मिले नहीं यातें इस आत्माका इस शरीरमैं प्रदेश है, यह कल्पना संभवे नहीं, यातें वेदांतपक्षही सर्वदोषरहित है. इति सिद्धम्॥ ५३॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः॥ शुभमस्तु॥

॥ श्रीरामाय नमो नमः॥

अथ चतुर्थपादप्रारम्भः ।

पूर्व महाभूतउत्पत्तिवोधक वाक्यनके विरोधका परिहार किया है. इस पादमैं लिंगशरीरवोधक वाक्यनके विरोधका परिहार करे हैं. इस पादके दो अधिक वीस सूत्र हैं. तहां ९ अधिकरणरूप हैं. १३ गुणरूप हैं.

तथाहि:—

सूत्रसंख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	इंद्रियउत्पत्तिविचार
२	+	गु०	इं०
३	+	गु०	इं०
४	+	गु०	इं० पूर्वपक्षविरोध
५	अ०	+	विरोधनिषेध
६	+	गु०	सप्तनिषेध
७	अ०	+	इंद्रियसूक्ष्म
८	अ०	+	प्राणउत्पत्ति
९	अ०	+	प्राणवायुक्रियानिषेध.
१०	+	गु०	प्राणजीवकरण
११	+	गु०	प्रा०
१२	+	गु०	प्राणवृत्तिसिद्धि
१३	अ०	+	प्राणअणु
१४	अ०	+	इंद्रियचेष्टा देवताअधीन
१५	+	गु०	जीवभोक्ता
१६	+	गु०	जी०
१७	अ०	+	प्राणइंद्रियभेदसिद्धि
१८	+	गु०	प्रा०
१९	+	गु०	प्रा०
२०	अ०	+	परसैं उत्पत्ति
२१	+	गु०	भूतकार्यविचार
२२	+	गु०	भू०
	९	१३	

इति ॥

इस पादमैं वाक्यनका परस्पर विरोध मानके अप्रमाणतासैं पूर्वपक्षमैं समन्वयकी असिद्धि फल है. और सिद्धांतमैं अविरोधसैं प्रमाणताके संभवसैं समन्वयकी सिद्धि फल है। 'आत्मन आकाशः सम्भूतः' जा उत्पत्तिप्रकरणमैं इंद्रियोंकी उत्पत्ति सुनी नहीं. और 'ऋषयो वाव एते अग्रे सदासीत् के ते ऋषय इति प्राणा वाव ऋषयः' जा श्रुतिमैं इंद्रियोंको सत्य सुना है। और 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी' जा मुंडकश्रुतिमैं उत्पत्ति सुनी है यातें उक्त वचनोंका विरोध है, जा पूर्वपक्षमैं अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांत सूत्र है:—

तथा प्राणः ॥ १ ॥

तथा। प्राणः। इति प०।

अर्थ–यथा आकाशादिक उपजे हैं तथा 'एतस्मात् जायते प्राणः' जा श्रुतिसैं प्राण नाम इंद्रियां उपजे हैं. इति ॥ १ ॥

अव०–ननु उत्पत्तिबोधक श्रुति उक्त विरोधसैं गौण है, जा शंकासैं कहे हैं:—

गौण्यसम्भवात् ॥ २ ॥

गौणी। असम्भवात्। इति प०।

अर्थ–उत्पत्तिश्रुतिको गौणी कहिना असंभव है, यातें शंका असंगत है. इंद्रियोंको नित्य अंगीकार किये 'येन अश्रुतं श्रुतं०' जा प्रतिज्ञासैं विरोध होवेगा. और जो श्रुति इंद्रियोंको सत्य कहे है सो अवांतरप्रलयमैं हिरण्यगर्भकी इंद्रियोंको सत्य कहे है. इति ॥ २ ॥

किंच।

तत्प्राक्श्रुतेश्च ॥ ३ ॥

तत्। प्राक्–श्रुतेः। च। इति प०।

अर्थ–'एतस्मात् जायते प्राणः' जा वाक्यमैं तत् नाम जायते यह जो पद है सो आकाशादिकोंसैं प्राक् नाम पूर्व जे इंद्रियां तिनमैं श्रुतेः नाम सुना है, यातें इंद्रियोंका मुख्य जन्म है ॥ ३ ॥

अव०–उत्पत्तिमैं अपर श्रुतिप्रमाण कहे हैं:—

तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॥ ४ ॥

तत्पूर्वकत्वात्। वाचः। इति प०।

अर्थ—तेज, जल, भूमि जा त्रयका तत्पदसैं ग्रहण है, ताके अंगीकार किये यह अर्थ सिद्ध हुआ। 'अन्नमयं हि सोम्य मनः आपोमयः प्राणः तेजोमयी वाक्' जा छांदोग्यश्रुतिमैं वाचः नाम प्राण—मनसहित वाक्को तत्पूर्वकत्वात् नाम तेज, जल, भूमि, पूर्वक सुना है. मनके पूर्व भूमि है. प्राणके पूर्व जल है, वाक्के पूर्व तेज है अर्थात् मन, प्राण, वाक्, भूमि, जल तेजसैं उपजे हैं, यातैं उत्पत्तिबोधक श्रुतिको विद्यमान होनेसैं और सत्यबोधकको हिरण्यगर्भ इंद्रियबोधक होनेसैं उक्त वाक्यनका विरोध नहीं. इति ॥४॥

पूर्वपक्षसूत्र ।

सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ॥ ५ ॥

सप्तगतेः । विशेषितत्वात् । च ।

इति प० ।

अर्थ—'सप्त प्राणाः प्रभवन्ति' जा द्वितीय मुंडकश्रुतिमैं सप्त इंद्रियां कही हैं. प्राणपदका अर्थ इंद्रिय है. और 'हैनम् आर्तभागः पप्रच्छ कति ग्रहाः कति अतिग्रहाः इति । अष्टौ ग्रहा अष्टौ अतिग्रहा इति । ये ते अष्टौ ग्रहा अष्टौ अतिग्रहाः कतमे ते इति प्राणो वै ग्रहः सोऽपानेन अतिग्रहेण गृहीतोऽपानेन हि गन्धं जिघ्रति। वाग् वै ग्रहः स नाम्ना अतिग्रहेण गृहीतो वाचा हि नामानि अभिवदति' जा बृहदारण्यकके पंचमअध्याय द्वितीय ब्राह्मणमैं आठ इंद्रियां कही हैं। प्राण पदसैं वायुसहित प्राणका ग्रहण है, अपानपदसैं गन्धका ग्रहण है, अपानकरके उपहृत गंधको सर्वलोक ग्रहण करे है, इति । और 'सप्त शीर्षण्यः प्राणा द्वौ अवांचौ' जा श्रुतिमैं नव प्राण कहे हैं। सप्त शिरमैं हैं, दो नीचे हैं, इति । 'नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमः' जामैं दश कहे हैं। 'दश वै पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः' जा श्रुतिमैं एकादश कहे हैं. आत्मापदसैं मनका ग्रहण है. कहूं द्वादश, कहूं त्रयोदशभी सुने हैं. इन वाक्यनका परस्पर विरोध प्राप्त हुएसैं एकदेशीके मतमैं यह अर्थ है। श्रुतिमैं इंद्रियनिष्ठ सप्तत्व 'गतेः' नाम सप्त संख्या निश्चित है, यातैं इंद्रियां सात हैं और 'सप्त वै शीर्षण्यः प्राणाः' जा श्रुतिमैं इंद्रियोंको शीर्षण्य जा विशेषण करके विशेषित्वात् नाम विशेषण करके युक्त किया है, यातैंभी इंद्रियां सप्त हैं. और अष्टादि जो संख्या कही है, सो सप्तोंकी वृत्तिके भेदसैं संभवे है, यातैं श्रुतिविरोध नहीं. इति ॥ ५ ॥

सिद्धान्तसूत्र :।

हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ॥ ६ ॥

हस्तादयः । तु । स्थिते । अतः । न । एवम् । इति प० ।

अर्थ—तु सप्तसंख्यानिषेधार्थ है। उक्त बृहत् श्रुतिके आगे यह श्रुति है। जिह्वा चक्षु श्रोत्र मनको ग्रहण कहकर 'हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणा अतिग्रहेण गृहीतो हस्ताभ्यां हि कर्म करोति' यह कहा है. इसमैं हस्तादिक भिन्न इंद्रियां सुनी हैं. आदिपदसैं त्वचाका ग्रहण है, यातें सप्तसंख्यासैं 'स्थिते' नाम अधिक स्थिति है, 'अतः' नाम सप्तसंख्यासैं अधिक संख्या स्थित होनेसैं 'नैवम्' नाम सप्त इंद्रियां माननी योग्य नहीं किंतु एकादश हैं. इति। सप्तसंख्याबोधक श्रुतिने स्थानभेदमात्रसैं चारोंको सप्त कहा है. नवबोधक वाक्यका छिद्रोंमैं तात्पर्य है, यातें वाक्यविरोध नहीं. इति ॥ ६ ॥

अर्थ—सांख्यमतमैं इंद्रियोंको व्यापक माना है, तिनका निषेध करे हैं:—

अणवश्च ॥ ७ ॥

अणवः । च । इति प० ।

अर्थ—यह इंद्रियां अणु हैं अर्थात् इंद्रियोंसैं इंद्रियोंका ग्रहण होवे नहीं, यातें सूक्ष्म हैं. जो इंद्रियोंको विभु मानैं तो काशीगत विश्वनाथका सेतुवासी जनोंकोभी दर्शन हुआ चाहिये, इत्यादिक अनेक दोष ता पक्षमैं हैं, यातें परिच्छिन्न सूक्ष्म इंद्रियां हैं. इति ॥ ७ ॥

अव०—प्राणोंकी उत्पत्ति होवे है, वा नहीं ? जा संदेहसैं कहे हैं:—

श्रेष्ठश्च ॥ ८ ॥

श्रेष्ठः । च । इति प० ।

अर्थ—'एतस्मात् जायते प्राणः' जा श्रुतिमैं प्राणकी उत्पत्ति सुनी है, यातें श्रेष्ठ नाम प्राण ब्रह्मका कार्य है. इति ॥ ८ ॥

अव०—प्राणोंका स्वरूप कहे हैं:—

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ९ ॥

न । वायुक्रिये । पृथक् । उपदेशात् । इति प० ।

अर्थ—'यः प्राणः सः वायुः' जा वाक्यमैं महान् वायुको प्राणरूप कहा

है यातें महान् वायुही प्राण हैं, जा पूर्वपक्षसैं कहे हैं. प्राण वायुरूप नहीं और क्रिया नाम इंद्रियोंका व्यापाररूप जो क्रिया तत्स्वरूपभी प्राण नहीं। 'एतस्मात् जायते प्राणः' इत्यादि श्रुतिमैं वायु और इंद्रियोंसैं पृथक् नाम प्राणोंको भिन्न उपदेश किया है, यातें प्राण वायु और क्रियारूप नहीं। 'यः प्राणः सः वायुः' जा श्रुतिमैं कार्यकारणका वास्तव अभेद कहा है, और 'जायते प्राणः' जामैं कल्पित भेद कहा है, यातें उभयश्रुतिविरोध नहीं. इति ॥ ९ ॥

अव०-देहमैं यथा जीव स्वतंत्र है तथा प्राणभी स्वतंत्र करण है, यातें उभयस्वतंत्रतासैं शरीरउन्मथनप्रसंग होवेगा, जा शंकासैं कहे हैंः—

चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॥ १० ॥

चक्षुरादिवत् । तु । तत्-सह-शिष्ट्यादिभ्यः । इति प० ।

अर्थ-तु प्राणोंकी स्वतंत्रताका निषेध करे है । चक्षु आदिकोंके साथ जो प्राणोंका संवाद तामैं तत्सह नाम इंद्रियोंके साथ प्राणोंका शिष्टि (शासना) अर्थात् उपदेश किया है, यातें चक्षुरादिवत् नाम यथा चक्षु आदिक अस्वतंत्र हैं तथा प्राणभी अस्वतंत्र हैं. आदिपदसैं अचेतनत्वादिका अंगीकार है. इति ॥ १० ॥

अव०-यथा नेत्रादिकोंके रूपादिक विषय हैं, तथा प्राणोंका साधारण विषय नहीं यातें नेत्रादिवत् करणत्वयुक्ति नहीं, जा शंकासैं कहे हैंः—

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि दर्शयति ॥ ११ ॥

अकरणत्वात् । च । न । दोषः । तथा । हि । दर्शयति । इति । प० ।

अर्थ-प्राण अकरणत्वात् नाम करण नहीं यातें प्राणविषयका अभाव दोषरूप नहीं, उक्तदोष करणको होवे है, अकरणको नहीं, चकारसैं देहधारणरूप कार्य प्राणका है. यह अंगीकार है. तथाहि-श्रुति 'दर्शयति' नाम दिखावे है। 'तान् वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहम् आपद्यथ अहमेव एतत्पञ्चधा आत्मानं विभज्य एतत् बाणम् अवष्टभ्य विधारयामि' जा द्वितीय प्रश्नश्रुतिमें देहधारणरूप असाधारण कार्य दिखाया है. इति ॥ ११ ॥

अव०-प्राणोंका अपर कार्य दिखावे हैंः—

पंचवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते ॥ १२ ॥

पञ्चवृत्तिः । मनोवत् । व्यपदिश्यते । इति । प० ।

अर्थ—यथा अनेक वृत्तिरूप असाधारण कार्यकी दृष्टिसें मन नाम अंतःकरण अनेक प्रकारका है अर्थात् प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, जा पंचवृत्तिवान् है; तथा प्राणभी प्राण, अपान, व्यान, उदान समान, जा पंचवृत्तिवान् 'व्यपदिश्यते' नाम श्रुतिमें कहा है. इति ॥ १२ ॥

अणुश्च ॥ १३ ॥

अणुः । इति । प० ।

अर्थ—यथा नेत्रादिक अणु हैं तथा प्राणभी परिच्छिन्न सूक्ष्म हैं. इति ॥१३॥

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॥ १४ ॥

ज्योतिराद्यधिष्ठानम् । तु । तदामननात् । इति । प० ।

अर्थ—इंद्रियां और प्राणोंकी देवता अधीन चेष्टा है, वा स्वतंत्र है, यह इसमें संदेह है। 'चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति' जा श्रुतिमें देवताविना इंद्रियोंकी चेष्टा प्रतीत होवे है, और 'अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्। वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् । आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्। दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्। ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्। चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्। मृत्युः अपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्। आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्' जा ऐतरेयके द्वितीय खंडकी श्रुतिमें देवता अधीन चेष्टा प्रतीत होवे है. इन उभय वचनोंके विरोधमें यह उत्तर है। ज्योति नाम अग्नि आदिमें होवे जिनके ते ज्योतिआदि कहिये. तिनकरके जो प्रेरित सो ज्योतिआदि अधिष्ठान अंगीकृत है. अर्थात् अग्निआदिक देवताकरके प्रेरणावान् वाक्यादिकोंका ग्रहण है. तत् नाम देवताप्रेरित वाक्यादिक 'आमननात्' नाम उक्तश्रुतिमें अंगीकार किये हैं, यातें इंद्रियोंकी देवताअधीन चेष्टा है. अचेतनकी स्वतः चेष्टा संभवे नहीं. इति ॥ १४ ॥

अव०—प्रेरणासें देवता अधीन भोगप्राप्ति नहीं यह कहे हैं:—

प्राणवता शब्दात् ॥ १५ ॥

प्राणवता । शब्दात् । इति । प० ।

अर्थ—प्राणवता नाम जीवसैंही इन्द्रियोंका स्वस्वामिरूप संबंध है, यातें इंद्रियसाध्य जो भोग सो जीवकोही होवे है. शब्दात् यह तहां हेतु है। 'अथ

यत्र एतत् आकाशम् अनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुः' जा छांदोग्यके अष्टम अध्यायगत श्रुतिका शब्दपदसैं ग्रहण है. अर्थ–अथ नाम देहमैं प्राणप्रवेश अनंतर यत्र नाम कृष्णतारामैं जो सिद्धरूप आकाश तामैं चक्षु 'अनुविपण्णं' नाम प्रवेश किया तहां 'स चाक्षुषः' नाम चक्षुवान् पुरुष हैं. रूपादिदर्शनअर्थ तिनके यह चक्षु हैं. इति ॥ १५ ॥

तस्य च। नित्यत्वात् ॥ १६ ॥

तस्य। च। नित्यत्वात्। इति। प०

अर्थ–किंच स्वकर्मोंकरके प्राप्त जो देह इसमैं तस्य नाम जीवको कर्ता भोक्ता रूपसैं नित्य होनेसैं देवता इस शरीरमैं भोक्ता नहीं, किंतु इन्द्रियोंके अधिष्ठाता हैं. इति ॥ १६ ॥

अव०–ननु इंद्रियां कोई पदार्थ होवें तो तत् देवनका विचार किया चाहिये, इंद्रियां मांसपिंडमात्र हैं वा प्राणव्यापारमात्र हैं, यातें उक्तविचार निष्फल है. जा शंकासैं कहे हैंः—

त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥ १७ ॥

ते। इन्द्रियाणि। तत्–व्यपदेशात्। अन्यत्र। श्रेष्ठात्। इति। प०।

अर्थ–'एतस्मात् जायते प्राणः' जा श्रुतिमैं प्राणोंसैं इंद्रियां भिन्न प्रतीत होवे हैं और 'हन्त अस्यैव सर्वे रूपं असाम इति त अस्यैव सर्वे रूपम् अभवन्' जा श्रुतिमैं प्राणरूपही इंद्रियां कही हैं यातें दोनो श्रुतियोंका पूर्वपक्षमैं विरोध मानेसैं यह सिद्धांत है. श्रेष्ठात् नाम प्राणोंसैं ते नाम वाक्यादिक अन्यत्र नाम अन्य 'इन्द्रियाणि' नाम इंद्रियां हैं; प्राणव्यापाररूप नहीं. तत् नाम प्राणोंसैं 'एतस्मात् जायते' जा श्रुतिमैं 'व्यपदेशात्' नाम भिन्न कथन किया है यातें प्राणव्यापाररूप इंद्रियां नहीं. श्रुतिअर्थ–अब हम सर्व वाक्यादिक इस प्राणकी नांई रूपवान् होवें इस प्रकार ते वाक्यादिक; इस प्राणका स्वरूप हुए. इति ॥ इस श्रुतिमैं प्राणअधीन चेष्टावान् इंद्रियां हैं, यह अंगीकार है; प्राणस्वरूप हैं, यह अंगींकार नहीं. इति ॥ १७ ॥

भेदश्रुतेः ॥ १८ ॥

भेदश्रुतेः। इति। प०।

अर्थ–'अथ ह इमम् आसन्यं प्राणम् ऊचुः' जा श्रुतिमैं प्राणको

इंद्रियोंसैं भिन्न सुना है, यातैं प्राणव्यापाररूप इंद्रियां नहीं । आस्य नाम मुखमैं जो होवे सो आसन्य कहिये, अर्थात् प्राणका नाम है. इति ॥ १८ ॥

वैलक्षण्याच्च ॥ १९ ॥

वैलक्षण्यात् । च । इति । प० ।

अर्थ–सुषुप्तिमैं प्राणोंकी स्थिति है, इंद्रियोंकी नहीं. इत्यादिक बहुविलक्षणतासैंभी इंद्रियां प्राणोंसैं भिन्न हैं यातैं वाक्यनका विरोध नहीं. इति ॥ १९ ॥

अव०–'अनेन जीवेनात्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि तासां त्रिवृतं त्रिवृतम् एकैकं करवाणि' जा छांदोग्यश्रुतिमैं नाम रूप प्रकट करनेका कर्ता सुना है; सो जीव है, वा ईश्वर है, जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं जीव अंगीकार कियेसैं यह सिद्धांतसूत्र है:—

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ॥ २० ॥

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिः । तु । त्रिवृत्कुर्वतः । उपदेशात् । इति । प० ।

अर्थ–तु जीवकर्तृत्व निषेधार्थ है. संज्ञा जो नाम, मूर्ति जो रूप तिन उभयकी जो क्लृप्ति नाम कल्पना अर्थात् नामरूपका प्रकट करना सो 'त्रिवृत्कुर्वतः' नाम परमेश्वरकोही योग्य है. उपदेशात् नाम 'व्याकरवाणि' जा श्रुतिमैं परदेवताकोही नामादिकोंका कर्ता उपदेश किया है, यातैं जीव कर्ता नहीं. इति ॥ २० ॥

अव०–शरीरमें त्रिवृत्करण दिखावे हैं:—

मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥ २१ ॥

मांसादि । भौमम् । यथाशब्दम् । इतरयोः । च । इति ।

अर्थ–शरीरमैं पृथिवीके त्रय कार्य हैं. पुरीष, मांस, मन, इति । जलकेभी त्रय हैं–मूत्र १, लोहित २, प्राण, ३. तेजकेभी त्रय हैं–अस्थि १, मज्जा २, वाक्य ३, इति । यह आध्यात्मिक त्रिवृत्करण है. सोई सूत्रकार कहे हैं–'भौमम्' नाम भूमिके कार्य मांसादि त्रय हैं. यथा०–'अन्नमशितं त्रिधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुः तत् पुरीषं भवति यो मध्यमः तन्मांसं योऽणिष्ठः तन्मनः और 'इतरयोः' नाम जल तेजकेभी त्रयही कार्य हैं 'यथाशब्दम्' नाम 'आपः पीताः त्रिधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुः तन्मूत्रं भवति यो मध्यमः तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ।

तेजोऽशितं त्रिधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुः तदस्थि भवति यो मध्यमः सा मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक्' जा श्रुति अनुसार ग्रहण किये चाहिये. इति ॥ २१ ॥

अव०—ननु सर्वका त्रिवृत्करण हुएसैं यह पृथ्वी है, यह जल है, यह तेज है, जाविध भिन्न भिन्न व्यवहार कैसे होवेगा, जा शंकासैं भगवान् सूत्रकार कहे हैं:—

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ॥ २२ ॥

वैशेष्यात् । तु । तद्वादः । तद्वादः । इति । प० ।

अर्थ—तु पूर्वपक्षनिषेधक है. पृथिवी आदिकोंका त्रिवृत्करण हुएसे भी 'वैशेष्यात्' नाम स्वस्व अर्द्धभागकी अधिकतासैं तत्–वाद नाम यह पृथ्वी है इत्यादि व्यवहार संभवे है. द्वितीय 'तत्–वादपद' अध्यायकी समाप्तिके अर्थ है. उक्तविधसैं श्रुतिवाक्यनका रंचक विरोध नहीं, यातें सर्व वेदांतका ब्रह्ममैं समन्वय है. इति सिद्धम् ॥ २२ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ तृतीयाध्यायप्रारम्भः ॥ ३ ॥

दोहा—विराग पदार्थशोधन, परगुणउपसंहार ।
　　उप वहि साधन दोयका, जामैं करैं विचार ॥ १ ॥

इस अध्यायकेभी चार पाद हैं, तहां प्रथमपादमैं जीवका जो परलोकमैं गमन ताका विचार है; सो विचार विरागार्थ है. द्वितीयपादमैं तत् त्वं पदार्थनका शोधन करेंगे, तृतीयमें सगुणविद्यासैं गुणनका उपसंहार विधान करेंगे, चतुर्थमें निर्गुण ब्रह्मज्ञानके वहिरंग और अंतरंग साधन कहेंगे. तहां प्रथम पादके सप्त अधिक वीस सूत्र हैं, तिनसैं पट् अधिकरण हैं, एकविंशति गुणरूप हैं. तथाहिः—

संख्या	अधिकरण	गुण	प्रसङ्ग
१	अ०	+	जीवगमनविचार.

२	+	गु०	जी०
३	+	गु०	जी०
४	+	गु०	जी०
५	+	गु०	जी०
६	+	गु०	जी०
७	+	गु०	जी०
८	अ०	गु०	कर्मयुक्तआगमन.
९	+	गु०	कर्म०
१०	+	गु०	कर्म०
११	+	गु०	कर्म०
१२	अ०	+	पापीचंद्रलोकप्राप्तिपूर्व०
१३	+	गु०	तन्निषेधनरकप्राप्ति.
१४	+	गु०	तत्०
१५	+	गु०	सप्तनरकनिधान.
१६	+	गु०	तहां यमआज्ञा.
१७	+	गु०	तृतीयमार्ग.
१८	+	गु०	आहुतिनियमनिषे.
१९	+	गु०	आ०
२०	+	गु०	आ०
२१	+	गु०	अंडजादिभेद.
२२	अ०	+	आगममार्ग.
२३	अ०	+	आ०
२४	अ०	+	अन्नमैं संबंधसिद्धि.
२५	+	गु०	संब
२६	+	गु०	सं०
२७	+	गु०	योनिजन्मअंगीकार
	६	२१	

इति ॥ तहा यह प्रथम सूत्र है:—

तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ॥ १ ॥

तदन्तरप्रतिपत्तौ । रंहति । सम्परिष्वक्तः । प्रश्ननिरूपणाभ्याम् । इति प० ।

अर्थ—जीव यदा पूर्वदेहको त्यागके अपरदेहको प्राप्त होवे है तदा प्राण, इंद्रिय, मूलाविद्या, धर्माधर्म, पूर्वभ्रमजन्य संस्काररूप पूर्वज्ञान इतनी सामग्रीसहित अपरदेहको प्राप्त होवे है; यह श्रुतिसिद्ध अर्थ है. तहां देहके आरंभक व प्रणादिकोंके आधाररूप जे पंचीकृत भूतनके भाग तिन भागोंसैं सम्परिष्वक्त जीव गमन करे है वा असम्परिष्वक्त, गमन करे है? यह इस अधिकरणमैं संदेह है । तहां प्रमाणके अभावसैं असम्परिष्वक्त गमन करे है यह पूर्वपक्ष है । पूर्वपक्षमैं वैराग्यकी असिद्धि फल है. सिद्धांतमैं तत्सिद्धि फल है. यहां यह सिद्धांत हैः—तत् नाम पूर्वशरीरसैं अंतर नाम अपरशरीरकी जो प्रतिपत्ति नाम प्राप्ति तदर्थ सम्परिष्वक्त नाम भूतभागसैं सम्बद्ध जीव रंहति नाम गमन करे है. प्रश्न व निरूपण यह दो तहां हेतु हैं. तथाहिः—छांदोग्यमैं पंचाग्निविद्यासैं कहा है कि कोई प्रवाहणनाम राजा था ताकी सभामैं श्वेतकेतु गया था ताके आगे राजाने पंच प्रश्न किये, यह प्रश्नपदका अर्थ है. तिनका उत्तर श्वेतकेतुको नहीं आया तब श्वेतकेतुने आकर पितासैं पूछा तो उसने कहा हमकोभी यह विद्या नहीं आती, तब उद्दालकने जाकर राजासैं पूछा तब राजाने यह उपदेश किया—'असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥१॥ तस्मिन् एतस्मिन् अग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥ २ ॥ १ ॥ पर्जन्यो वाव गौतमाग्निः तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गाराः ह्रादुनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन् एतस्मिन् अग्नौ देवाः सोमं राजानं जुह्वति तस्या आहुतेः वर्षं सम्भवति ॥ २ ॥ पृथिवी वाव गौतमाग्निः तस्याः संवत्सर एव समित् आकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः । तस्मिन् एतस्मिन् अग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेः अन्नं सम्भवति ॥ ३ ॥ पुरुषो वाव गौतमाग्निः तस्य वागेव समित् । प्राणो धूमो जिह्वार्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः । तस्मिन्

एतस्मिन् अग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुतेः रेतः सम्भवति ॥ ४ ॥ योषा वाव गौतमाग्निः तस्या उपस्थ एव समिद् यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः तस्मिन् एतस्मिन् अग्नौ देवाः रेतो जुह्वति तस्या आहुतेः गर्भः सम्भवति ॥५॥ इति तु पञ्चम्याम् आहुतौ आपः पुरुषवचसो भवन्ति । इति । इस पंचाग्निविद्याके उपदेशका निरूपणपदसैं ग्रहण है. उक्त प्रश्न व निरूपणसें जलादिभूतसम्बद्ध जीवका गमन होवे है, यह निश्चित है । अर्थ-हे गौतम! यह द्युलोक अग्नि है. इसमें देवा नाम अग्निआदिरूप यजमानके प्राण श्रद्धा नाम दुग्धादिरूप जलका हवन करे हैं, तिस आहुतिसैं तिन जलोंका परिणामरूप सोम राजा अर्थात् चंद्रसमीपस्थ तत्सदृश शरीर होवे है। पर्जन्य (देवताविशेप), देव (इंद्रादि), इसीतरह आगे जानना चाहिये. पंचमी आहुतिमैं जलोंकी पुरुषसंज्ञा होवे है. इति ॥ १ ॥

त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ॥ २ ॥

त्र्यात्मकत्वात् । तु । भूयस्त्वात् । इति प० ।

अर्थ-यद्यपि उक्त प्रसंगमैं जलसंवद्ध गमन भान होवे है तथापि त्रिवृत्करणश्रुतिसैं देह 'त्र्यात्मकत्वात्' नाम त्रयभूतस्वरूप निश्चित है; यातें यजमानद्वारा ताको जलजन्य सिद्धहुए अपर दो जन्यत्व और तत्संवंद्धत्वभी सिद्ध होवे है. श्रुतिमैं जो केवल जलका ग्रहण है 'सो भूयस्त्वात्' नाम तेजादिकोंकी अपेक्षासैं जलकी वाहुल्यतासैं है. इति ॥ २ ॥

प्राणगतेश्च ॥ ३ ॥

प्राणगतेः । च । इति प० ।

अर्थ-देहरूप जे भूत तत्-आश्रित प्राण व इंद्रियां प्रतीत होवे हैं। 'हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेन एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्ध्नो वा अन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः । तम् उत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणम् अनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति' जा बृहदारण्यकके षष्ठ अध्याय व चतुर्थ ब्राह्मणगत श्रुतिमैं मरणकालमैं प्राणोंकी गति नाम गमन सुना है, यातें जीवनकालमैं यथा प्राण देह-आश्रित हैं

तथा मरणकालमैंभी भूत–आश्रित प्रणोंका गमन सिद्ध होनेसैं जीव भूतसंबद्धही गमन करे है. इति ॥ ३ ॥

अग्न्यादिगतिश्रुतेतिरिचेन्न भाक्तत्वात् ॥ ४ ॥

अग्न्यादिगतिश्रुतेः । इति । चेत् । न । भाक्तत्वात् । इति प० ।

अर्थ–'यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्य अग्निं वागप्येति वातं प्राणः चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रे पृथिवीं शरीरम् आकाशम् आत्मा ओषधीर्लोमानि वनस्पतीन् केशाः' जा बृहदारण्यकके पंचम अध्याय द्वितीय ब्राह्मणगत श्रुतिमैं वाक् आदिक इन्द्रियोंका अग्निआदिक देवतनमैं गति नाम लय सुना है यातें अपरलोकमैं इंद्रियगमन—असंभवसैं भूतसम्बद्ध जीवगमनकथन असंगत है, जा शंका करें तौ असंगत है. तथाहि–उक्त श्रुतिका यह अर्थ है कि प्रथम हृदयके अग्रभागमैं प्रकाश होवे है तिसकरके यह आत्मा गमन करे है. तिसके गमन पीछे प्राण गमन करे हैं, प्राण गमन किये पीछे सर्व इन्द्रियां गमन करें हैं. इति । और 'ओषधीर्लोमानि' जा श्रुतिमें औषधिनमें लोमनका लय कहा है. वनस्पतिमैं केशलय कहा है. ते लोम केश मृतपुरुषके प्रत्यक्षसैं लय होते प्रतीत होवें नहीं और वाक् आदिकोंका लयभी तहां कहा है यातें पूर्वउक्त गमनबोधक श्रुतिसैं विरोध निषेध अर्थ वाक् आदिकोंका लय भाक्त नाम गौण है, मुख्य नहीं. इति ॥ ४ ॥

प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः ॥ ५ ॥

प्रथमे । अश्रवणात् । इति । चेत् । न । ताः । एव । हि । उपपत्तेः । इति प० ।

अर्थ–ननु 'एतस्मिन् अग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति' जा श्रुतिमैं प्रथम नाम प्रथम अग्निविषे श्रद्धारूप आहुति सुनी है जल नहीं सुना, इति चेत् नाम जो उक्त शंका करें तौ असंगत है. श्रद्धा मनकी वृत्तिविशेष है, यातें ताकी आहुति संभवे नहीं, किंतु जलरूप दुग्धादिकोंकीही आहुति संभवे है यातें ताः नाम जलही श्रुतिमैं श्रद्धापदसैं ग्रहण किया है, जलसैं श्रद्धाशब्द लाक्षणिक है, इति ॥ ५ ॥

अश्रुतत्वादिति चेन्नेष्टादिकारिणां प्रतीतेः ॥ ६ ॥

अश्रुतत्वात् । इति । चेत् । न । इष्टादिकारिणाम् । प्रतीतेः । इति प० ।

अर्थ–ननु जलादिकोंकी नांई जीवको उक्त श्रुतिमें गमनका कर्ता सुना नहीं, यातें जलादिभूतसम्बद्ध गमनकथन असंगत है, जा शंकाका आधे सूत्रसैं निषेध करे हैं. जे गृहस्थ इष्टापूर्तदत्तको करे हैं ते चंद्रलोकमैं जावे हैं तिनका 'एष सोमो राजा' जा श्रुतिमैं सोमराजशब्दसैं ग्रहण है तथा पंचाग्निविद्यामैंभी आहुतिको सोमराजशब्दसैं सुना हैः यातें तिन इष्टादिकारी पुरुषोंकी पंचाग्निविद्यामैं प्रतीति होनेसैं भूतसंबद्ध जीवगमन संभवे है, इति ॥६॥

अव०–ननु 'ते चन्द्रं प्राप्य अन्नं भवन्ति' जा श्रुतिमैं कर्मीजनोंको देवनका अन्न कहा है, यातें चंद्रलोकमैं तिनका गमन स्वकर्मफलभोगार्थ है, यह तो संभवे नहीं जा शंकासैं कहे हैंः—

भाक्तं वानात्मवित्वात्तथाहि दर्शयति ॥ ७ ॥

भाक्तम् । वा । अनात्मवित्वात् । तथाहि । दर्शयति । इति प० ।

अर्थ–वा पद उक्तदोषके निषेधार्थ है. उक्त श्रुतिमैं कर्मीको जो अन्नरूप कहा है सो 'भाक्तम्' नाम गौण है, मुख्य नहीं. यथा पुत्रादि भोगके साधन होवे हैं तथा कर्मीजनभी देवनके प्रति भोगके साधन हैं; यातें तिनको अन्न कथन किया है. और 'अनात्मवित्वात्' नाम कर्मीजन अज्ञानी हैं, यातेंभी देवनप्रति तिनको भोग्यकरके कहा है. तथाहि–'उत्तरश्रुतिर्दर्शयति' नाम अनात्मवेत्ता होनेसैं कर्मीको देवनका भोग्यकरके दिखावे है। 'अथ योऽन्यां देवताम् उपासते अन्योऽसौ अन्योऽहमस्मि न स वेद यथा पशुः एवं स देवानाम् इति' यह श्रुति बृहदारण्यकके प्रथममैं है. अर्थ–जो अब्रह्मवित् आत्मासैं भिन्न देवताकी उपासना करे है, यह हमसैं भिन्न है, मैं इसका दास हौं, जाविध माने है, सो तत्त्वको नहीं जाने है, सो देवनका पशु है. इति। यातें अन्नकथनको गौण होनेसैं परलोकभोगार्थ गमन संभवे है. इति ॥ ७ ॥

कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथैतमनेवं च ८

कृतात्यये । अनुशयवान् । दृष्टस्मृतिभ्याम् । यथा । एतम् । अनेवम् । च । इति प० ।

अर्थ–'तस्मिन् यावत् सम्पातम् उषित्वा अथैतम् एव अध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथैतम् आकाशम् आकाशाद् वायुम्' जा श्रुतिमैं तहांही यह कहा है कि तिस चंद्रलोकमैं भोक्तव्य कर्मको भोगके पुनः इसी मार्गको प्राप्त होवे हैं. इति । इसमैं यह संदेह है कि तहांसैं अनुशयवान् आवे हैं वा अनुशयरहित आवे हैं ? पूर्वपक्षमैं अनुशयरहित अंगीकार कियेसे यह सिद्धांत है; कि 'कृत' नाम स्वर्गदाता कर्मके 'अत्यये' नाम भोगसैं विनाश हुएसैं शेष कर्म युक्तही जीव आवे है. दृष्ट व स्मृति यह तहां हेतु हैं । 'तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिम् आपद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा अथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिम् आपद्येरन् । श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ' यह श्रुतिवचन दृष्टपदसैं अंगीकृत है । अर्थ–ये कर्मी इस कर्मभूमिमैं शुभ कर्म करे हैं ते स्वर्गसैं आकर ब्राह्मणादिकयोनिको प्राप्त होवे हैं, ये पापकारी हैं ते आकर श्वानादिक योनिको पावे हैं. अभ्याशपद शीघ्रवाची है. ' शेषेण जन्म प्रतिपद्यन्ते ' जा स्मृतिवाक्यका स्मृतिपदसैं ग्रहण है. उभय श्रुति स्मृतिसैं शेषकर्मवानकाही आगमन प्रतीत होवे है. ते कर्मी जा मार्गसैं जावे हैं उसी मार्गसे आवें हैं वा अपर मार्गसैं आवे हैं ? जा संदेहसैं कहे हैं–' यथा एतम् ' नाम जिस मार्गद्वारा चंद्रलोकमैं प्राप्त हुए थे ' अनेवं च ' नाम तिससैं अपर मार्गसे आवे हैं. इति ॥ ८ ॥

चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ॥ ९ ॥

चरणात् । इति । चेत् । न । उपलक्षणार्था । इति । कार्ष्णाजिनिः । इति प० ।

अर्थ–ननु श्रुतिमैं चरणसैं योनिप्राप्ति सुनी है. सो चरण अनुशयकर्मसैं भिन्न है यातें शेषकर्मवान् आवे है. जा कथन संभवे नहीं जा शंकाका यह उत्तर है कि चरणश्रुति अनुशयके उपलक्षणार्थ है. यह कार्ष्णाजिनि आचार्य माने हैं. इति ॥ ९ ॥

आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात्॥ १०॥

आनर्थक्यम्। इति। चेत्। न। तत्–अपेक्षत्वात्। इति प०।

अर्थ–ननु चरणश्रुति उपलक्षणार्थ है यह असंगत है. शुभाशुभरूप जो चरण तिससैं उत्तम मंद योनि प्राप्ति संभवे है. अन्यथा चरण अनर्थक होवेगा जा कल्पना करें तौ असंगत है. कर्मनको तत् नाम चरणकी अपेक्षा है यातें चरण अनर्थक नहीं. इति॥ १०॥

सुकृतदुष्कृते एवेति बादरिः॥ ११॥

सुकृतदुष्कृते। एव। इति। बादरिः। इति प०।

अर्थ–चरणपदसैं सुकृत नाम धर्म दुष्कृत नाम पाप यह उभयही अंगीकार हैं, यह बादरि आचार्य माने हैं–' धर्मं चरति एष महात्मा ' जाविध लोकमैं कर्म और चरणमैं एकही प्रयोग देखा है, यातें चंद्रलोकसैं अनुशयवानही जा लोकमैं आवे है. इति सिद्धम्॥ ११॥

अनिष्टादिकारिणामपि श्रुतम्॥ १२॥

अनिष्टादिकारिणाम्। अपि। श्रुतम्। इति प०।

अर्थ–चंद्रलोकमैं पापी जावे हैं वा नहीं? जा संदेह हुएपर पूर्वपक्षमैं यह सूत्रार्थ है. यथा इष्टादिकोंके करनेवाले चंद्रलोकमैं जावे हैं तथा ' अनिष्टादिकारिणाम् ' नाम पापीजनोंकाभी चंद्रलोकमैं गमन होवे है। ' ये वै के चास्माल्लोकात् प्रयन्ति चन्द्रमसम् एव ते सर्वे गच्छन्ति ' जा कौषीतकिश्रुतिमैं सर्वका गमन चंद्रलोकमैं 'श्रुतम्' नाम सुना है यातें धर्मीही तहां जावे हैं, यह असंगत हैं. तहां चंद्रलोकमैं पापीजनोंको भोग नहीं होता किंतु तहां गमनमात्रकरके तहांसैं आकर नरकमैं दुःखका अनुभव करे हैं. इति॥१२॥

सिद्धांतसूत्र।

संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात्॥ १३॥

संयमने। तु। अनुभूय। इतरेषाम्। आरोहावरोहौ। तद्गतिदर्शनात्। इति प०।

अर्थ–चंद्रलोकमैं जो गमन है सो भोगार्थ है, जो विना भोगसैं पापीका

गमन होवे तो सो व्यर्थ होवेगा. पूर्व जो श्रुति कही है सो धर्मिविषयक है पापिविषयक नहीं यातें धर्मीही चंद्रलोकमैं जावे हैं. और पापी ' संयमने ' नाम यमलोकमैं पापफल दुःखके अनुभवार्थ जावे हैं. तहां दुःखका ' अनुभूय ' नाम अनुभवकरके पुनः इस लोकमैं आवे हैं. इसप्रकार 'इतरेषाम्' नाम पापीजनोंका आरोह अवरोह नाम गमनागमन होवे है. तत् नाम यमपुरके प्रति जो गति सो दर्शनात् नाम ' अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे' जा कठगत द्वितीयवल्लीश्रुतिमैं देखी है. इति ॥१३॥

स्मरन्ति च ॥ १४ ॥

स्मरन्ति । च । इति प० ।

अर्थ–मनु आदिकोंनेभी पापीजनोंको नरकमैं भोग स्मरण किया है, यातें चंद्रलोकप्राप्ति धर्मीकोही है. इति ॥ १४ ॥

अपि च सप्त ॥ १५ ॥

अर्थ–पौराणिकोंनेभी रौरवादिकसप्त नरक, पापफल, भूमिरूपकरके स्मरण किया हैं. तिनमैं पापी प्राप्त होवे हैं. इति ॥ १५ ॥

तत्रापि च तद्–व्यापारादविरोधः ॥ १६ ॥

तत्र । अपि । च । तत्–व्यापारात् । अविरोधः । इति प० ।

अर्थ–यद्यपि महारौरवादिक नरकनमैं चित्रगुप्तकी शासना सुनी है यातें तहां यमराजकी शासना है यह कथन विरुद्ध है; तथापि तत्रापि नाम चित्रगुप्तकी शासनामैं भी तत् नाम यमराजकाही आज्ञारूप व्यापार है यातें अविरोध है, चित्रादिक यमके अधीन हैं. इति ॥ १६ ॥

अव०–उपासकोंका अग्नि आदि मार्ग है. केवल कर्मीजनोंका धूमादि मार्ग है उक्त मार्ग दोयसैं भ्रष्ट जे पापी तिनके लिये तृतीयमार्ग कहा है, यातें भी तिनको चंद्रलोक प्राप्त होवे नहीं, यह कहे हैंः—

विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॥ १७ ॥

विद्याकर्मणोः । इति । तु । प्रकृतत्वात् । इति प० ।

अर्थ–राजा प्रवाहणने श्वेतकेतुसैं पूछा था कि वहु जीव मृत होते हैं ति-

नसैं चंद्रलोक कैसे नहीं पूर्ण होता यह प्रकार तुम जानते हो ? इस प्रश्नका उत्तर राजाने उद्दालक मुनिके प्रति कहा है. पापी जीवोंके अग्निभूम मार्ग नहीं किंतु 'जायस्व म्रियस्व' यह तीसरा मार्ग है, यातें स्वर्ग नहीं पूर्ण होता, यह सूत्रकार कहे हैं । विद्या नाम उपासना देवयान मार्गका साधन है. कर्म पितृयान मार्गका साधन है. पापीका इन मार्गनसैं अधिकार नहीं. उभयमार्गनके विद्या कर्म साधनरूपसैं 'प्रकृतत्वात्' नाम प्रसंगमैं प्राप्त हैं. और पापी जीवनका पुनः पुनः जन्ममरण बाहुल्यतायुक्त तीसरा मार्ग है यातें स्वर्ग पूर्ण होता नहीं. इति ॥ १७ ॥

अव०—ननु जा लोकमैं पापीके जन्मअर्थ पापीको चंद्रलोककी प्राप्ति कही चाहिये जो नहीं मानेंगे तो पांचवीं आहुतिसैं जलकी पुरुषसंज्ञा होवे है, यह नियम नहीं रहेगा, जा शंकाका उत्तर कहे हैंः—

न तृतीये तथोपलब्धेः ॥ १८ ॥

न । तृतीये । तथा । उपलब्धेः । इति प० ।

अर्थ—तृतीये नाम तीसरे मार्गमैं प्रवेशवान् जे पापी तिनके अर्थ देहप्राप्तिके अर्थ आहुतिसंख्याका नियम नहीं 'अथ एतयोः पथोर्न कतरेण च न तानि इमानि क्षुद्राणि असकृत् आवर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्व इति एतत् तृतीयं स्थानम् । तेन असौ लोको न सम्पूर्यते तस्मात् जुगुप्सेत' जा श्रुतिमैं संख्यानियमविनाही 'तथा उपलब्धेः' नाम तृतीय मार्गमैं देहप्राप्ति प्रतीत होवे है. आहुतिका योनि जो यम सो धर्मीके अर्थ है. इति ॥ १८ ॥

स्मर्यतेऽपि च लोके ॥ १९ ॥

स्मर्यते । अपि । च । लोके । इति प० ।

अर्थ—लोके नाम महाभारतादिकोंमैं द्रोण, धृष्टद्युम्न, सीता, द्रौपदी आदिकोंको योनिरहित स्मरण किया है. तहां द्रोणादिकोंकी योषित आहुति एक नहीं धृष्टद्युम्नादिकोंकी योषित पुरुष दोनोंकी आहुति नहीं है, यातें संख्याका नियम नहीं ॥ १९ ॥

दर्शनाच्च ॥ २० ॥

दर्शनात् । च । इति । प० ।

अर्थ–किंच लोकमैं जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ये चार भेद देहके सुने हैं तहां स्वेदज व उद्भिज्जकी योषित पुरुष संबंधविनाही उत्पत्ति 'दर्शनात्' नाम देखनेसैं आहुतिसंख्याका नियम नहीं. इति ॥ २० ॥

अव०–ननु 'तेषां भूतानि त्रीणि एव बीजानि भवन्ति अण्डजं जीवजम् उद्भिज्जम्' जा श्वेतकेतु 'उपदेशात्' श्रुतिमैं शरीरके तीन भेद सुने हैं यातैं चार भेद कथन विरुद्ध हैं, जा शंकासैं कहै हैं:—

तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य ॥ २१ ॥

तृतीयशब्दावरोधः । संशोकजस्य । इति प० ।

अर्थ०–श्रुतिमैं उद्भिज्ज यह जो तृतीय शब्द है. इसकरके 'संशोकजस्य' नाम स्वेदजकाभी अवरोध नाम ग्रहण है. वृक्षादिक पृथिवीको फोड़कर निकलें हैं. स्वेदज जलको फोड़कर निकले हैं. यातैं उभयमैं अवयवार्थ अर्थात् फोड़ना तुल्य होनेसैं उद्भिज्जसैं स्वेदजका ग्रहण संभवे है. इति ॥ २१ ॥

तत्साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः ॥ २२ ॥

तत्साभाव्यापत्तिः । उपपत्तेः । इति प० ।

अर्थ–'तस्मिन् यावत् सम्पातम् उषित्वा अथ एतमेवाध्वानम् पुनर्निवर्तन्ते यथेतम् आकाशम् आकाशाद् वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वा अभ्रं भवति ॥ १ ॥ अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा वर्षति त इह व्रीहियवा औषधिवनस्पतयः तिलमाषा इति जायन्ते अतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो हि अन्नं अत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूयः एव भवति ॥ २ ॥' यह छांदोग्यके पंचमप्रपाठकके दशमखण्डगत श्रुति उक्त सूत्रका विषयवाक्य है.

अर्थ–'तस्मिन्' नाम चंद्रलोकमैं जवतक 'संपातं' नाम कर्मनका क्षय होय 'उषित्वा' तवतक रहकर । उसी मार्गसे फिर लौटते हैं. चंद्रलोकगतजल आकाशवत् सूक्ष्म होवे है । 'अतः' नाम अनुशयवान् रेतःसिक् आकृतिरूप होवे है. इति । यवादिकोंमैं निकलना 'दुर्निष्प्रपतरं' नाम दुर्निष्प्रपतर है

अर्थात् कठिन है. जो रेतस्‌सिंचन करे हैं सो 'भूय एव' नाम तत्–आकृति ही होवे है अर्थात् यदा जीवका स्वर्गसें आगमन होवे है तदा आकाशादिकों-का स्वरूप होवे है वा तत् तुल्य होवे है. पूर्वपक्षमैं श्रुति अक्षर अनुसार जीव-को आकाशादिकोंका स्वरूप अंगीकार कियेसें यह सिद्धांत है कि जीवको आकाशादिकोंकी 'साभाव्य' नाम तुल्यताकी आपत्ति नाम प्राप्ति होवे है सोई 'उपपत्तेः' नाम बने है. लोकमैं क्षीरकालमैं दधि होवे नहीं यातें दुग्धको दधिरूपता युक्त है. पूर्व विद्यमान जो आकाशादि स्वरूप तत् रूप जीवको होना संभवे नहीं किंच जीवको आकाश स्वरूप मानेसें उत्तर वायु आदिकोंका स्वरूप कहिना असंगत होवेगा, यातें जीवका आकाशादिकोंसें संबंध मात्र होवे है सो सादृश्यरूप है. इति ॥ २२ ॥

अव०–तहां जीव बहुकाल सादृश्यको प्राप्त होकर अपरके सादृश्यको प्राप्त होवे है वा अल्पकाल रहे है? जा संदेहसें कहे हैं:—

नातिचिरेण विशेषात् ॥ २३ ॥

न । अतिचिरेण । विशेषात् । इति प० ।

अर्थ–जीव अतिचिरेण नाम बहुकाल सादृश्यको प्राप्त नहीं होवे है किंतु अल्प अल्पकाल आकाशादिकोंके तुल्य स्थित होकर वर्षाधाराद्वारा पृथिवीमैं प्रवेश करे है, 'विशेषात्' यह तहां हेतु है. 'दुर्निष्प्रपतरं' जा पूर्व श्रुतिमैं व्रीह्यादिकोंसें जीवका निकलना दुःखतर कहा है यातें आकाशा-दिकोंसें सुखसें निकले है यह प्रतीत होवे है यातें व्रीहि आदिकोंमैं चिरकाल स्थितिरूप जो विशेषता तासैं आकाशादिकोंमैं अल्प अल्पकाल सादृश्यसें स्थिति सिद्ध होवे है. इति ॥ २३ ॥

अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलापात् ॥ २४ ॥

अन्याधिष्ठिते । पूर्ववत् । अभिलापात् । इति प० ।

अर्थ–पूर्व श्रुतिमैं जीवनका व्रीह्यादिरूपसें जो जन्म कहा है सो मुख्य है वा अपर जीवोंकरके युक्त जे व्रीह्यादि तिनसें संबंधमात्र होवे है? जा संदेहसें कहे हैं. अन्य नाम अपर जीवोंकरके 'अधिष्ठिते' नाम युक्त जे व्रीह्यादिक तिनमैं अनुशयवान् जीवोंका संसर्ग मात्र होवे है. पूर्ववत् नाम आकाशादिकोंमैं यथा संबंधमात्र होवे है तथा व्रीह्यादिकोंमैं भी कर्मपरामर्शसें विनाही प्रवेश अभि-लाप नाम कथन किया है यातें तहां तिनका संबंधमात्र होवे है. इति ॥ २४ ॥

अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ॥ २५ ॥

अशुद्धम् । इति । चेत् । न । शब्दात् । इति प० ।

अर्थ–ननु ज्योतिष्टोमादिक कर्मनमें पशुआदिहिंसा होवे है यातें ते कर्म अशुद्ध हैं अर्थात् पापके हेतु हैं यातें तिनके करनेवाले जे अनुशयवान् जीव तिनका व्रीह्यादिकोंमैं दुःखानुभवार्थ मुख्यही जन्म मानना चाहिये यह शंका करें तौ 'शब्दात्' नाम विधिशास्त्रसैं हिंसाको धर्मरूप होनेसैं असंगत है. इति ॥ २५ ॥

रेतःसिग्योगोऽथ ॥ २६ ॥

रेतःसिग्योगः । अथ । इति प० ।

अर्थ–'अथ' नाम व्रीहिआदिक भावसैं अनंतर श्रुतिमैं रेतःसिग्योग कहा है. रेतसूपद वीर्यवाचक है, तिसको जो सिंचन करे सो 'रेतःसिग्' कहिये, तिसका जो भाव सो रेतःसिग्योग कहिये. तथाहि श्रुतिः । 'यो रेतः सिञ्चति तद्भूयः एव भवति इति' इसमैं जो रेतसूका सिञ्चन कहा है सो अनुशयवानको मुख्य तो संभवे नहीं, इस कालमैं तिसने प्रवेश किया है यातें ताको यौवनत्वकी प्राप्तिसैं सुख नहीं किंतु तहां ताका संसर्गमात्र कहा चाहिये यातें व्रीह्यादिकोंमैं संसर्गमात्रही है. इति ॥ २६ ॥

अव०–ननु अनुशयवानका सर्वमैं संबंधमात्र अंगीकार कियेसैं ताका मुख्यजन्म कहूंभी नहीं होवेगा, जा शंकासैं कहे हैंः—

योनेः शरीरम् ॥ २७ ॥

योनेः । शरीरम् । इति प० ।

अर्थ–योनिमैं वीर्यके प्रवेश हुएसे योनिसैं अनुशयवान् जीवका अनुशयरूप कर्मफलके भोगके अर्थ शरीर उपजे है, यह शास्त्र कहे है. 'रमणीयचरणाः' इत्यादि, यातें ब्राह्मणादियोनिमैं अनुशयवानका मुख्य जन्म होवे है. इति । इस गमनागमन–विवेकसैं जो वैराग्य उपजे है सो ज्ञानका साधन है. इति तात्पर्यम् ॥ २७ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां
तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ।

अथ द्वितीयपादप्रारम्भः ।

इस पादमैं तत्त्वंपदनके अर्थका शोधन करे हैं, आत्माकी स्वप्रकाशता सिद्धिमैं स्वप्नको स्पष्ट साधनता हैं यातें प्रथम स्वप्नविचार करेंगे. इस पादके एक अधिक चालीस सूत्र हैं. तहां अष्ट अधिकरण हैं. शेप गुण हैं. तथाहि—

सङ्ख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	स्वप्नसत्यपूर्वपक्ष.
२	+	गु०	स्व०
३	+	गु०	मायामात्रसिद्धान्त.
४	+	गु०	मा०
५	+	गु०	परसैं बन्धमुक्तिअज्ञान.
६	+	गु०	देहसंबन्धईश्वरतिरोधान.
७	अ०	+	सुषुप्ति आत्मामैं.
८	+	गु०	ब्रह्मसैं उत्थान.
९	अ०	+	सोई जीव उठे है.
१०	अ०	+	मूर्छा.
११	अ०	+	निर्विशेषविचार.
१२	+	गु०	नि०
१३	+	गु०	नि०
१४	+	गु०	नि०
१५	+	गु०	नि०
१६	+	गु०	नि०
१७	+	गु०	नि०
१८	+	गु०	नि०
१९	+	गु०	नि०
२०	+	गु०	नि०
२१	+	गु०	नि०
२२	अ०	+	नामरूपनिषेध.
२३	+	गु०	ना०

२४	+	गु०	ना०
२५	+	गु०	ना०
२६	+	गु०	ना०
२७	+	गु०	ना०
२८	+	गु०	ना०
२९	+	गु०	ना०
३०	+	गु०	ना०
३१	अ०	+	द्वैतसिद्धिपूर्वपक्ष.
३२	+	गु०	तत्–निषेधसिद्धान्त.
३३	+	गु०	त०
३४	+	गु०	त०
३५	+	गु०	त०
३६	+	गु०	त०
३७	+	गु०	त०
३८	अ०	+	ईश्वरसैं कर्मफल.
३९	+	गु०	ई०
४०	+	गु०	कर्मसैं फल जैमिनि.
४१	अ०	+	ईश्वरसैं फलसिद्धांत.
	८	३३	

इति

सन्ध्ये सृष्टिराह हि ॥ १ ॥

सन्ध्ये । सृष्टिः । आह । हि । इति प० ।

अर्थ–'न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति अथ रथान् रथयोगान्पथः सृजते । न तत्र आनन्दा मुदः प्रमुदो भवन्ति अथ अनन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते स हि कर्ता' जा बृहदारण्यक षष्ठ अध्यायगत श्रुति सूत्रका विषयवाक्य है. अर्थ–तत्र (स्वप्नमें) रथयोगा नाम अश्वादिक, आनंद (सुखविशेष), मुद (पुत्रादिलाभनिमित्तहर्ष) सोई प्रमुद है यातें सो कर्ता है, इति। यथा घटादिक व्यावहारिक हैं तथा स्वप्नप्रपंच व्यावहारिक है? वा यथा शुक्तिरजतादि हैं तथा मायामात्र है? यह तहां संदेह है. पूर्वपक्षमैं यह अर्थ

है जाग्रत् सुषुप्तिकी जो संधिमैं होवे सो संध्य कहिये है अर्थात् स्वप्नका नाम संध्य है. तामैं जो सृष्टि नाम गजादि सो व्यावहारिक है. 'न तत्र' यह उक्त श्रुति स्वप्नसृष्टिको व्यावहारिकी आह नाम कहे हैं. इति ॥ १ ॥

निर्मातारं तथा चैके पुत्रादयश्च ॥ २ ॥

निर्मातारम् । तथा । च । एके । पुत्रादयः । च । इति प० ।

अर्थ—एके नाम किसी शाखावाले स्वप्नमें तथा नाम जीववत् परमात्माको विषयोंके 'निर्मातारम्' नाम रचनेवाला माने हैं. तथाहि—'य एष सुप्तेषु जाग्रति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः तदेवम् शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते' जा कठश्रुति तहां प्रमाण है. अर्थ—नेत्रादिक करणोंके निर्व्यापार हुएसैं तिस तिस अभिलषितको रचताहुआ जागे है सो शुद्ध है, सोई ब्रह्म है, सोई अमृत कहलाता है. कामपदसैं बुद्धिवृत्ति और पुत्रादि विषयोंका ग्रहण है. इति । यातें पुत्रादि स्वप्नप्रपंच सत्य है. ताका ईश्वरको कर्ता होनेसैं इति ॥ २ ॥

सिद्धांतसूत्र.

मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ॥ ३ ॥

मायामात्रम् । तु । कार्त्स्न्येन । अनभिव्यक्तस्वरूपत्वात् । इति प० ।

अर्थ—तु पूर्वपक्षनिषेधार्थक है. स्वप्नगजादिक 'कार्त्स्न्येन' नाम सर्व प्रकारसैं अनभिव्यक्त स्वरूप हैं अर्थात प्रकट नहीं यातें मायामात्र हैं. अर्थात् शुक्तिरजतवत् मिथ्या है. उक्त अनुमानमैं उचित देशादिजन्यत्व उपाधि है, यातें सो असंगत है. और "कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः" जा श्रुतिमैं भी जीवही स्वप्नकर्ता अंगीकार है; ब्रह्म नहीं. इति ॥ ३ ॥

अव०—ननु स्वप्नको मिथ्या मानेसैं ताको शुभाशुभका सूचक नहीं हुआ चाहिये, जा शंकासैं कहे हैं:—

सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ॥ ४ ॥

सूचकः । च । हि । श्रुतेः । आचक्षते । च । तत्—विदः । इति । प० ।

अर्थ—'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्ने पश्यति स समृद्धिं तत्र जानीयात् स्वप्ननिदर्शने तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने' जा छांदोग्य पंचम प्रपाठकगत श्रुतिसैं स्वप्न शुभाशुभ सूचनका हेतु प्रतीत होवे है, यातें असत्यभी

स्वप्न सत्यत्वप्राप्तिका सूचक है. यथा असत्य रजत सत्य हर्षादिकोंका जनक है. और 'तत्-विदः' नाम स्वप्नाध्यायवेत्ताभी स्वप्नको शुभाशुभका सूचक 'आचक्षते' नाम कहे हैं. इति । अर्थ-यदा कामअर्थ कर्मोंमैं स्त्रीको स्वप्नमैं देखे तदा कर्मफल सिद्ध होवेगा यह जाने. परंतु स्त्रीआदिक प्रशस्त स्वप्नके देखेसैं. इति ॥ ४ ॥

अव०-संकल्पमात्रसैं जीव कर्ता नहीं यह कहे हैं:—

पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ५

पराभिध्यानात् । तु । तिरोहितम् । ततः । हि । अस्य । बन्धविपर्ययौ । इति प० ।

अर्थ-जीवका ईश्वरसैं अभेद है, तौभी जीव प्रति ईश्वर मायाकरके तिरोहित है अर्थात् आच्छादित है; यातें जीवको संकल्पमात्रसैं कर्तापना संभवे नहीं. जीवका तिरोहितपना पर नाम परमात्माके 'अभिध्यानात' नाम अभेदाभ्याससैं प्रकट होवे है. 'ततः' नाम ईश्वरके अज्ञानसैं 'अस्य' नाम जीवको कर्तृत्वादि बन्ध है, ताके ज्ञानसैं विपर्यय नाम मोक्ष प्राप्त होवे है, यातें ईश्वरकृपा विना ईश्वर प्रकट होवे नहीं. इति ॥ ५ ॥

अव०-जीवके ईश्वरत्वतिरोभावमैं अपर हेतु कहे हैं:—

देहयोगाद्वा सोऽपि ॥ ६ ॥

देहयोगात् । वा । सः । अपि । इति प० ।

अर्थ-जीवके ईश्वरत्वका सो नाम तिरोभाव देहादिकोंके 'योगात्' नाम सम्बन्धसैं है. यथा भस्मके सम्बन्धसैं अग्नि तिरोहित होवे है, तथा जीवका ईश्वरत्व आच्छादित है. 'वा' पद ईश्वरत्व अभाव अंगीकारके निषेधार्थ है; यातें स्वप्न जाग्रतादिक मायामात्र हैं. आत्मा अवस्थात्रयसैं रहित है. इति ॥६॥

तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ॥ ७ ॥

तदभावः । नाडीषु । तच्छ्रुतेः । आत्मनि । च । इति प० ।

अर्थ-'यत्र सुप्तः स्वप्नं न विजानाति आसु तदा नाडीषु सुप्तो भवति' इति । जा अवस्थामैं बाह्य इंद्रियां उपराम हुए सोवे है. सर्व वृत्तिसहित अंतःकरण लय होवे है. स्वप्नको जाने नहीं तदा नाडीमें सोवे है. यह

श्रुतिका अक्षरार्थ है। "य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदयः आकाशस्तस्मिन् शेते" जा बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्यायगत श्रुतिमैं आत्मामैं सुषुप्ति प्रतीत होवे है. और तहांहीं आगे यह कहा है:-'ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीमानन्दस्य गत्वा शयीत एवमेव एष एतच्छेते' इति। इसमैं पुरीततिविषे सुषुप्ति भान होवे है. इसमैं संदेह हुएसैं पूर्वपक्षमैं विकल्प अंगीकार किये यह सिद्धांत है तत् अभाव नाम स्वप्नका अभावरूप जो सुषुप्ति सो नाड़ियोंमैं और आत्मामैं होवे है. यातें सर्वका समुच्चय अंगीकार है, विकल्प अंगीकार नहीं. नाडीपुरीतत् प्रवेश विना आत्मामैं प्रवेश संभवे नहीं यातें नाडी और पुरीततमैं गौण और आत्मामैं मुख्य प्रवेश अंगीकार है. 'ततः श्रुतेः' नाम नाडी आदिकोंको सुषुप्तिका स्थान सुना है यातैं उक्त व्यवस्था संभवे है. जो समुच्चय नहीं मानेंगे तौ श्रुतिव्यवस्था नहीं बनेगी. इति ॥ ७ ॥

अतः प्रबोधोऽस्मात् ॥ ८ ॥

अतः । प्रबोधः । अस्मात् । इति प० ।

अर्थ-'अतः' नाम सुषुप्तिको परमात्मामैं होनेसैं 'अस्मात्' नाम परमात्मासैं जीवके प्रबोध नाम उठनेका श्रुतिमैं उपदेश किया है। 'प्रबोधकाले कस्मात् जीवात्मानः समुत्तिष्ठन्ति । परमात्मनः सकाशात् उत्तिष्ठन्ति' जा श्रुति परमात्मासैं प्रबोधको कहे है. जो आत्मासैं अपरको सुषुप्तिका अवस्थान मानेंगे तौ उक्त श्रुतिका बाध होवेगा. इति। सुषुप्तिमैं मिथ्याज्ञानके अभावमात्रसैं ईषत् ब्रह्मप्राप्ति होवे है तो मूलाज्ञानके निवृत्त हुएसैं सकल ब्रह्मप्राप्ति अवश्य होवेगी. इति। सुषुप्तिबोधक श्रुतिका अर्थ-'ताभिः' नाम शरीरमैं अनेक नाडी हैं तिनकरके 'प्रत्यवसृत्य' नाम रोकके 'पुरीतति' नाम नाड़ीमैं सोवे है. यथा अतिबाल और महाराजा और विद्वान् ब्राह्मण 'अतिघ्नीम्' नाम दुःखनाशक आनंद अवस्थाको प्राप्त होकर सोवें हैं. तथा यह सोवे है. इति ॥ ८ ॥

स एव कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ॥ ९ ॥

सः । एव । कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः । इति प० ।

अर्थ-जलराशिमैं एक विंदु जल डालनेसे सो विंदु पुनः निकले नहीं यातें

परमात्माको सुषुप्तिका स्थान कहिना असंगत है, जा पूर्वपक्षसैं कहे हैं—जो जीव सोवे है 'स' नाम सोई उठे है अपर नहीं; तहां येई पंच हेतु हैं. दो दिनमैं होनेवाले कर्मको आधा करके सोजाय तो उठकर आधेको करे है. यह कर्मरूप हेतु है? जिस मैंने पूर्वले दिनमैं काशीनाथको देखा था सो मैं अब मणिकर्णिकामैं स्थित हूं जाविध प्रतिज्ञाका ग्रहण अनुशब्दसैं है, यह द्वितीय हेतु है २. स्मृति तृतीय हेतु है "स वा एष एतस्मिन् सम्प्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वा एव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नाय एव स यत्तत्र किञ्चित् पश्यति अनन्वागतस्तेन भवति असंगो ह्ययं पुरुषः" जा बृहदारण्यक षष्ठाध्याय तृतीय ब्राह्मणगत वाक्यका ग्रहण शब्दपदसैं है. श्रुतिअर्थ—सो विज्ञानमय ज्योतिपुरुष सुषुप्तिमैं स्थित होकर शोकादिकोंसैं रहित होवे है. स्वप्नमैं रतिका और श्रमका अनुभव करके पुण्यपापके फलको देखके सुषुप्तिमैं प्राप्त होवे है. स्वप्नसैं सुषुप्तिका अनुभव करके जागरितसैं स्वप्नको, तासैं सुषुप्तिको गमन करे है. सुषुप्तिसैं स्वप्नको वा जागरितको जो गमन करे है उसका प्रतिन्यायपदसैं ग्रहण है. और प्रतियोनि नाम स्वप्नस्थानको स्वप्नवासते 'आद्रवति' नाम आगमन करे है. सो आत्मा स्वप्नमैं जिस पुण्यपापफलको देखे है, तिस देखनेसैं ताका बंध नहीं होता. इति। यह चौथा हेतु है ४. ज्योतिष्टोमादिका विधिसैं ग्रहण है. जा पंचकारणसैं जो सोवे है सोई उठे है जा निश्चित है, अन्यथा उक्त कारणोंका बाध होवेगा. इति ॥ ९ ॥

अव०—मूर्छाअवस्था सुषुप्तिके अंदर है? वा तासैं भिन्न है? जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं सुषुप्तिके अंतर ग्रहण कियेसैं यह सिद्धांतसूत्र है—

मुग्धेऽर्धसम्पत्तिः परिशेषात् ॥ १० ॥

मुग्धे । अर्द्धसम्पत्तिः । परिशेषात् । इति प० ।

अर्थ—मूर्छामैं ज्ञान होवे नहीं यातैं सो जाग्रत् स्वप्नके अंतर नहीं, मूर्छामैं प्राण और गरमी रहे हैं; यातें वह मरणके अंतर नहीं. मूर्छितके शरीरमैं कंप, भयंकर वदन, निश्चल, उन्मीलित नेत्रादि प्रतीत होवे हैं; सुषुप्तिमैं वैसे नहीं यातें सुषुप्तिके अंदरभी मूर्छा नहीं. किंतु 'परिशेषात्' नाम उक्त सर्व अवस्थावोंके अंदर नहीं होनेसैं मुग्धमैं अर्द्धधर्मोंकी संपत्ति नाम प्राप्तिरूप मुग्धावस्था अतिरिक्त है. सुषुप्तिमैं प्रस्विन्नवदनत्व, निमीलितनेत्रत्व, प्राणगमनागमन, विशेषविज्ञानराहित्यादि जेते धर्म हैं तिनमैं जे विशेष विज्ञानराहित्यादि अर्द्धधर्म ते मूर्छामैं हैं यातें अर्द्धधर्मसंपत्ति मूर्छा अंगीकृत है. इति ॥ १० ॥

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ॥ ११ ॥

न । स्थानतः । अपि । परस्य । उभयलिङ्गम् । सर्वत्र । हि । इति प० ।

अर्थ–अब तत् पदार्थका शोधन करै हैं–"सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदम् अभ्यात्तोऽवाक्यनादरः" इस छांदोग्यके तृतीय प्रपाठकगत श्रुतिविषे ब्रह्मको सविशेष सुना है और 'तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोतेजस्कम् अप्राणम् असुखम् अमात्रम् अनन्तरयाह्यम् न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन" इन बृहदारण्यकके पंचम-अध्यायगत वाक्यनमैं ब्रह्मको निर्विशेष कहा है. तहां उभयवाक्यके अनुसार ब्रह्म उभयस्वरूप है वा एक स्वरूप है ? एकरूप मानेभी सविशेष है, वा निर्विशेष है ? यह संदेह है. पूर्वपक्षमैं श्रुतिअनुसार उभयरूप अंगीकृत है. तहां यह सिद्धांत है—'परस्य' नाम ब्रह्मके 'उभय लिंग' नाम दो रूप स्वतः संभवे नहीं; एक वस्तु एककालमें धर्मवान् और धर्माभाववान् होवे नहीं. 'स्थानतः' नाम उपाधिसैंभी ब्रह्मको उभयरूपतायुक्त नहीं. अग्निसंयोग मात्रसैं जलका उष्ण स्वभाव होवे नहीं किंतु ब्रह्म एकरूप है सोभी निर्विशेष है सविशेष नहीं. 'हि' पद हेतुअर्थक है. 'सर्वत्र' नाम 'अस्थूलम्' इत्यादिक वचनोंमैं सविशेषका निषेध करके निर्विशेषका उपदेश किया है यातैं निर्विशेष एकरूप ब्रह्म है. इति । श्रुतिअर्थ–सर्व जगत् जिसकरके व्याप्त होवे सो 'अभ्यात्त' कहिये । वाक्यरहित अवाकी अंगीकृत है । ईश्वर नित्य तृप्त है, यातैं अनादर है अर्थात् संभ्रमरहित है, इति । हे गार्गि ! अक्षरमैं सर्व ओतप्रोत है यह ब्राह्मण कहे हैं सो अस्थूलसैं भिन्न है इसीतरह आगे जानना चाहिये. इति ॥ ११ ॥

भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ॥ १२ ॥

भेदात् । इति । चेत् । न । प्रत्येकम् । अतत्–वचनात् । इति प० ।

अर्थ–ननु किसी विद्यामैं ब्रह्मके चार पाद हैं; किसी विद्यामैं षोडशकलावान् कहा है; किसी विद्यामैं त्रैलोक्य—शरीरवान् कहा है; यातैं 'भेदात्'

नाम विद्याका भेद होनेसैं ब्रह्मको निर्विशेष कहिना संभवे नहीं, जा शंकासैं कहे हैं 'प्रत्येकम्' नाम उपाधि उपाधिमैं 'अतद्वचनात्' नाम परब्रह्मका अभेद सुना है, यातें शंका असंगत है. इति ॥ १२ ॥

अपि चैवमेके ॥ १३ ॥

अपि । च । एवम् । एके । इति प० ।

अर्थ–'अपि च' नाम किंच कोई शाखावान् 'एवम्' नाम भेदकी निंदा करके ब्रह्मका अभेदही कहे हैं. तथाहि–'मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन' जा कठवाक्यमैं कठवान् अभेदही कहे हैं. ब्रह्म शुद्धमनकरके प्राप्त होनेयोग्य है, तिसके प्राप्तहुए ब्रह्म तासैं भिन्न रंचक नहीं, यह श्रुति–अक्षरार्थ है. इति ॥ १३ ॥

अव०–ननु सगुणनिर्गुणबोधक उभयश्रुतिके विद्यमान होते केवल निर्गुणमैं हठ कैसे है? जा शंकासैं कहे हैं–

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ॥ १४ ॥

अरूपवत् । एव । हि । तत्प्रधानत्वात् । इति प० ।

अर्थ–'अस्थूलम्' 'अनणु' इत्यादि निषेधरूप शास्त्र 'तत्' नाम निर्गुण ब्रह्मसैं प्रधान है यातें 'अरूपवत्' नाम रूपादिकोंसैं रहित निर्विशेषरूपही ब्रह्म है; सविशेष नहीं, इति ॥ १४ ॥

अव०–ननु सगुणबोधक वाक्यनकी क्या गति होवेगी? जा शंकासैं कहे हैं–

प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् ॥ १५ ॥

प्रकाशवत् । च । अवैयर्थ्यात् । इति प० ।

अर्थ–यथा सूर्यादि प्रकाश वक्र ऋजु काष्ठादि उपाधिसैं वक्रकी नाईं व ऋजुकी नाईं होवे है तथा ब्रह्मभी पृथिवीआदिक उपाधिके वशसैं तत् तत् उपाधिकी नाईं होवे है; सो उपाधि–आकारताही सगुणबोधक वाक्यनकी गति है यातें ताको 'अवैयर्थ्यात्' नाम अनर्थकता नहीं. इति ॥ १५ ॥

आह च तन्मात्रम् ॥ १६ ॥

आह । च । तत्–मात्रम् । इति प० ।

अर्थ-'स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽवाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरे अयमात्माऽनन्तरोऽवाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव' जा बृहदारण्यकके षष्ठ अध्यायगत श्रुति 'तन्मात्रम्' नाम चैतन्य एकरस निर्विशेपरूपसैं ब्रह्मको 'आह' नाम कहे है. श्रुतिअर्थ-यथा सैन्धवघन नाम लवणमूर्तिविशेप अंतरवाह्यसैं विलक्षण रसरहित सर्व लवणरूपही लोकमैं प्रसिद्ध है, तथा यह आत्मा अंदरवाहिरसैं भेदरहित सर्वस्वप्रकाश चैतन्य एकरूप स्थित है. इति ॥ १६ ॥

दर्शयति चाथोऽपि स्मर्यते ॥ १७ ॥

दर्शयति । च । अथो । अपि । स्मर्यते । इति प० ।

अर्थ-"अथात आदेशो नेति नेति" इत्यादि श्रुति निपेधमुखसैं ब्रह्मको 'दर्शयति' नाम दिखावे है. पंचभूत-उत्पत्ति-अनंतर अथपदका अर्थ हैं. आदेशनाम उपदेशका है. सूत्रमैं जो अथपद है तिसका तथा अर्थ है. तथा नाम निषेधमुखकरके ब्रह्मका 'स्मर्यते' नाम स्मरण भी किया है. "ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते" इत्यादिक स्मृतिमैं स्मरण किया है; यातें ब्रह्म निर्विशेष है. इति ॥ १७ ॥

अत एव चोपमासूर्यकादिवत् ॥ १८ ॥

अतः । एव । च । उपमा । सूर्यकादिवत् । इति प० ।

अर्थ-उक्तविधिसैं ब्रह्मको एक निर्विशेप सिद्ध किया है, 'अतः' नाम निर्विशेष होनेसैं औपाधिक सविशेषको ग्रहण करके 'जलसूर्यादिवत् उपमा' नाम दृष्टांत ग्रहण किया है. यथा जलमैं 'सूर्यकः' नाम सूर्यका प्रतिविंव होवे है, आदिपदसैं यथा चंद्रप्रतिविंव होवे है तथा एकही आत्मा उपाधिसैं अनेकरूप होवे है. तथाहि श्रुतिः—"यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान् अपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन् । उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा" इति । अर्थ-यथा ज्योतिःस्वभाव सूर्य एकभी तत् तत् उपाधिकरके अनेकप्रकारका होवे है, तथा यह प्रकाशस्वरूप, कूटस्थ, नित्य, एकरूप आत्मा भिन्न भिन्न शरीरोंमैं प्राप्तहुआ उपाधिकरके भेदरूप होवे है. इति । उक्त दृष्टांतसैंभी ब्रह्म निर्विशेषरूप है. इति ॥ १८ ॥

शंकासूत्र ।

अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम् ॥ १९ ॥

अम्बुवत् । अग्रहणात् । तु । न । तथात्वम् । इति प० ।

अर्थ–यथा जल–सूर्यादि मूर्तपदार्थोंसैं भिन्न है और दूरदेशगत है सो प्रतिबिंबकी उपाधिसैं प्रतीत होवे है, और आत्मा व्यापक है यातैं 'अम्बुवत्' नाम जलवत् आत्माकी उपाधि आत्मासैं दूरदेशगत 'अग्रहणात्' नाम ग्रहण होवे नहीं; यातैं 'तथात्वम्' नाम सूर्यादितुल्यता आत्माको संभवे नहीं. इति१९

उत्तरसूत्र ।

वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् ॥ २० ॥

वृद्धिह्रासभाक्त्वम् । अन्तर्भावात् । उभयसामञ्जस्यात् । एवम् । इति प० ।

अर्थ–यथा सूर्यका जलके अंदर जो प्रतिबिंब तामैं जल–उपाधिधर्म वृद्धिह्रासादि 'भाक्त्वम्' नाम गौण हैं, वास्तव नहीं; 'एवम्' नाम तथा अविकारी परमात्माका जो देहादि–उपाधिके विषे अंतर्भाव तासैं देहगत वृद्धिह्रासादिक आत्मामैं गौण हैं, वास्तव नहीं; इतने अंशमैं 'उभय' नाम दृष्टांत दार्ष्टांत उभयही 'सामञ्जस्यात्' नाम समीचीन हैं यातैं उक्त शंका असंगत है. सूर्यादि दृष्टांतकी सर्वअंशमैं तुल्यता संभवे नहीं. सर्वअंशमैं तुल्यता मानैं तौ दृष्टांतभावभंग होगा. इति ॥ २० ॥

दर्शनाच्च ॥ २१ ॥

दर्शनात् । च । इति प० ।

अर्थ–परब्रह्मका प्रतिबिंबरूपसैंही देहअंतर प्रवेश 'दर्शनात्' नाम श्रुतिमैं देखा है. तथाहि—"पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः । पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशदिति" अर्थ–परमेश्वरने भूआदिक लोकनको रचकर द्विपदवान् शरीर उत्पन्न किये और चारपदवान् शरीर रचे. सो ईश्वर

पूर्व लिंगशरीर होकर शरीरोंमैं प्रवेश करताभया. इति। यातें निर्विशेष चैतन्य एकरस ब्रह्म है. इति ॥ २१ ॥

अव०–बृहदारण्यकके चतुर्थ अध्यायमैं यह कहा है–'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च' यह कहकर अंतमैं यह कहा है–'अथात आदेशो नेति नेति नहि एतस्मात् इति न इति अन्यत् परम् अस्ति अथ नामधेयं सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यं न इति' इति। तहां 'नेति नेति' जा वाक्यसैं प्रपंच ब्रह्म उभयका निषेध अंगीकृत है ? वा प्रपंचका निषेध है ? वा ब्रह्मका निषेध है ? यह संदेह है. प्रपंच प्रत्यक्ष सिद्ध है, यातें ताका निषेध तो संभवे नहीं किंतु ब्रह्मका निषेध तहां अंगीकृत है, यह पूर्वपक्ष है; तहां यह उत्तरका सूत्र है–

प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः २२

प्रकृतैतावत्त्वम् । हि । प्रतिषेधति । ततः ।
ब्रवीति । च । भूयः । इति प० ।

अर्थ–ब्रह्मके जे दो मूर्तामूर्त रूप तेही 'प्रकृत' नाम प्रसंगमैं 'एतावत्त्वम्' नाम परिच्छिन्नरूपसे प्राप्त हैं. तिन उभयरूपनकाही 'नेति नेति' श्रुति 'प्रतिषेधति' नाम निषेध करे है. वाक्यमैं जो 'इति' पद है सो प्रसंगमैं प्राप्तका स्मरण करावे है; ब्रह्म प्रसंगमैं प्रधान नहीं यातें श्रुति ब्रह्मका निषेध नहीं करे है. 'ततः' नाम प्रपंचनिषेधसैं अनंतर 'भूयः' नाम पुनः श्रुति 'ब्रवीति' नाम कहे है. तथाहि—'न हि एतस्मात् इति न इति अन्यत् परम् अस्ति इति' इसका यह अर्थ है 'नेति नेति' जा वाक्यकरके उपदेश किया जो ब्रह्म 'एतस्मात्' नाम तिस ब्रह्मसैं 'अन्यत्' नाम भिन्न रंचक नहीं; किंतु ब्रह्मही पर वस्तु है. इति । उक्त वाक्यार्थसैं 'नेति नेति' वाक्य ब्रह्मका निषेध नहीं करे है, यह निश्चित है. इति ॥ २२ ॥

अव०–ननु ब्रह्मकी उपलब्धि कैसे नहीं होती ? जा शंकासैं कहे हैं:–

तदव्यक्तमाह हि ॥ २३ ॥

तत् । अव्यक्तम् । आह । हि । इति प० ।

अर्थ–'तत्' नाम ब्रह्म अव्यक्त है अर्थात् श्रुतिभिन्न प्रमाणका अविषय है.

'नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा' जा कठवाक्य अपरप्रमाणका अविषय 'आह' नाम कहे है; यातें ग्रहणके योग्य नहीं. इति ॥२३॥

अव०—जो सर्वदा ग्रहण नहीं होवेगा तो मोक्ष नहीं होवेगी जा शंकाको निषेध करे हैं:—

अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ २४ ॥

अपि । संराधने । प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । इति प० ।

अर्थ—इस आत्माको 'संराधने' नाम समाधि—अवस्थामें कृतार्थ योगीजन देखे हैं; यह 'प्रत्यक्ष' नाम श्रुति और 'अनुमान' नाम स्मृतिसें प्रतीत होवे हैं. अपिशब्दसें प्रत्यक्षकरकेभी विश्वासके योग्य है. तहां कठचतुर्थवल्लीगत यह श्रुति है—"पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" इति । अर्थ—परमात्माने इन्द्रियोंको अनात्मविषयक रचा है; यातें इन्द्रियां बाह्यही देखे हैं, अन्तरात्माको नहीं देखे हैं. कोई विवेकी जितेन्द्रिय मोक्ष—इच्छा करता हुआ प्रत्यक् आत्माको समाधि—अवस्थामें देखे है. इति । स्मृतिः—'यं विनिद्रा जितश्वासाः सन्तुष्टाः संयतेन्द्रियाः । ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः' इति ॥ २४ ॥

अव०—ननु जीव ईश्वरको ध्याता व ध्येयरूप माननेसें भेद सिद्ध होवेगा, जा शंकाका उत्तर—

प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् २५

प्रकाशादिवत् । च । अवैशेष्यम् । प्रकाशः । च । कर्मणि । अभ्यासात् । इति प० ।

अर्थ—यथा सूर्यका प्रकाश अंगुल्यादि उपाधिरूप कर्ममें भिन्नकी नांई और वक्रकी नांई भान होवे है, तो भी वास्तवसें एकरूप है, तथा 'प्रकाशः' नाम आत्माभी ज्ञान ध्यानादि कर्मरूप उपाधिमें भिन्नकी नांई भान होवे है, परंतु वास्तवसें 'अवैशेष्यम्' नाम एकरूप है. 'अभ्यासात्' नाम 'तत्त्वमसि' जा अभेदके अभ्याससें उक्त अर्थही समीचीन है. इति ॥ २५ ॥

अतोऽनन्तेन तथाहि लिङ्गम् ॥ २६ ॥

अतः । अनन्तेन । तथाहि । लिङ्गम् । इति प० ।

अर्थ—'अतः' नाम भेदको औपाधिक होनेसैं ज्ञानसैं भेदके निवृत्त हुएपर जीव 'अनन्तेन' नाम परमात्मासैं अभेदको प्राप्त होवे है. 'तथाहि लिङ्गम्' नाम उक्त अर्थबोधक श्रुति अनेक हैं. तथाहि—"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" यह बृहदारण्यकके सप्तमाध्यायगत श्रुति उक्त अर्थका बोधक लिंग है. इति ॥ २६ ॥

अव०—स्वमतशुद्धि-अर्थ भेदाभेद—पक्ष कहे हैं—

उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत् ॥ २७ ॥

उभयव्यपदेशात् । तु । अहिकुण्डलवत् । इति प० ।

अर्थ—' उभय ' नाम ध्याताध्येयरूपसैं भेदाभेदको श्रुति ' व्यपदेशात् ' नाम कहे है, यातैं जीवईश्वरका भेदाभेद है. यथा अहिकुंडलका भेदाभेद है, अहित्वधर्मसैं अभेद है, कुंडलत्वधर्मसैं भेद है, तथा जीवईश्वरका भेदाभेद है. ' तु ' सिद्धांत—विलक्षणताका बोधक है. इति ॥ २७ ॥

अव०—धर्मभेदसैं भेदाभेद कहकर एकधर्मावच्छेदसैं भेदाभेद कहे हैं—

प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ॥ २८ ॥

प्रकाशाश्रयवत् । वा । तेजस्त्वात् । इति प० ।

अर्थ—यथा सूर्यका प्रकाश और तत्—आश्रय जो सूर्य ता उभयका अत्यंत भेद नहीं; 'तेजस्त्वात्' नाम यथा तेजस्त्वधर्म प्रकाशमैं है, तथा सूर्यमैं है; यातैं तेजस्त्वको उभयमैं तुल्य होनेसैं तिनका भेद नहीं, तथापि भिन्न भिन्न प्रतीत होवे हैं; तथा जीव ईश्वरकाभी भेदाभेद है. इति ॥ २८ ॥

अव०—सिद्धांत कहे हैं—

पूर्ववद्वा ॥ २९ ॥

पूर्ववत् । वा । इति प० ।

अर्थ—पूर्व जो औपाधिकभेद और वास्तव अभेद कहा है, सोई सिद्धांत अंगीकृत है. इति ॥ २९ ॥

प्रतिषेधाच्च ॥ ३० ॥

प्रतिषेधात् । च । इति प० ।

अर्थ–'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' इत्यादिक श्रुति परमात्मासैं भिन्न चेतनका 'प्रतिषेधात्' नाम निषेध करे है और "नेति नेति" इत्यादिक श्रुति प्रपंचका निषेध करे है, यातें ब्रह्म अद्वितीय है, यह सिद्धांत है; यातें परमात्मा निर्विशेष है, इति सिद्धम् ॥ ३० ॥

पूर्वपक्षसूत्रम् ।

परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ॥ ३१ ॥

परम् । अतः । सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः । इति प० ।

अर्थ–ब्रह्मसैं भिन्न वस्तु है वा नहीं जा संदेहसैं पूर्वपक्षी कहे है–'अतः' नाम ब्रह्मसैं 'परम्' नाम भिन्न वस्तु है. तथाहि–'अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसम्भेदाय' जा छांदोग्यश्रुतिमैं ब्रह्मको सेतु कहा है यातें यह अनुमान है कि, ब्रह्म सद्वितीय है, सेतु होनेसैं 'रामसेतुवत्' इति । "ब्रह्म चतुष्पात्" जा श्रुतिमैं उन्मान कहा है. 'इतना यह है' इस परिच्छिन्न कथनका 'उन्मान' पदसैं ग्रहण है. चारों दिशा एक पाद है १; पृथिवी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, समुद्र ये चारों द्वितीय पाद है २; अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, विद्युत् ये चारों तृतीय पाद है ३; चक्षु, श्रोत्र, वाक् मन, ये चारों चतुर्थ पाद है ४; उपासनाके अर्थ ये ब्रह्मके पाद कहे हैं. "सुषुप्तौ प्राज्ञेनात्मना शारीरः सम्परिष्वक्तः" इत्यादि श्रुतिमैं सम्बन्ध कथन किया है. आदित्यमैं ईश्वरका उपदेश करके तिससैं भिन्न नेत्रोंमैं उपदेश किया है यातें सेतु १, उन्मान २, संबंध ३, और भेद ४, जा चार हेतुसैं ब्रह्म सद्वितीय है. इति ॥ ३१ ॥

सिद्धान्तः।

सामान्यात्तु ॥ ३२ ॥

सामान्यात् । तु । इति प० ।

अर्थ–'तु' पूर्वपक्षनिषेधक है. मृत्तिका काष्ठरचनाविशेषमैं सेतुशब्द रूढ है. तत्-रूप सेतु ब्रह्मको कहना संभवे नहीं किंतु यथा सेतु जलका व्यवस्थापक है तथा ब्रह्मभी सकल जगत्-मर्यादाका व्यवस्थापक है, यातें प्रसिद्ध सेतुके 'सामान्यात्' नाम तुल्य सेतु कथन किया है; यातें सेतुदोष नहीं. इति ३२

बुद्ध्यर्थः पादवत् ॥ ३३ ॥

बुद्ध्यर्थः । पादवत् । इति प० ।

अर्थ–'ब्रह्म चतुष्पात्' इत्यादि श्रुतिमैं पादकथन मुख्य नहीं किंतु 'बुद्धि' नाम उपासनाके अर्थ है. यथा ब्रह्मकी प्रतीक जो मन ताके वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र ये चार उपासना–अर्थ पाद कहे हैं तत्-पादवत् ब्रह्मके पाद कहे हैं. इति ३३

स्थानविशेषात्प्रकाशादिवत् ॥ ३४ ॥

स्थानविशेषात् । प्रकाशादिवत् । इति प० ।

अर्थ–सुषुप्तिमैं ब्रह्मसैं जीवका जो सम्बन्ध है सो घटपटकें सम्बन्धसमान नहीं; किंतु 'स्थानविशेषात्' नाम बुद्धिआदिके उपाधिराहित्यसैं है. विशेष विज्ञान उपाधिके लय हुएपर रहता नहीं, यातें अभिव्यक्त उपाधिकरके जो भेद सो रहता नहीं; यातें ब्रह्मसैं जीवका सुषुप्तिमैं सम्बन्ध कहा जाता है; और आदित्यका जो पुरुषसैं भेद है सोभी नेत्रादित्यरूप स्थानविशेषकी अपेक्षासैं है. 'प्रकाशादिवत्' नाम यथा सूर्यका प्रकाश अंगुलियोगसैं घटादिउपाधिविशेषकरके असम्बद्ध इव भिन्न इव भान होवे है, उपाधिके दूर हुए सम्बद्ध अभिन्न भान होवे है, 'आदि' पदसैं आकाशका ग्रहण है, तथा ब्रह्म भान होवे है, यातें ब्रह्मसैं जीवका सम्बन्ध और भेद औपाधिक है, स्वाभाविक नहीं. इति ॥ ३४ ॥

उपपत्तेश्च ॥ ३५॥

उपपत्तेः । च । इति प० ।

अर्थ–किंच परमात्मासैं जो जीवका सम्बन्ध है सो मुख्य नहीं किंतु "स्वमपीतो भवति" जा छांदोग्यके षष्ठ प्रपाठकगत श्रुति स्वरूपकोही सम्बन्ध कहे है. स्वरूप सर्वदा बना रहे है यातें तहां गौणसम्बन्ध है, तथा भेदभी मुख्य नहीं, यह अनेक श्रुति कहे हैं. इति ॥ ३५ ॥

अव०–अद्वितीयसाधक अपर हेतु कहे हैं—

तथाऽन्यप्रतिषेधात् ॥ ३६ ॥

तथा । अन्यप्रतिषेधात् । इति प० ।

अर्थ–यथा सेतुआदिक हेतुनसैं ब्रह्मसैं भिन्न वस्तु सिद्ध हुआ नहीं तथा

"अथातोऽहंकारादेश एवाहम् एवाधस्तात् अहम् उपरिष्टात् अहं पश्चात् अहं पुरस्तात् अहं दक्षिणतः अहम् उत्तरतः अहम् एवेदं सर्वम्" इति । इस छांदोग्यके सप्तम प्रपाठकमें आत्मासें भिन्न सर्वका निषेध किया हैं; यातें ब्रह्म अद्वितीयस्वरूप है. इति ॥ ३६ ॥

अव०—ननु जो ब्रह्म अद्वितीय है तो ताको सर्वगत कहिना असंगत है, जा शंकासें कहे हैं—

अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ॥ ३७ ॥

अनेन । सर्वगतत्वम् । आयामशब्दादिभ्यः । इति प० ।

अर्थ–' अनेन ' नाम सेतुआदिकोंके निषेधसें और अपरवस्तुके निषेधसें ' सर्वगतत्वम्' नाम त्रिधापरिच्छेदशून्यत्व सिद्ध हुआ है. तहां 'आयामशब्दादिभ्यः' यह हेतु है. 'आयाम' पद व्याप्तिवाचक है. "आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः" इत्यादि श्रुतिका शब्दपदसें ग्रहण है. " नित्यः सर्वगतः स्थाणुः " इत्यादि स्मृतिका आदिपदसें ग्रहण है; यातें अद्वितीय ब्रह्ममें अविरोधक सर्वको ग्रहण करके श्रुतिस्मृतिसें सर्वगतत्व-सिद्धि संभवे है, इति ॥ ३७ ॥

अव०—ननु ब्रह्मको निर्गुण माननेसें ब्रह्म कर्मफलदाता नहीं सिद्ध होवेगा ? जा शंकाका उत्तर कहे हैं—

फलमत उपपत्तेः ॥ ३८ ॥

फलम् । अतः । उपपत्तेः । इति प० ।

अर्थ–जीवको कर्मसें फल होवे है वा ईश्वरसें होवे है? जा संदेहसें सिद्धांत कहे हैं–'अतः' नाम इस परमात्मासेही सर्वको 'फलम्' नाम सुखदुःखादिक होवे हैं, कर्मोंसें नहीं. कर्म जड हैं, तासें फल संभवे नहीं; यातें ईश्वरकोही फलदातृत्व 'उपपत्तेः' नाम संभवे है, यातें सोई फलदाता है. इति ॥ ३८ ॥

श्रुतत्वाच्च ॥ ३९ ॥

श्रुतत्वात् । च । इति प० ।

अर्थ–" स वा एष महानज आत्मा अन्नादो वसुदानो विन्दते

वसु य एवं वेद" जा बृहदारण्यकके षष्ठाध्यायगत वाक्यमैं ईश्वरकोही फलका हेतु सुना है; यातैं ईश्वरही कर्मफलदाता है. इति ॥ ३९ ॥

पूर्वपक्षसूत्रम्।

धर्मं जैमिनिरत एव ॥ ४० ॥

धर्मम्। जैमिनिः। अतः। एव। इति प०।

अर्थ—श्रुतिसैं और युक्तिसैं यथा ईश्वरको फलदाता माना है, तथा 'अतः' नाम श्रुति और युक्तिसैं धर्मको फलदाता जैमिनि आचार्य माने हैं. तथाहि "स्वर्गकामो यजेत" इस विधिका विषय जो यज्ञ ताकों स्वर्गसाधनता सुनी है. ताके निर्वाहार्थ श्रुतिप्रमाणसैं यज्ञकी उत्तरअवस्थारूप अपूर्वता कल्पी चाहिये; यातैं यागादि धर्मही फलदाता हैं, और ईश्वर सर्वमैं साधारण है, यातैं ताको फलदातृत्व संभवे नहीं. इति ॥ ४० ॥

उत्तरसूत्रम्।

पूर्वं तु बादरायणो हेतुत्वव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥

पूर्वम्। तु। बादरायणः। हेतुत्वव्यपदेशात्। इति प०।

अर्थ—बादरायण आचार्य 'पूर्वम्' नाम पूर्वउक्त ईश्वरकोही फलदाता माने हैं:—'तु' उक्त शंकानिषेधार्थ है. "एष एव साधु कर्म कारयति। अन्नादो वसुदानः"। इत्यादिक श्रुति और "लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हितान्" इत्यादिक स्मृति परमेश्वरकोही धर्माधर्मफलका 'हेतुत्व' नाम कारण 'व्यपदेशात्' नाम कथन करे हैं; यातैं तत्तत्कर्मसापेक्ष परमात्मासैंही सर्वफलप्राप्ति होवे है. इति सिद्धम् ॥ ४१ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥ २ ॥ श्रीरामाय नमोनमः ॥

अथ तृतीयपादप्रारम्भः।

पूर्वपादमैं वाक्यार्थज्ञानका उपयोगी तत्त्वंपदार्थशोधन किया है. इस पादसैं वाक्यार्थ निर्णय करे हैं. इस पादके षट् अधिक साठ सूत्र हैं. तहां षट्

अधिक तीस अधिकरण हैं, तीस सूत्र गुणरूप हैं. अधिकरणरूप सूत्रोंके और गुणरूप सूत्रोंके देखनेका प्रकार यह है. तथाहि–

सङ्ख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	उपासना-अभेद.
२	+	गु०	अग्नि-अभेद.
३	+	गु०	शिरोव्रतविचार.
४	+	गु०	निर्गुणविद्या एक.
५	अ०	+	समान-उपासना-गुण-उपसंहार.
६	अ०	+	प्राणविद्याभेद.
७	+	गु०	प्राणविद्याभेद.
८	+	गु०	वि०
९	अ०	+	उद्गीथविचार.
१०	अ०	+	गुण-उपसंहार.
११	अ०	+	आनन्दादिगुण-उपसंहार.
१२	+	गु०	प्रियादिनिषेध.
१३	+	गु०	आ० उ०
१४	अ०	+	वाक्य-एकसिद्धि.
१५	+	गु०	वा०
१६	अ०	+	आत्मबोधता.
१७	+	गु०	आ०
१८	अ०	+	जलवासविधान.
१९	अ०	+	गुण-उपसंहार.
२०	अ०	+	पूर्वपक्ष.
२१	+	गु०	नामव्यवस्था.
२२	+	गु०	उपसंहारनिषेध.
२३	अ०	+	सम्भूति-उपसंहार.
२४	अ०	+	उपसंहारनिषेधं.
२५	अ०	+	वेधादि-उ०निषेध.
२६	अ०	+	पुण्यादिग्रहण-उ०

२७	अ०	+	कर्मविधान.
२८	+	गु०	क०
२९	अ०	+	देवयानविचार.
३०	+	गु०	निर्गुणविद्यामार्गनि०
३१	अ०	+	उपासनामार्ग-उ०
३२	अ०	+	ज्ञानिजन्मनिषेध.
३३	अ०	+	गुण-उ०
३४	अ०	+	वेद्य एक, विद्या एक.
३५	अ०	+	ए०
३६	+	गु०	वेद्य एक, विद्या एक.
३७	अ०	+	व्यतिहार-उ०
३८	अ०	+	सत्य विद्या एक.
३९	अ०	+	सत्यकामादि-उ०
४०	अ०	+	प्राणाग्निहोत्रविचार.
४१	+	गु०	प्रा०
४२	अ०	+	अङ्ग-उपासनावि०
४३	अ०	+	पुरोडाशवि०
४४	अ०	+	मन—आदिविचार.
४५	+	गु०	म०
४६	+	गु०	म०
४७	+	गु०	म०
४८	+	गु०	म०
४९	+	गु०	म०
५०	+	गु०	म०
५१	+	गु०	म०
५२	+	गु०	म०
५३	अ०	+	देह-आत्मापूर्वपक्ष.
५४	+	गु०	तत्-निषेध
५५	अ०	+	अङ्ग-उपासनावि०
५६	+	गु०	अ०

५७	अ०	+	उपासनाविधान.
५८	अ०	+	एक उपास्य-उपासनाभेद.
५९	अ०	+	उपासनाविकल्प.
६०	अ०	+	इच्छासे समुच्चय.
६१	अ०	+	प्रतीक-इच्छासैं निषेध.
६२	+	गु०	पूर्वपक्ष
६३	+	गु०	पू०
६४	+	गु०	पू०
६५	+	गु०	समुच्चयनिषेध.
६६	+	गु०	अ०
	३६	३०	

अव०—सगुण विद्या अंतःकरणशुद्धिद्वारा वाक्यार्थज्ञानका साधन है यातें या पादसैं सगुणबोधक वाक्यार्थविचार करे हैंः—तहां प्रथम सगुण ब्रह्मकी पंचाग्निप्राणादि उपासनाविषे भेदाभेद विचार करे हैं. तहां प्राण-उपासना और पंचाग्नि-उपासना एक है वा भिन्नाभिन्न है, यह संदेह है. कहूं पंचाग्नि-विद्यामैं षष्ठ अग्नि उपास्य सुना है, कहूं पंचही अग्नि सुने हैं; यातें उपासनाके रूपका भेद होनेसैं उपासनाका भेद है, यह पूर्वपक्ष है. तहां यह सिद्धांत है—

सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्॥ १ ॥

सर्ववेदान्तप्रत्ययम् । चोदनाद्यविशेषात् । इति प० ।

अर्थ—'चोदना' नाम विधि और 'आदि' पदसैं संयोगरूप समाख्या यह सर्व वेदांतमैं 'अविशेषात्' नाम तुल्य है. "यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च" यह छांदोग्यके पञ्चम प्रपाठकके आरंभमैं कहा है और "यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति अपि च येषां बुभूषति य एवं वेद" जा बृहदारण्य-कके षष्ठ अध्यायके आरंभमैं कहा है. इन उभय वाक्यनमैं चोदना और प्रयोजन संयोग अविशेष है, अर्थात् तुल्य है, यातें सर्व वेदांतमैं 'प्रत्ययम्' नाम प्रतीयमान उपासना एक है, भिन्न भिन्न नहीं. इति ॥ १ ॥

भेदान्नेति चेन्नैकस्यामपि ॥ २ ॥

भेदात् । न । इति । चेत् । न । एकस्याम् । अपि । इति प० ।

अर्थ—ननु 'भेदात्' नाम छांदोग्यमैं पंचाग्नि उपास्य मानी हैं, बृहतमैं प्रसिद्ध अग्नि मिलाकर पट् अग्नि उपास्य मानी हैं, यातें उभय शाखामैं पंचाग्नि-विद्याका भेद मानना चाहिये, 'इति चेत्' नाम उक्त शंका करें तो 'एकस्याम्' नाम एक विद्यामैं रूपभेद संभवे नहीं, यातें शंका असंगत है. षष्ठ अग्निका छांदोग्यमैं उपसंहार अंगीकृत है. इति तात्पर्यम् ॥२॥

अव०—"तदेतदृचाऽभ्युक्तं क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः । स्वयं जुह्वते एकर्षिंश्रद्धावन्तः तेषामेवैषां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवत् यैस्तु चीर्णम् । तदेतत् सत्यं ऋषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते" जा तृतीय मुंडकसमाप्तिमैं कहा है. अर्थ—यह विद्या ऋचा नाम मंत्रकरके कही है कि जे क्रियावान् हैं, श्रोत्रिय हैं, श्रद्धावान् हुए एकऋषि नाम अग्निका सेवन करे हैं और ब्रह्मनिष्ठ हैं तिन पात्ररूपोंके प्रति ब्रह्मविद्याको कहे. जे शिरमैं अग्निधारणरूप शिरोव्रत करें तिनके प्रति कहे. इस सत्य अक्षरको अंगिरा नाम ऋषिने शौनकप्रति कहा था. इस ग्रंथको अचीर्णव्रत नहीं अध्ययन करे. इति । उक्तवाक्यमैं मुंडक—अध्ययनमैं व्रतका नियम सुना है, अपर उपनिषद् अध्ययनमैं नहीं सुना; यातें मुंडकविद्यासैं अपरविद्याका भेद है, जा शंकाका सूत्रकार उत्तर कहे हैं—

स्वाध्यायस्य तथात्वेन हि समाचारेऽधिकाराच्च सववच्च तन्नियमः ॥ ३ ॥

स्वाध्यायस्य । तथात्वेन । हि । समाचारे । अधिकारात् । च । सववत् । च । तत्—नियमः । इति प० ।

अर्थ—उक्त शिरोव्रतरूप धर्म 'स्वाध्यायस्य' नाम वेदपठनका अंग है, विद्याका अंग नहीं. स्वाध्यायकाही 'तथात्वेन' नाम अंगकरके 'समाचारे' नाम वेदव्रत उपदेशबोधक ग्रंथमैं शिरोव्रतको अथर्वणवान् वेदव्रतकरके माने हैं, यातें शिरोव्रत मुंडक—अध्ययनका अंग है, मुंडक उक्तविद्याका अंग नहीं, कि 'अधिकारात् च' इसका यह अर्थ है—"नैतदचीर्णव्रतोऽधीते" यह

जो मुंडकवाक्य है, इसमें ' एतत् ' पद मुंडकग्रंथका वाचक है. ' अधीते ' पद अध्ययनबोधक है. इस ग्रंथको व्रतरहित नहीं अध्ययन करे यह उक्त वाक्यका अर्थ है, यातें ' आधिकारात् ' नाम ' एतत् ' शब्दसैं चकारकरके अधीतशब्दसैं शिरोव्रत अध्ययनकाही अंग है. ' सववत् ' यह तहां दृष्टांत है. सौर्यादि सप्त होमोंकी संज्ञा सव है. ते पूर्वमीमांसामें प्रसिद्ध हैं. तिनका त्रेताग्निसे असम्बन्ध है, अथर्वण उक्त एक अग्निसैं संबंध है; यातें यथा तिनका अथर्वणअग्निसैं नियम है तथा ' एतत् ' शब्दसैं अधीतपदसैं मुंडक अध्ययनमैं ही ' तत् ' नाम शिरोव्रतका नियम है. इति ॥ ३ ॥

दर्शयति च ॥ ४ ॥

दर्शयति । च । इति प० ।

अर्थ-" सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यत् विदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि " जा कठकी द्वितीयवल्लीगत वाक्य निर्गुण ब्रह्मविद्याकी सर्व एकरूपताही दिखावे है. इति ॥ ४ ॥

अव०-उक्त विचारका प्रयोजन कहे हैं—

उपसंहारोऽर्थाभेदात् विधिशेषवत् समाने च ॥ ५ ॥

उपसंहारः । अर्थाभेदात् । विधिशेषवत् । समाने । च । इति प० ।

अर्थ-सर्व शाखाओंमें एक उपासना माननेसेभी एक शाखागतविद्यामैं जितने गुण कहे होवें उनसैं अपरशाखामैं अधिक गुण कहे होवें तो तिन अधिक गुणोंका दूसरी शाखामैं उपसंहार किया चाहिये वा नहीं ? यह इसमैं संदेह है. जितने गुण इस शाखामैं सुने हैं तिनसैंही आकांक्षा शांत हुएपर उपसंहारका कुछ प्रयोजन नहीं, यह पूर्वपक्ष है. तहां यह सिद्धांत है कि 'अर्थ' नाम उपास्य गुणोंकरके सिद्ध होने योग्य जो उपासनारूप अर्थ सो सर्व शाखामैं 'अभेदात्' नाम अभिन्न है अर्थात् एक है, यातें 'समाने' नाम उपासना एकमें गुणोंका उपसंहार कर्तव्य है. ' विधि ' नाम यथा अग्निहोत्र सर्वशाखामैं एक है तिसके ' शेष ' नाम अंगोंका उपसंहार होवे है, तथा उपासनामैं कर्तव्य है. इति ॥ ५ ॥

अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ॥ ६ ॥

अन्यथात्वम् । शब्दात् । इति । चेत् । न । अविशेषात् । इति प० ।

अर्थ–इस सूत्रमैं पूर्वपक्ष सिद्धांतीका है, सिद्धांत पूर्वपक्षीका है. बृहदारण्यकमैं उद्गीथका कर्ता जो प्राण ताको उपास्य कहा है और छांदोग्यमेंभी प्राण उपास्य कहा है, तहां उभयविद्याओंका भेद है वा अभेद है? जा संदेहसैं यह पूर्वपक्ष है. 'अन्यथात्वम्' नाम भिन्न भिन्न आकार प्राणोंका उभय शाखाओंमैं कहा है. बृहत्मैं उद्गीथका कर्ता कहा है. छांदोग्यमें उद्गीथका कर्म कहा है. 'शब्दात्' नाम "त्वं न उद्गाय। तम् उद्गीथं उपासांचक्रिरे" जा उभयश्रुतियोंसैं निश्चित है यातें विद्याका भेद है. इति । तहां यह पूर्वपक्षीका सिद्धांत है. "अविशेषात्" नाम देवअसुरविवादादिक अनेक अर्थ उभयशाखाओंमैं तुल्य हैं यातें विद्याका भेद नहीं. छांदोग्यमें जो प्राणको कर्म कहा है सो लक्षणसैं कर्ता मानना चाहिये यातें विद्या एक है. इति ॥ ६ ॥

सिद्धांत ।

न वा प्रकरणभेदात्परोवरीयस्त्वादिवत् ॥ ७ ॥

न । वा । प्रकरणभेदात् । परोवरीयस्त्वादिवत् । इति प० ।

अर्थ–'वा' पद निश्चयार्थक है. प्रकरणका उभयशाखाओंमैं 'भेदात्' नाम भेद है, यातें विद्या एक नहीं. तथाहि–छांदोग्यमैं 'ओम् इति एतत् अक्षरम् उद्गीथम् उपासीत' जा आरंभमैं उद्गीथके अवयवको उद्गीथत्वरूपसैं उपास्य कहकर "य एवायं मुख्यः प्राणः तम् उद्गीथम् उपासीत" जा उत्तरवाक्यमैं प्राणकोभी उद्गीथ कथन किया है. और बृहत्मैं "त्वं न उद्गाय" जा वाक्यमैं सामउद्गीथभक्तिका प्राणको कर्ता कहा है, यातें प्रकरणभेदसैं उभय विद्याओंका भेद है. यथा छांदोग्यके तृतीय प्रपाठकके नवमें खंडमें यह कहा है–"स एव परोवरीयान् उद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकान् जयति य एतदेवं विद्वान् परोवरीयांसम् उद्गीथम् उपास्ते।" इति । इस वाक्यमैं परत्व वरीयस्त्वादि गुणवान् उपासनाका विधान किया है इससैं हिरण्यश्मश्रुत्वादि गुणविशिष्ट उद्गीथकी उपासना भिन्न है तथा प्रसंगमैं विद्याका भेद है. इति ॥ ७ ॥

संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तु तदपि ॥ ८ ॥

संज्ञातः । चेत् । तत् । उक्तम् । अस्ति । तु । तत् । अपि । इति प० ।

अर्थ–ननु उद्गीथविद्या जा ' संज्ञातः ' नाम संज्ञाको उभयशाखाओंमैं एक होनेसैं विद्या एक है. इति ' चेत् ' नाम उक्त शंका करें तो 'तत्' नाम उत्तर ' उक्तम् ' नाम पूर्व कह दिया है. संज्ञाकरण पौरुषेय है यातें सो विद्या भेदका साधक नहीं. ' तत् ' नाम संज्ञा एकत्वभिन्न उपासनाकोभी संभवे है. ' अपि ' शब्दसैं इसमैं अपर दृष्टांत अंगीकृत है. यथा एक काठकग्रंथमैं भिन्न भिन्न कर्मनकी काठक यह एक संज्ञा है, तथा संज्ञा संभवे है; यातें विद्याका भेद है, एक नहीं. इति ॥ ८ ॥

व्याप्तेश्च समञ्जसम् ॥ ९ ॥

व्याप्तेः । च । समञ्जसम् । इति प० ।

अर्थ–" ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" जा छांदोग्यवाक्यमैं ओंकारसैं उद्गीथका समानाधिकरण प्रतीत होवे है. सो नाममैं ब्रह्मदृष्टिवत् अध्यासरूप है वा " यत् रजतं सा शुक्तिः" इसकी नांई अपवादरूप है ? वा 'भूसुरो ब्राह्मणः' जाविध तुल्यधर्मकी प्रतीति है ? वा ' नीलोत्पलम् ' जाविध विशेषणविशेष्यभाव है ? जा संदेहहुए पर यह सिद्धांत है कि–ओंकार प्रतिऋचा प्रतिअनुवाक् प्रतिसाम आदि अंतमैं व्याप्त है; यातें कौन ओंकार उपास्य है ? जा आकांक्षा हुएसैं ' ओम् इति एतत् अक्षरम् उद्गीथम् उपासीत ' यह आज्ञा है. इसमैं ओंकारका उद्गीथ विशेषण अंगीकृत है; यातें विशेषणको ' समञ्जसम् ' नाम समीचीन होनेसैं अपर त्रय पक्ष अंगीकृत नहीं. इति ॥ ९ ॥

सर्वाभेदादन्यत्रेमे ॥ १० ॥

सर्वाभेदात् । अन्यत्र । इमे । इति प० ।

अर्थ–" प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च " जा पंचमप्रपाठकमैं श्रेष्ठगुणयुक्त प्राणोंको उपास्य कहकर आगे यह कहा है–"वाग्वाव वसिष्ठः । चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा । श्रोत्रं वाव सम्पत् । मनो ह्वा आयतनम् " यह वाक्यादिकोंमैं वसिष्ठत्वादिक गुण कहे हैं. यह गुण जा शाखामैं नहीं कहे तहां इनका उपसंहार किया चाहिये वा नहीं? जा संदेहसैं कहे हैं 'सर्व' नाम सर्व शाखाओंमैं

प्राणउपासना 'अभेदात्' नाम एक है; यातें 'अन्यत्र' नाम जा शाखामें ते गुण नहीं कहे; तहां; 'इमे' नाम उक्त गुण उपसंहारके योग्य हैं. इति ॥ १० ॥

आनन्दादयः प्रधानस्य ॥ ११ ॥

आनन्दादयः। प्रधानस्य। इति प०।

अर्थ-"आनन्दं ब्राह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानात्" इत्यादिक अनेक वाक्यनसें आनंदत्वादि गुण सुने हैं. तिनका अपर शाखामें उपसंहार किया चाहिये वा नहीं? जा संदेहसें कहे हैं 'प्रधानस्य' नाम ब्रह्मके जे आनंदत्वादि गुण ते जा शाखामें नहीं कहे तहां उपसंहार करे चाहिये. इति ॥ ११ ॥

अव०-ननु तैत्तिरीयमें यह सुना है- "तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणः पक्षः, प्रमोद उत्तरः पक्षः, आनन्द आत्मा; ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" इति। इसमें जे गुण सुने हैं तेभी आनंदादिगुणोंवत् ब्रह्मके धर्म हैं; यातें तिनकाभी सर्वत्र उपसंहार करना चाहिये, जा पूर्वपक्षसें कहे हैं—

प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ॥ १२ ॥

प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिः। उपचयापचयौ। हि। भेदे। इति प०।

अर्थ-उक्त श्रुतिमें प्रियशिरस्त्वादि धर्म कहे हैं तिनके उपसंहारकी सर्वशाखाओंमें अप्राप्ति है. 'भेदे' नाम भेद हुएपर उपचय व अपचय धर्म होवे हैं; अभेद हुएपर नहीं. प्रियादिक धर्म परस्पर उपचय अपचय स्वरूप हैं, अर्थात् तारतम्यरूपसें वर्ते हैं; और भोक्ताकाभी भेद है. ब्रह्म अद्वितीयस्वरूप है यातें ब्रह्मके उपचित अपचित प्रियादिधर्म स्वाभाविक नहीं; यातें अस्वाभाविक धर्मनका ब्रह्मज्ञानार्थ उपसंहार संभवे नहीं. इति ॥ १२ ॥

इतरे त्वर्थसामान्यात् ॥ १३ ॥

इतरे। तु। अर्थसामान्यात्। इति प०।

अर्थ-'अर्थ, नाम प्रतिपाद्य जो ब्रह्म सो 'सामान्यात्' नाम एक है यातें उक्तधर्मनसें इतर जे आनंदादिक धर्म तिनका उपसंहार अवश्य कर्तव्य है. तिनके उपसंहारविना अविद्यानिवृत्ति होवे नहीं. इति ॥ १३ ॥

आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ॥ १४ ॥

आध्यानाय। प्रयोजनाभावात्। इति प०।

अर्थ—कठतृतीयवल्लीमैं यह कहा है—"इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः" इति । इस उक्त श्रुतिमैं वाक्य एक है वा अनेक हैं? जा संदेहसैं कहे हैं. 'आध्यानाय' नाम ध्यानसाध्य साक्षात्कारके अर्थ पुरुषही विषयादिकोंसैं परे अर्थात् सूक्ष्मरूप प्रतिपादन किया है; इंद्रियादिकोंसैं परे कर विषयादिक प्रतिपाद्य नहीं, तिनके प्रतिपादनसैं कुछ प्रयोजन सिद्ध होवे नहीं; यातैं प्रतिपाद्यको एक होनेसैं वाक्य एक है, अनेक नहीं. इति ॥ १४ ॥

आत्मशब्दाच्च ॥ १५ ॥

आत्मशब्दात् । च । इति प० ।

अर्थ—उक्त वाक्यके आगे कठमैं यह वाक्य है—'एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽत्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' इति । इस उत्तरवाक्यमैं पुरुषवाचक आत्माशब्द सुना है; यातैं 'इन्द्रियेभ्यः' यह आत्मबोधक एकही वाक्य है. इति ॥ १५ ॥

आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात् ॥ १६ ॥

आत्मगृहीतिः । इतरवत् । उत्तरात् । इति प० ।

अर्थ—"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" जा ऐतरेयके आरंभमैं वाक्य है. इसमैं आत्माशब्द हिरण्यगर्भका वाचक है वा परमात्माका वाचक है? जा संदेहसैं कहे हैं कि—उक्तवाक्यमैं आत्माशब्दसैं परमात्माका 'गृहीति' नाम ग्रहण है, हिरण्यगर्भका ग्रहण नहीं; 'इतरवत्' नाम यथा—"आत्मन आकाशः सम्भूतः" इत्यादिक उत्पत्तिबोधक अपरवाक्यनसैं आत्मापदसैं परमात्माकाही ग्रहण है और "स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति स इमाँल्लोकानसृजत" जा 'उत्तरात्' नाम इस ऐतरेयके उत्तरवाक्यमैं इच्छापूर्वक कर्तृत्व रूप विशेषण कहा है; सो विशेषण मुख्यताकरके परमात्माविषेही अपरश्रुतिसैं निश्चित है; यातैं आत्मापद परमात्माका बोधक है, हिरण्यगर्भका बोधक नहीं, इति ॥ १६ ॥

अन्वयादिति चेत्स्यादवधारणात् ॥ १७ ॥

अन्वयात् । इति । चेत् । स्यात् । अवधारणात् । इति प० ।

अर्थ–पूर्व उत्तर विचार कियेसें 'अन्वयात्'–नाम प्रजापतिसेंही उक्त ऐतरेयवाक्यका सम्बन्ध है, यातैं सो प्रजापतिकाही वाचक है. 'इति चेत्' नाम यह शंका करें तो 'आत्मा वै इदं०' इस वाक्यमें निश्चयवाचक 'वै'शब्द ग्रहण किया है सो 'अवधारणात्' नाम निश्चय करके उत्पत्तिसें पूर्व परमात्मामेंही समीचीन है, अपरमैं नहीं; यातैं अवधारणासेंभी तहां परमात्माका ग्रहणही 'स्यात्' नाम युक्त है. इति ॥ १७ ॥

कार्याख्यानादपूर्वम् ॥ १८ ॥

कार्याख्यानात् । अपूर्वम् । इति प० ।

अर्थ–बृहदारण्यकके षष्ठ अध्याय प्रथमब्राह्मणमें यह वाक्य हैं–"तत् विद्वांसः श्रोत्रिया अशिष्यन्त आचामन्ति अशित्वा च आचामन्ति एतम् एव तत् अन्नम् अनग्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते तस्मात् एवंवित् अशिष्यन् आचामेत् अशित्वा च आचामेत् एतम् एव तत् अन्नम् अनग्नम् कुरुते" इति । इसका यह अर्थ है– प्राणोंका जलमैं वास कहा है, यातैं प्राणउपासक भोजनसैं पूर्व और पीछे आचमन करें; तिस आचमनसम्बन्धी जलके वाससैं इस प्राणको आच्छादन किया हुआ पूर्वले जन चिंतन करे हैं यातें इस कालमैंभी प्राणउपासक तैसेही चिंतन करें, इति । तहां यह संदेह है कि–आचमन योग्य जलमैं प्राणके वासका ध्यान विधेय है वा आचमन विधेय है? इति । तहां यह सिद्धांत है कि–जलमैंप्राणकेवासका जो ध्यान सो 'अपूर्व नाम प्राण उपासनाका अंग करके विधेय है. 'द्विजो नित्यम् उपस्पृशेत्' जा स्मृतिउक्त विधिसैं सर्व अनुष्ठानका अंग प्रतीत होवे है, यातैं शुद्धिअर्थ– 'कार्य' नाम कर्तव्यताकरके प्राणविद्यामैं प्राप्त आचमनका 'आख्यानात्' नाम कथन है, यातें आचमन विधये नहीं किंतु जलवासही विधेय है, इति ॥ १८ ॥

समान एवं चाभेदात् ॥ १९ ॥

समाने । एवम् । च । अभेदात् । इति प० ।

अर्थ–"स आत्मानम् उपासीत मनोमयं प्राणशरीरं भारूपम्" जा शांडिल्यविद्यामैं मनोमयत्वादिक गुण सुने हैं और "मनोमयोऽयं पुरुषो भाः सत्यः तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहिर्वा यवो वा स एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किञ्च" जा बृहदा-

रण्यकके पञ्चम अध्यायमें गुण सुने हैं. तहां उभयशाखागत विद्या एक है वा भिन्न है ? जा संदेहसैं कहे हैं. मनोमयत्वादिगुणवान् उपास्य उभयशाखाओंमैं 'अभेदात्' नाम एक है, यातें यथा भिन्नशाखामैंएक विद्याविपे गुणोंका उपसंहार होवे हैं तथा 'समाने' नाम एक शाखामैंभी गुणोंका उपसंहार युक्त है. इति ॥ १९ ॥

सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ॥ २० ॥

सम्बन्धात् । एवम् । अन्यत्र । अपि । इति प० ।

अर्थ–बृहदारण्यकके सप्तम अध्यायमैं यह कहा है कि—"य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः। तस्य उपनिपदहम् इति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥ योऽयं दक्षिणे अक्षन् पुरुषः तस्य उपनिषदहम्" यह सत्यविद्यामैं कहा हैं. इति । तहां नामोंकी व्यवस्थासैं ध्यान कर्तव्य है वा नामद्वयका पुरुपनमैं उपसंहार अंगीकृत है ? जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं यह अर्थ है कि—यथा उक्त शांडिल्यविद्यामैं एक शाखामैं भिन्न भिन्न पठन किये गुणोंका एकविद्यात्व संबंधसैं उपसंहार पूर्व कहा हैं 'एवम्' नाम तथा 'अन्यत्रापि' नाम सत्यविद्यामैंभी सत्यत्वसंबंधसैं एक विद्या मानके नामोंका उपसंहार मानना चाहिये. इति ॥ २० ॥

सिद्धांत ।

न वा विशेषात् ॥ २१ ॥

न । वा । विशेषात् । इति प० ।

अर्थ–विद्या एक अंगीकार कियेभी नेत्र और आदित्यरूप स्थान 'विशेषात्' नाम भिन्न भिन्न है, यातें नामद्वयका पुरुषद्वयविपे उपसंहार अंगीकृत नहीं किंतु 'अहम् अहम्' ये उभय पुरुपनके नाम हैं. इति ॥ २१ ॥

दर्शयति च ॥ २२ ॥

अर्थ–छांदोग्यके तृतीयअध्यायमैं "य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते" जा वाक्यमैं आदित्यको पुरुष कहकर "य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते तस्य एतस्य तदेवं रूपं यदमुष्य रूपं यन्नाम

तन्नाम" जा वाक्यमैं नेत्रगतको आदित्यका रूप कहा है. यह अतिदेशभी सत्यविद्या स्थलमैं स्थानके भेदसैं धर्मनका भेद 'दर्शयति' नाम दिखावे हैं; यातें उपसंहार अंगीकृत नहीं. इति ॥ २२ ॥

सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि चातः ॥ २३ ॥

सम्भृतिद्युव्याप्तिः । च । अतः । इति प० ।

अर्थ-" ब्रह्मज्येष्ठा वीर्या सम्भृतानि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान" यह श्रुति विषयवाक्य है. इसका अर्थ-ब्रह्म है ' ज्येष्ठ ' नाम स्वतंत्रकारण जिनोंका ते ब्रह्मज्येष्ठ कहिये. ब्रह्म करके निर्विघ्न जे वृद्धिको प्राप्त होवें ते ' सम्भृतानि' पदसैं ग्रहण किये हैं. ब्रह्मके कार्य जे 'वीर्य' नाम आकाशादिक ते अतिवृद्धिको प्राप्त हैं. इति। सो 'ज्येष्ठम्' नाम स्वतंत्रकारणरूप जो ब्रह्म सो 'अग्रे' नाम इंद्रादिकोंके जन्मसैं पूर्व 'दिवम्' नाम स्वर्गको 'आततान' नाम व्याप्त करताभया अर्थात् नित्य सर्वव्यापक है. इति । इस वाक्यमैं वृद्धि सर्वव्याप्तित्वादि गुण सुने हैं. तिन गुणोंका अपर ब्रह्मविद्यामैं उपसंहार अंगीकृत है वा नहीं ? जा संशयसैं कहे हैं. यथा पूर्वस्थानके भेदसैं नामोंकी व्यवस्था करी है. तथा 'संभृति' नाम वृद्धि 'द्युव्याप्ति' नाम स्वर्गव्याप्तित्वादि गुणनका शांडिल्यादि विद्यामैं उपसंहार अंगीकृत नहीं; 'अतः' नाम स्थानभेदसैं उक्त अर्थही समीचीन है. इति ॥ २३ ॥

पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् ॥ २४ ॥

पुरुषविद्ययाम् । इव । च । इतरेषाम् । अनाम्नानात् । इति प० ।

अर्थ-तांड्यशाखामैं और तैत्तिरीयमैं पुरुषविद्या कहे हैं. तहां उभय विद्याओंमैं परस्पर गुण उपसंहार अंगीकृत है वा नहीं ? जा संदेहसैं कहे हैं. तांड्य शाखागत पुरुषविद्यामैं यथा गुण कहे हैं, 'इव' नाम तथा 'इतरेषाम्' नाम तैत्तिरीयशाखावानोंकी पुरुषविद्यामैं गुण ' अनाम्नानात् ' नाम कहे नहीं; यातें विद्याका भेद होनेसैं गुणउपसंहार अंगीकृत नहीं. इति ॥ २४ ॥

वेधाद्यर्थभेदात् ॥ २५ ॥

वेधाद्यर्थभेदात् । इति प० ।

अर्थ-"सर्वं प्रविध्य हृदयं प्रविध्य धमनीः प्रवृज्य शिरोऽभिप्रवृज्य त्रिधा विपृक्तः" इत्यादिक मंत्र उपनिषदोंके आरंभमैं सुने हैं. अर्थ-

अभिचारक कर्म देवताकी अभिचारकर्ता प्रार्थना करे है. हे देवते! हमारे रिपुके सर्व अंगनको विदारण कर, हृदयको विदारण कर, धमनी शिर भेदन कर, और शिरको चारों तरफसैं भेदन कर; इसप्रकार मेरा रिपु त्रयप्रकारसैं भेदन होवे. इति। इसप्रकार उपनिषदोंके आरंभमें जो मंत्र हैं तिनका तत् तत् उपनिषदोंमैं जो विद्या कही है, तामैं उपसंहार है वा नहीं? जा संदेहसैं कहे हैं–'सर्वं प्रविध्य' इत्यादि मंत्रोंकरके कहा जो 'वेधादिअर्थ' नाम मारणादिअर्थ तिनका अभिचारक कर्मसैं संबंध है, विद्यासैं संबंध नहीं; यातें वेधादिक अर्थनका भेद होनेसैं तिनका विद्यामैं उपसंहार अंगीकृत नहीं. इति ॥ २५ ॥

हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात्कुशाछन्दःस्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ॥ २६ ॥

हानौ । तु । उपायनशब्दशेषत्वात् । कुशा–छन्दः–स्तुत्युपगानवत् । तत् । उक्तम् । इति प० ।

अर्थ–तांडिच्छांदोग्यरहस्यमैं यह सुना है–"श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये अश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात् प्रमुच्यते धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकं अभिसम्भवामि" इति। अर्थ–यथा अश्व रजसहित जीर्ण रोमोंको त्यागकर निर्मल होवे है तथा सर्व पापको त्यागकर निर्मल होता है. और यथा राहुके मुखसैं छूटके चंद्र भास्वर होवे है तथा हमभी प्रवाहरूपसैं 'अकृतम्' नाम अज्ञादिशरीरको 'धूत्वा' नाम त्यागके अतिनिर्मल हो कृतकृत्य होकर 'ब्रह्मलोकम्' नाम ब्रह्मरूप लोकको 'अभिसंभवामि' नाम प्राप्त होते हैं. इति "तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" जा अथर्वण श्रुतिका यह अर्थ है कि–विद्वान् पुण्यपापको त्यागके निरंजन हुआ परम ब्रह्मको प्राप्त होवे है. इति। "तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्" जा श्रुतिका यह तात्पर्य है कि–मृत विद्वान्के पुत्र विभागको प्राप्त होवे हैं, सुहृद् पुण्यको, और द्वेषी पापको प्राप्त होवे हैं. कौषीतकिमैंभी कहा है–"तत्सुकृतदुष्कृते विधूनुते तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्ति अप्रिया दुष्कृतम्" इति। अर्थ–'तत्' नाम विद्याके बलसैं विद्वान् पुण्य पापको 'विधूनुते' नाम त्याग देता है. तिस तजेहुए पुण्यपापको सेवक निंदक प्राप्त होवे

हैं यातें उपासकसैं द्वेष नहीं करे. इति। 'पुत्र दायको प्राप्त होवे हैं' जा श्रुतिमैं पुण्य पापका ग्रहण मात्र सुना है सो पुण्यपापके त्याग विना संभवे नहीं यातें तहां त्याग अर्थात् सिद्ध होवे है. तांडिरहस्य और अथर्वणमैं पुण्यपापका त्याग मात्र सुना है. तिस तजेहुए पुण्यपापका अपरवाक्यमैं सुना हुआ ग्रहण मानना चाहिये वा नहीं? जा संदेहसैं कहे हैं 'तु' पद केवल हानिवाचक है. जहां विद्वान्के पुण्यपापकी हानि सुनी है तहां पुण्यपापका ग्रहणभी मानना चाहिये. 'उपायनशब्दशेषत्वात्' यह तहां हेतु है. कौपीतकिमैं 'विधूनुते सुकृतम् उपयन्ति' यह हानिका उपायनशब्द शेष है यातें उपायनको हानिका शेष होनेसैं केवल हानिकी जगामैं 'उपायन' नाम ग्रहण किया चाहिये. विद्वान् करके भोज्यत्वाभावहानि अंगीकृत है; तत् तुल्यकर्म प्राप्ति ग्रहण अंगीकृत है. इति तात्पर्यम्। तहां कुशादिक दृष्टांत हैं. तथाहि "कुशा वानस्पत्याः स्थ" जा श्रुतिका यह अर्थ है कि—"हे समिद्रूप कुशो! तुम वनस्पतिमैं स्थित हो मम यजमानकी रक्षा करो" इति। उक्तवचनमैं सामान्य समित् श्रवण होनेसे "औदुम्बराः" जा अपरशाखागत श्रुतिका आश्रय किया है. औदुंबर शब्द कुशावाचक है इति। द्वितीय दृष्टांत—"छन्दोभिः स्तुवीत" जा वाक्यसैं देव असुर उभयच्छंदनके प्राप्त हुएसैं "देवच्छन्दांसि पूर्वाणि" जा अपर शाखागत श्रुतिकरके छंदनके पूर्व उत्तरभावका निश्चय होवे है. तृतीय दृष्टांत-षोडशी पात्रविशेषके ग्रहण कियेसैं तिसका अंगरूप स्तोत्र किसकालमैं उच्चारण करे? जा आकांक्षा हुएसैं छांदोग्यमैं कालके तुल्य प्राप्त हुएसैं "समयाध्युषिते सूर्ये षोडशिनं स्तोत्रम् उपाकरोति" जा तैत्तिरीय वाक्यसैं कालविशेषबुद्धि होवे है. उपगान दृष्टांत—"ऋत्विज उपगायन्ति" यह सामान्य वाक्य है. "नाध्वर्युरुपगायति" इस विशेषवाक्यसैं अध्वर्युवर्जित गायन करे; यह निर्णय होवे है. यथा उक्त दृष्टांतनमैं अपर श्रुतिगत विशेषका अन्वय होवे है तथा त्यागमैं ग्रहणका अन्वय है. 'तत् उक्तम्' नाम इसी अर्थका पूर्वमीमांसामैं जैमिनि आचार्यने अंगीकार किया है. इति ॥ २६ ॥

साम्पराये तर्तव्याभावात्तथाह्यन्ये ॥ २७ ॥

साम्पराये। तर्तव्याभावात्। तथाहि। अन्ये। इति प०।

अर्थ—पर्यंकगत ब्रह्मका जो उपासक ताके देहत्यागसैं अनंतर यह सुना है—

कौषीतकिमैं–"स आगच्छति विरजां नदीं तां मनसैवात्येति तत्सुकृतदुष्कृते विधूनुते" इति। अर्थ–जब उपासक ब्रह्मलोकको जावे है, तब मार्गमैं महाजलह्रद आवे है, तासैं आगे सो विरजा नाम नदीको प्राप्त होवे है, ता नदीको अपर साधनरहित केवल मनकरके तरे है. ननु सुकृत विरजाके उत्तरणमैं सहायता करे है जा शंकाके निषेधार्थ श्रुति कहे है–'तत्' नाम शरीरके त्यागकालमैं वा उपास्यमान साक्षात्कारकालमैं पुण्यपापको 'विधूनुते' नाम त्याग देता है. यथा अश्व रोमनको त्याग देता है तथा परिपाकज्ञानसैं त्याग देता है, अर्थात् दाह अंगीकार है. इति। इसमैं यह संदेह है कि विरजानदीतरणसैं अनंतर कर्महानि होवे है वा देहत्यागसैं पूर्वकालमैं कर्महानि होवे है? इति। पूर्वपक्षमैं विद्याविना नदीतरणकोही कर्महानि–कारणता है, विद्याको हानिकारणताकी असिद्धि पूर्वपक्षका फल है, तत् सिद्धि सिद्धांतका फल है. सिद्धांतमैं यह अर्थ है कि–'साम्पराये' नाम परलोकसाधनरूप विद्याकालमैं ही कर्महानि होवे है; नदीतरणसैं अनंतर कर्मोंका फल कोई शेष रहा होवे तो तरणअनंतर कर्महानि माननी चाहिये. 'तर्तव्य' नाम तरणअनंतर कर्मसैं प्राप्तव्यका अभाव है; यातें विद्याकालमैंही कर्महानि होवे है. 'तथाहि' नाम उक्तविधही 'अन्ये' नाम तांडिआदिक जीवनकालमैंही कर्मनके क्षयको 'अश्व इव' इत्यादि श्रुतिसैं दिखावे हैं. इति ॥ २७ ॥

अव०–ननु यथा ब्रह्मप्राप्ति देहत्यागअनंतर होवे है तथा कर्मनाशभी देहत्यागके अनंतर होवेगा; जा शंकासैं कहे हैं–

छन्दत उभयाविरोधात् ॥ २८ ॥

छन्दतः । उभयाविरोधात् । इति प० ।

अर्थ–'छन्दतः' नाम स्वइच्छासैं जो विद्याका सेवन सो जीवत्कालमैंही कर्मोंके नाशका हेतु है. कारण होनेसैं कार्य अवश्य होवे है. विद्या कर्मक्षयको कारणकार्यरूप सिद्ध हुए 'उभयाविरोधात्' नाम तांड्यादि उभय श्रुतिका अविरोध सिद्ध होवे है; यातें कर्मक्षय विद्याका फल है. इति ॥ २८ ॥

गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः ॥ २९ ॥

गतेः । अर्थवत्त्वम् । उभयथा । अन्यथा । हि । विरोधः । इति प० ।

अर्थ–कर्महानिके समीप कहूं देवयानमार्ग सुना है, कहूं निर्गुणविद्यामैं

नहीं सुना; तहां मार्गउपसंहार किया चाहिये वा नहीं ? जा संदेहसैं यह उत्तर है– 'गतेः' नाम देवयानमार्गको 'उभयथा' नाम दोप्रकारसैं विभाग करके 'अर्थवत्त्वम्' नाम सफलता है. सगुणविद्यामैं देवयानमार्ग है, निर्गुणविद्यामैं नहीं. इति । 'अन्यथा' नाम सर्वत्र देवयानका उपसंहार कियेसैं " विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति " जा ब्रह्मरूप प्राप्तिबोधक श्रुतिसैं विरोध होवेगा. इति ॥ २९ ॥

उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ॥ ३० ॥

उपपन्नः । तल्लक्षणार्थोपलब्धेः । लोकवत् । इति प० ।

अर्थ–कहूं मार्ग है, कहूं नहीं; जाविध उभयप्रकारसैं मार्ग 'उपपन्नः' नाम सिद्ध हुआ है. ब्रह्मलोकमैं पर्यंकगत ब्रह्मप्राप्ति जो विद्याका फल तिस विद्याफलरूप अर्थका 'तत्' नाम सो मार्ग 'लक्षण' नाम कारण है, तिस फलरूप अर्थकी श्रुतिमैं 'उपलब्धेः' नाम प्रतीति होवे है और निर्गुणविद्यामैं मार्गसाध्य फल कोई भान होवे नहीं, यातें तहां मार्गउपसंहारका अंगीकार नहीं; यथा लोकमैं रामसेतुवासी जनोंको गंगाप्राप्तिअर्थ मार्ग चाहिये, गंगावासी जनोंको नहीं, तथा. इति ॥ ३० ॥

अव०–सगुणविद्यामैंभी कहूं मार्ग सुना है, कहूं नहीं; तहां मार्गका उपसंहार किया चाहिये वा नहीं ? जा संदेहका निषेधक यह सूत्र है—

अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ॥ ३१ ॥

अनियमः । सर्वासाम् । अविरोधः । शब्दानुमानाभ्याम् । इति प० ।

अर्थ–'सर्वासाम्' नाम सर्व सगुण उपासनाके मार्गका अनियम है अर्थात् जहां मार्ग सुना है तिसका जहां जहां मार्ग नहीं सुना तहां तहां सर्व जगा उपसंहार अंगीकार है. 'शब्द' नाम श्रुतिमैं 'अनुमान' नाम स्मृतिमैं मार्गका अंगीकार किया है; यातें उभयसैं 'अविरोधः' नाम प्रकरणविरोधभी नहीं. इति ॥ ३१ ॥

अव०–कलिद्वापरकी संधिमैं विष्णुके नियोगसैं कृष्णद्वैपायनही उपजे इत्यादिक वचनोंमैं निर्गुण ब्रह्मवेत्ताका जन्म सुना है. तहां यह संदेह है–ब्रह्मवेत्ताकी वर्तमान देह पात हुए ताको अपर देहप्राप्ति होवे है वा नहीं ? इति । व्यास वसिष्ठादिकोंमैं ब्रह्मविद्या है, तिनका जन्मभी सुना है, यातें ब्रह्मवेत्ताको अवश्य जन्म होवेगा; विद्या मोक्षका हेतु नहीं यातें फलभोगके अर्थ ब्रह्मवेत्ताको

अपर देहकी प्राप्ति होवे है, यह पूर्वपक्ष है. इनका निर्गुणविद्यामैं मार्ग उपसंहार फल है. तहां यह सिद्धांतसूत्र है—

यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ॥ ३२ ॥

यावत्–अधिकारम् । अवस्थितिः । आधिकारिकाणाम् । इति प०।

अर्थ–परमात्माकी आज्ञासैं वेदप्रवर्तनादि लोकव्यवस्थाहेतु अधिकारोंमैं जे प्रवृत्त होवे हैं ते आधिकारिक अंगीकृत हैं; तिन अधिकारी जनोंकी 'यावत्–अधिकारम्' नाम जहांपर्यंत प्रारब्धकर्म है तहांपर्यंत अवस्थिति रहे है. सो प्रतिवंधकरूप प्रारब्धकर्म अनेक शरीरकर भोग्य फलका हेतु है. तिस फलका भोगसैं नाश हुएसैं अपर कोई प्रतिवंधक रहे नहीं; यातें वर्तमान देहपात अनंतर कैवल्यप्राप्ति होवे है, अपर जन्मप्राप्ति होवे नहीं; यातें ब्रह्मवेत्ताको मार्गकी अपेक्षा नहीं. इति ॥ ३२ ॥

अव०–बृहदारण्यकमैं याज्ञवल्क्यका गार्गिप्रति उत्तर सुना है–"एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति अस्थूलम् अनणु अह्रस्वम् अदीर्घम्" इत्यादि और "यत् तत् अद्रेश्यम् अग्राह्यम् अगोत्रम् अवर्णम् अचक्षुः" इत्यादि मुंडकमैं सुना है. तहां जो निषेध सुना ताका अपरजगा उपसंहार अंगीकृत है वा नहीं? यह संदेह है. तहां यह संदेहनिषेधकसूत्र है—

अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत् तदुक्तम् ॥ ३३ ॥

अक्षरधियाम् । तु । अवरोधः । सामान्यतद्भावाभ्याम् । औपसदवत् । तत् । उक्तम् । इति प० ।

अर्थ–'अस्थूलम् अनणु' इत्यादिक जे अक्षरमैं निषेधबुद्धि तिनका सर्व निषेधप्रकरणमैं 'अवरोधः' नाम उपसंहार अंगीकृत है. 'सामान्यतद्भावाभ्याम्' यह तहां हेतु है. सर्व प्रपंचका निषेध करके जो ब्रह्मका प्रतिपादन है सो सर्वजगा सामान्य है और प्रतिपाद्य एक ब्रह्मका जो 'भाव' नाम सत्त्व सोभी सर्वजगा एकरूप है; यातें तिसके शेष जे निषेध तिनका सर्वजगा उपसंहार अंगीकृत है. 'औपसदवत्' यह तहां दृष्टांत है. जमदग्नियागमैं जे पुरोडाश तिनकी संज्ञा उपसद है, पुरोडाशप्रधानक मंत्रोंकी संज्ञा औपसद है; ते मंत्र

उद्गाताके वेदमैं उपजे हैं, यातें उद्गाताकरके तिनके प्रयोगकी प्राप्ति हुएसैं तिन मंत्रोंका अध्वर्युकर्तृक पुरोडाशप्रदानमैं विनियोग है. विनियोगविधि उत्पत्तिविधिसैं मुख्य है, यातें तिस मुख्य अनुसारही अध्वर्युकर्तृक मंत्रप्रयोग किया चाहिये; गौण उत्पत्तिविधि–अनुसार उद्गाताकर्तृक प्रयोग नहीं किया चाहिये; यातें अध्वर्युकर्तृक पुरोडाशके शेष जे मंत्र जहां तहां सुनेहुए तिन सर्वका यथा अध्वर्युसैं संबंध अंगीकार है, तथा अक्षरब्रह्मज्ञानके शेष जे निषेध जहां तहां सुनेहुए तिन सर्वका अक्षरसैं सर्वजगा संबंध अंगीकृत हैं. 'तत् उक्तम्' नाम पूर्वमीमांसामैं जैमिनिने यही रीति अंगीकार करी है. इति ॥ ३३ ॥

अव०–"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति" जा मंत्र तृतीय मुंडकके आरंभमैं कहा है. अर्थ–दो पक्षी हैं, सर्वदा युक्त हैं, आपसमैं सखा हैं, ते शरीररूप वृक्षमैं संबंध पाकर स्थित हैं; तिनमैं एक फलको खावे है, और एक प्रकाशे है, खावे नहीं–इति। "ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः" यह मंत्र कठतृतीयवल्लीके आरंभमैं कहा है. अर्थ पूर्व कहदिया है. इति। उक्त उभय मंत्रोंमैं विद्या एक है वा भिन्न है? जा संशयसैं कहे हैं—

इयदामननात् ॥ ३४ ॥

इयत्। आमननात्। इति प०।

अर्थ–'इयत्' नाम इयत्ता अर्थात् द्वित्वसंख्या अविच्छिन्न जो वेद्य उसका उभय मंत्रोंमैं एकरूप 'आमननात्' नाम अंगीकार किया है, यातें प्रतिपाद्यको एक होनेसैं निर्गुण विद्या उभयमैं एक है. इति ॥ ३४ ॥

अव०–बृहत्मैं उषस्तका याज्ञवल्क्यके प्रति प्रश्न है कि–"यत्साक्षादपरोक्षात् ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्व" इति। इसका यह उत्तर है–"एष त आत्मा सर्वान्तरः" पुनः प्रश्न–"कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः"। उत्तर–" यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरो योऽपानेनापानिति स त आत्मा सर्वान्तरः " इत्यादि। इससैं उत्तर ब्राह्मणमैं कहोलप्रश्न है. " कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः" इति। उत्तर—

"योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युम् अत्येति एतं वै तम् आत्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थाय अथ भिक्षाचर्यं चरन्ति" इति। अर्थ–जो प्राणकरके प्राणचेष्टाको करे है अर्थात् जिसकरके प्राण चेष्टा करे हैं. चेष्टा चेतनाधिष्ठानपूर्वक है. अचेतनप्रवृत्तिरूप होनेसैं रथादिचेष्टावत् जानना. इति।

अव०–तहां उभय ब्राह्मणोंमैं विद्या एक है वा भिन्न हैं? जा संदेहका परिहार करे हैं—

अन्तरा भूतग्रामवत् स्वात्मनः॥ ३५॥

अन्तरा। भूतग्रामवत्। स्वात्मनः। इति प०।

अर्थ–उभय ब्राह्मणमैं स्व आत्माका सर्वके 'अन्तरा' नाम अंतर अंगीकार किया है, यातें उभय वेद्य आत्मा एक है. यथा 'भूतग्राम' नाम भूतनका समूहरूप जो स्थूलदेह तिसमैं पृथिवीसैं जल अंतर है, जलसैं तेज अंतर है, इत्यादि क्रमसैं सापेक्षक भूतनको अंतरत्व है, मुख्य नहीं; तथा उभय ब्राह्मणमैं विद्याभेदका अंगीकार कियेसैं वेद्यात्मा सर्वके अंतर नहीं सिद्ध होवेगा अर्थात् उभय आत्माका अंगीकार कियेसैं गौण अंतरत्व सिद्ध होवेगा; यातें वेद्य एक होनेसैं विद्या एक है. भूतदृष्टांत व्यतिरेकी है. इति॥ ३५॥

अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशान्तरवत्॥३६॥

अन्यथा। भेदानुपपत्तिः इति। चेत्। न। उपदेशान्तरवत्। इति प०।

अर्थ–'अन्यथा' नाम तहां विद्याभेदका अनंगीकार किये आत्माके भेदकी अनुपपत्ति होवेगी अर्थात् भेद नहीं बनेगा, 'इति चेत्' नाम उक्त शंका करें तो असंगत है. तथाहि–यथा छांदोग्यमैं 'उपदेशान्तरवत्' नाम 'तत्त्वमसि' जा वाक्यका नववार अभ्यास कियेभी विद्याका भेद नहीं, तथा ब्राह्मणउभयसैं भेद अभ्यास कियेपरभी विद्याभेद नहीं. इति॥ ३६॥

अव०–" तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहम् " जा वाक्यमैं आदित्यपुरुका अधिकार कहा है. और "त्वं वाऽहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि भगवो देवते" जा जाबालिमैं कहा है. उक्त उभयवाक्यनमैं आत्माका केवल ईश्वररूपसैं चिंतनका विधान है वा आत्माका ईश्वररूपसैं और ईश्वरका आत्मारूपसैं चिंतनका विधान है? यह संदेह है. तिसका निषेधक यह सूत्र है—

व्यतिहारो विशिंषन्ति हीतरवत् ॥ ३७ ॥

व्यतिहारः । विशिंषन्ति । हि । इतरवत् । इति प० ।

अर्थ–श्रुतिमैं यह अर्थ कहा है कि 'जो मैं उपासक हूँ सोई यह उपास्य है, जो यह उपास्य है सोई मैं उपासक हूँ.' इति । हे भगवन्! हे देवता! जो तूं है सो मैं हूं,! हे भगवन्! हे देवता! जो मैं हूं, सो तूं है. इति। इनके अनुसार यह सूत्रार्थ है. उक्तवाक्यनमैं 'व्यतिहारः' नाम परस्पर उपास्यत्वरूपसैं उपदेश किया है, केवल आत्माका ईश्वररूपसैं चिंतनका विधान नहीं. 'इतरवत्' नाम यथा सर्व आत्मत्वादि गुण उपास्य करके उपदेश किये हैं तथा प्रसंगमैं अंगीकार है. 'विशिंषन्ति' यह यहां हेतु है. उक्त शाखावान् जीव और परमात्माको व्यतिहारसैं 'विशिंषन्ति' नाम 'योऽहं' इत्यादिकोंसे परस्पर विशेषणविशेष्यभावको कहे हैं. जो परस्पर विशेषणविशेष्यभाव नहीं मानेंगे तो 'योऽहं सोऽसौ' इतना श्रुतिका अंश सफल होवेगा, 'योऽसौ सोऽहम्' इतना अंश अनर्थक होवेगा, यातें उभयरूप चिंतन ही विधेय है. इति ॥ ३७ ॥

अव०–बृहत् पञ्चमअध्यायमैं यह कहा है कि–"तद्वै तदेव तदास सत्यमेव स यो हैतं महत् यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति जयति इमान् लोकान्" इति । अर्थ–यह जो हिरण्यगर्भाख्य ब्रह्म व्यापकरूप सर्वकरके पूज्य सर्वसैं प्रथम उपजाहुआ है इसको जो जाने है अर्थात् इसकी उपासना करे है सो सर्वलोकनको जय करे है–पुनः तहांहीं कहा है कि–"तत्सत्यम् असौ स आदित्यो य एष एव एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणे अक्षन् पुरुषः तौ एतौ अन्योऽन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः। प्राणैरयम् अमुष्मिन्" इति। उक्त उभय वाक्यनमैं विद्या एक है वा भिन्न है? जा संशयसैं सूत्रकार कहे हैं—

सैव हि सत्यादयः ॥ ३८ ॥

सा । एव । हि । सत्यादयः । इति प० ।

अर्थ–" तत्सत्यम् " जा श्रुतिमैं जो विद्या कही है सो ' सा एव ' नाम सोई पूर्वश्रुतिउक्त सत्यविद्याही है; तासैं भिन्न नहीं. ' तत्सत्यम् ' जा श्रुतिमैं ' तत् ' पदसैं पूर्वश्रुतिउक्त हिरण्यगर्भ उपास्यका ग्रहण है. उभयश्रुतिमैं उपास्य एक होनेसे उपासनाका भेद संभवे नहीं; यातें उभय वाक्यनमैं उपासना एक

होनेसैं उभयवाक्यनमैं जे 'सत्यादयः' नाम सत्यत्वादिगुण, तिनका उपसंहार कर्तव्य है. इति ॥ ३८ ॥

अव०—छांदोग्य अष्टमप्रपाठकमैं यह कहा है कि—" एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः " इति । बृहदारण्यकवाक्य—" स एव महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन् शेते" इति । उक्त उभयवाक्यनमैं परस्पर गुणउपसंहार अंगीकृत है वा नहीं? जा संदेहसैं कहे हैं—

कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ॥ ३९ ॥

कामादि । इतरत्र । तत्र । च । आयतनादिभ्यः । इति प० ।

अर्थ—'कामादि' नाम सत्यकामत्वादि जे छांदोग्योक्त गुण तिनका 'इतरत्र' नाम बृहदारण्यकमैं उपसंहार अंगीकृत है. 'आयतनादिभ्यः' नाम हृदयस्थानवान् ब्रह्म और उपास्य ब्रह्म 'तत्र' नाम उभयशाखामैं एकही कहा है, यातें परस्पर गुणोंका उपसंहार संभवे है. इति ॥ ३९ ॥

अव०—छांदोग्य पंचमप्रपाठकमैं वैश्वानर उपासनाविषे प्राणाग्निहोत्र सुना है— "तत् यत् भक्तं प्रथममागच्छेत् तत् होमीयं, स यां प्रथमाम् आहुतिं जुहुयात् तां जुहुयात् 'प्राणाय स्वाहा' इति प्राणस्तृप्यति, प्राणे तृप्यति चक्षुः तृप्यति, चक्षुषि तृप्यति आदित्यस्तृप्यति, आदित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति, दिवि तृप्यत्यां यत् किञ्च द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति, तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेन इति" । अर्थ—जो भोजनकालमैं भोजनअर्थ आवे सो होतव्य है; सो भोक्ता जा प्रथम आहुतिको करे ताको कैसे करे? जा शंकासैं कहे हैं— 'प्राणाय स्वाहा' जा मंत्रसैं अन्नका प्रक्षेप करे. 'अनु' नाम ताकी तृप्ति होनेके अनंतर प्रजादिकोंसैं भोक्ता तृप्त होवे है. 'ब्रह्मवर्चसेन' इस पदसैं तेजका अंगीकार है. इति । "पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयात्" यह जाबालमैं सुना है कि— अतिथिसैं पूर्व भोजन करे; यह श्रुति—अक्षर—अर्थ है. तहां उभयशाखावचनोंमैं भोजनलोप हुएसैं प्राणाग्निहोत्रका लोप अंगीकृत है? वा अलोप 'आदरात्' नाम अंगीकृत है? यह संदेह है. तहां यह पूर्वपक्षका सूत्र है—

आदरादलोपः ॥ ४० ॥

आदरात्। अलोपः। इति प०।

अर्थ-जावालश्रुतिमैं प्राणाग्निहोत्रका 'आदरात्' नाम आदर किया है, यातें प्राणाग्निहोत्रके अलोपका अंगीकार है. अतिथिसैं पूर्व भोजनमैं जो प्रथमत्व धर्म तिसके लोपको नहीं सहारतीहुई जावालश्रुति प्राणाग्निहोत्ररूप धर्मीके लोपको कैसे अंगीकार करेगी? याते भोजनलोप हुएभी अपर भक्ष्य द्रव्यकरके प्राणाग्निहोत्र कर्तव्य है. इति ॥ ४० ॥

उत्तरसूत्र—

उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ॥ ४१ ॥

उपस्थिते। अतः। तद्वचनात्। इति प०।

अर्थ-'उपस्थिते' नाम भोजन प्राप्त होवे तो 'अतः' नाम इस भोजनसैं प्राणाग्निहोत्र कर्तव्य है. जो भोजन प्राप्त नहीं होवे तो प्राणाग्निहोत्र कर्तव्य नहीं। 'तद्वचनात्' नाम "तत् होमीयं०" जा वचनसैं "यत् भक्तं प्रथमम् आगच्छेत्" जा वाक्यसैं "तत् होमीयं०" जा वाक्यका संबंध निश्चित है, यातें भोजनअर्थ प्राप्त द्रव्यको होमसाधनत्व प्रतीत होवे है; यातें भोजनलोप हुए प्राणाग्निहोत्रके लोपका अंगीकार है. इति ॥ ४१ ॥

अव०-छांदोग्यके आरंभमैं कर्मअंग उद्गीथमैं प्राणकी उपासना कही है, सो कर्मोंका अंग है वा स्वतंत्रफलका साधन है? यह तहां संदेह है. पूर्वपक्षमैं कर्मनका अंग माननेसैं यह सूत्रसिद्धांत है कि—

तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलम् ॥

तन्निर्धारणानियमः। तद्दृष्टेः। पृथक्। हि। अप्रतिबन्धः। फलम्। इति प०।

अर्थ-'तत्-निर्धारण' नाम कर्मअंग आश्रित उपासनाके सेवनका अनियम है. सदा कर्म अनुष्ठान कियेपर तिसके अनुष्ठानका अंगीकार नहीं 'तद्दृष्टेः' नाम तिस अनियमको "तेनोभौ कुरुतः" जा श्रुतिमैं तहांही देखा है. और उपासनाका 'पृथक्' नाम स्वतंत्र प्रतिबंधरहित तहांही-"यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति" जा श्रुतिमैं फल सुना है; यातें नियमका अंगीकार किया नहीं. इति ॥ ४२ ॥

अव०—छांदोग्यके चतुर्थ प्रपाठकमैं यह वाक्य है कि–"वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति इति" "प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति" इति। उक्त उभय श्रुतिनमैं वायुको अग्निआदिकोंसैं उत्तम कहा है और प्राणको वाक्यादिकोंसैं उत्तम कहा है; तथा वृहदारण्यकसैंभी कहा है. तहां वायु और प्राणका प्रयोग एक है वा भेदयुक्त है? जा संदेहसैं कहे हैं.—

प्रदानवदेव तदुक्तम् ॥ ४३ ॥

प्रदानवत् । एव । तत् । उक्तम् । इति प० ।

अर्थ–इंद्र, राजा, अधिराजा इत्यादि राज अधिराज स्वाराट् आदि गुणोंके भेदसैं यथा इंद्रअर्थ पुरोडाशके 'प्रदान' नाम प्रक्षेपका भेद है तथा आधिदैवत्व आध्यात्मिकत्वरूप अवस्थाके भेदसैं गुणनके भेदसैं प्रयोगका भेद है. 'तत् उक्तम्' नाम देवताकांडमैं उक्त अर्थ कहा है, यातैं प्रयोगका भेद है. इति॥४३॥

अव०—वाजसनेयिक अग्निरहस्यमैं "आत्मनोऽग्नीनकान्मनोमयान्मनश्चित्" इत्यादिक वाक्यनसैं मन और इंद्रियोंकी वृत्तिको अग्निरूप कहा है. ते सर्व वृत्तिरूप अग्नि कर्मोंके अंग हैं वा स्वतंत्र हैं? जा संदेहसैं कहे हैं.–

लिङ्गभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तदपि ॥ ४४ ॥

लिङ्गभूयस्त्वात् । तत् । हि । बलीयः । तत् । अपि । इति प० ।

अर्थ–स्वतंत्रताके बोधक लिंग तहां 'भूयस्त्वात्' नाम अनेक हैं, यातैं मन आदि वृत्तिरूप अग्नि स्वतंत्र हैं. 'तत्' नाम ते लिंग 'बलीयः' नाम प्रकरणसैं बलवान् हैं 'तत् अपि' नाम सो लिंगभी पूर्वकांडमैं कहे हैं. इति ४४

पूर्वपक्षसूत्र—

पूर्वविकल्पः प्रकरणात्स्यात् क्रिया मानसवत् ॥ ४५ ॥

पूर्वविकल्पः । प्रकरणात् । स्यात् । क्रिया । मानसवत् । इति प० ।

अर्थ–संकल्परूप जे अग्नि कहे हैं ते स्वतंत्र नहीं किंतु प्रकरणसैं, तिनसैं पूर्व जो क्रियारूप अग्नि ताके अंतर विकल्पसंकल्परूप अग्नि 'स्यात्' नाम

---

१ संप्रसनसैं वायु संवर्ग है. २ उपशांत होवे है. ३ यथा दशरात्रस्य दशमेऽहनि अविवाक्ये पृथिव्याः पात्रेण समुद्रस्य सोमस्य प्रजापतिदेवतायै गृह्यमाणस्य ग्रहणासादनहवनाहरणोपह्वानभक्षणानि मानसानि एव आम्नायन्ते.

है. यथा द्वादशाहमध्ये दशम दिनका अंग मानस पूर्वमीमांसामैं प्रसिद्ध है तथा ' मानस ' अग्नि कर्मोंका अंग है; स्वतंत्र नहीं. इति ॥ ४५ ॥

अतिदेशाच्च ॥ ४६ ॥

अतिदेशात् । च । इति प० ।

अर्थ–"तेषाम् एकैक एव तावान् यावान् असौ पूर्वः" जा वाक्यमें पूर्व-अग्निकी मानसअग्निमैं सादृशताका उपदेश किया है, सो एक क्रियामैं प्रवेश विना संभवे नहीं; यातें उक्त अतिदेशसैं मानस अग्नि स्वतंत्र नहीं. इति ॥ ४६ ॥

सिद्धांत–

विद्यैव तु निर्धारणात् ॥ ४७ ॥

विद्या । एव । तु । निर्धारणात् । इति प०

अर्थ–' तु' पूर्वपक्षका निषेधक है. मानस सर्व अग्नि स्वतंत्र 'विद्या' नाम उपासनारूप हैं; कर्ममैं तिनका प्रवेश नहीं. "ते ह एते विद्याचित एव" जा श्रुतिमैं तहांही 'एव' पदसैं विद्यारूप तिनको निर्धारणात् नाम निश्चय किया है; यातें विद्या स्वतंत्र है. इति ॥ ४७ ॥

दर्शनाच्च ॥ ४८ ॥

दर्शनात् । च इति प० ।

अर्थ–मानस अग्नियोंकी स्वतंत्रताके बोधक लिंगभी देखे हैं, ते पूर्वमीमांसामैं कहे हैं. इति ॥ ४८ ॥

अव०–ननु प्रकरणसैं लिंगका बाध हो, जा शंकाका निषेध करे हैं कि–

श्रुत्यादिबलीयस्त्वाच्च न बाधः ॥ ४९ ॥

श्रुत्यादिबलीयस्त्वात् । च । न बाधः । इति प० ।

अर्थ–श्रुतिको और 'आदि' पदसैं लिंगवाक्यको प्रकरणसैं 'बलीयस्त्वात्' नाम बलवान् होनेसैं बाध होवे नहीं; "विद्याचित एव" यह श्रुति है; "सर्वदा सर्वमयानि भूतानि" यह लिंग है; "विद्यया हैवैते एवंविदश्चिता भवन्ति" यह वाक्य है; इन त्रयको बलवान् होनेसैं प्रकरणसैं ' न बाधः ' नाम स्वतंत्र अग्निका बाध संभवे नहीं. इति ॥ ४९ ॥

अनुबन्धादिभ्यः प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद्दृष्टश्च तदुक्तम् ५०

अनुबन्धादिभ्यः । प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववत् । दृष्टः । च । तत् । उक्तम् । इति प० ।

अर्थ–"ते मनसा एव अधीयन्त । मनसा अचीयन्त । मनसा एव ग्रहा अगृह्यन्त । मनसा स्तुवन् । मनसाऽशंसन् । यत् किंच यज्ञे कर्म क्रियते, यत् किंच यज्ञियं कर्म, मनसा एव तेषु तत् मनोमयेषु मनश्चित्सु मनोमयमेव क्रियते" जा श्रुतिसैं मन आदि वृत्तियोंविषे 'अनुबंध' नाम कर्मांग आधानादिक संपादन किये हैं; यातें ते स्वतंत्र हैं. 'आदि' पदसैं अतिदेशका ग्रहण है. 'प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववत्' नाम यथा शांडिल्यादिविद्या स्वतंत्र है तथा मानस अग्नि स्वतंत्र है. यथा "राजा राज्यकामो राजसूयेन यजेत" इत्यादिक प्रसंगोंमैं ब्राह्मणकर्तृक अंत्येष्टीको राजमात्रकर्तृक राजसूयप्रकरणमैं उत्कर्ष देखा है; तथा प्रसंगमैंभी अग्नियोंको कर्मप्रकरणसैं उत्कर्षता देखी हे. 'तत् उक्तम्' नाम यह सर्व अर्थ पूर्वमीमांसामैं कहा है. श्रुतिअर्थ–ते अग्नि मनकरके संपादन करी हैं, मनकरके स्थापन करी हैं, 'ग्रहाः' नाम मन अग्निमैं पात्रोंको ग्रहण किया है. ग्रहणकर्ता स्तुति करे है, उद्गाता होता शंसन करे हैं, उपकारक यज्ञअर्थ कर्म किया जाय सो मनकरही होवे है. इति ॥ ५० ॥

अव०–पूर्व मानस अग्निको मानसवत् कहा, सो तिस दृष्टांतसैं अग्निको क्रिया अंग माने तो तिसका निषेध करे हैं—

न सामान्यादप्युपलब्धेर्मृत्युवन्नहि लोकापत्तिः ॥५१॥

न । सामान्यात् । अपि । उपलब्धेः । मृत्युवत् । नहि । लोकापत्तिः । इति प० ।

अर्थ–मानस अग्निमैं मानसिकत्व तुल्य है; तोभी क्रियाका अंग नहीं. श्रुतिसैं मृत्युवत् अग्निकी स्वतंत्रता 'उपलब्धेः' नाम प्रतीत होवे है; यातें 'सामान्यात्' नाम मानसत्वतुल्य हुए भी कर्मोंका अंग नहीं. यथा– "स वा एष एव मृत्युर्य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो दृश्यते" जा वाक्यमैं आदित्यको मृत्यु कहा है. "अग्निर्वै मृत्युः" जामैं अग्निको मृत्यु कहा है. उभय वाक्यनमैं आदित्य अग्निवाचक मृत्युशब्द उभयमैं तुल्य है तोभी ते परस्पर विलक्षण हैं. और "यथा द्युलोकोऽग्निः तस्य आदित्यः समित्" जामैं

समित्‌की तुल्यतासैं द्युलोकको 'आपत्ति' नाम अग्नित्वकी प्राप्ति नहीं, किंतु परस्पर विलक्षण हैं, तथा मानसिकत्व तुल्यतासैं मानस–अग्निको कर्म–अंगत्वकी प्राप्ति नहीं. इति ॥ ५१ ॥

अव०–ननु परब्राह्मणमैं लोकको अग्नित्व प्रतीत होवे है जा शंकासैं कहे हैं कि—

परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्त्वनुबन्धः ॥५२॥

परेण । च । शब्दस्य । ताद्विध्यम् । भूयस्त्वात् । तु । अनुबन्धः । इति प० ।

अर्थ–मानस अग्नि ब्राह्मणसैं 'परेण च' नाम पर ब्राह्मणमैं "अयं वाव लोक एषोऽग्निश्चितः" इत्यादिक शब्दको 'ताद्विध्यम्' नाम अग्निमैं पृथिवी दृष्टिरूप स्वतंत्रविद्याविधित्व प्रतीत होवे है; कर्मांगविधित्व नहीं. मानस अग्नि-विद्यामैं संपादनयोग्य कर्मोंके अंग 'भूयस्त्वात्' नाम अनेक हैं; यातें तत्–आरंभसैं विद्याका 'अनुबन्धः' नाम प्रतिपादन है, यातें मानस–अग्निविद्या स्वतंत्र फलका हेतु है, इति सिद्धम् ॥ ५२ ॥

अव०–आत्मा देह है वा देहसैं भिन्न है ? जा संदेहसैं पूर्वपक्षी कहे है कि–

एक आत्मनः शरीरे भावात् ॥ ५३ ॥

एके । आत्मनः । शरीरे । भावात् । इति प० ।

अर्थ–'एके' नाम देहात्मवादी देहसैं भिन्न आत्माके असत्वको मानते हुए देहकोही आत्मा माने हैं. 'शरीर' नाम शरीर होवे तो चेतनता सुखादिक 'भावात्' नाम होवे है; नहीं होवे तो नहीं होवे है; यातें देहही आत्मा है. इति ॥ ५३ ॥

सिद्धांत—

व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ॥ ५४ ॥

व्यतिरेकः । तद्भावाभावित्वात् । न । तु । उपलब्धिवत् । इति प० ।

अर्थ–आत्मा देहस्वरूप नहीं किंतु देहसैं 'व्यतिरेकः' नाम भिन्न है. चेतनतादिक जे धर्म ते मरण–अवस्थामैं 'तद्भाव' नाम शरीरके विद्यमान होते भी 'अभावित्वात्' नाम रहें नहीं; यातें ते देहके धर्म नहीं 'उपलब्धिवत्' नाम यथा घटादिकोंकी उपलब्धि देहका धर्म नहीं और देहका धर्म मानें तो सो

ज्ञान घटप्रकाशक नहीं सिद्ध होवेगा; यथा देहधर्म रूपादिक घटके प्रकाशक नहीं याने चेतनतादिकोंको देहधर्म असंभवसैं आत्मा देहसैं भिन्न है. इति ५४

अव०–'लोकेषु पञ्चविधं सामोपासीत' इत्यादिक छांदोग्यके चतुर्थ प्रपाठकमैं सामउपासना कही है, सो जा शाखामैं कही है तहांही तिसका अंगीकार है वा सर्वशाखामैं ताको अंगीकार किया चाहिये ? जा संदेहसैं कहे हैं कि–

अङ्गावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम् ॥ ५५ ॥

अङ्गावबद्धाः । तु । न । शाखासु । हि । प्रतिवेदम् । इति प० ।

अर्थ–यह उद्गीथ धर्म प्राणादिदृष्टिरूप जो 'अङ्गावबद्धाः' नाम अंगाश्रित उपासना सो 'प्रतिवेदम्' नाम स्वस्वशाखामैं विद्यमान जो उद्गीथ तत्आश्रित हैं अर्थात् सर्वशाखामैं तिसका अंगीकार है. 'न शाखासु' नाम स्वशाखामैंही अंगीकार नहीं 'उद्गीथम् उपासीत' इत्यादिक श्रुति सर्व शाखामैं तुल्य है. इति ॥ ५६ ॥

मन्त्रादिवद्वाऽविरोधः ॥ ५६ ॥

मन्त्रादिवत् । वा । अविरोधः । इति प० ।

अर्थ–यथा तंडुलपेषण अर्थ अश्मग्रहणके लिये 'कुटरुरसि' यह मंत्र एक जगा कहा हुआ अपर शाखामैंभी प्राप्त है, 'मंत्रवत्' नाम तद्वत् एक शाखामैं विहित उपासनाकी अपरशाखागत उद्गीथमैं प्राप्तिका अविरोध है. 'वा' पद हेतुबोधक है. इति ॥ ५६ ॥

अव०–छांदोग्यके पंचम प्रपाठकमैं यह कहा है–"एष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वम् आत्मानम् उपास्से" इत्यादि भिन्न भिन्न उपासना सुनी है और "यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् आत्मानं वैश्वानरमुपास्ते" यह समस्त उपासना सुनी है, तहां उपासना एक अंगीकृत है वा अनेक हैं ? जा संदेहसैं कहे हैं कि–

भूम्नः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथाहि दर्शयति ॥ ५७ ॥

भूम्नः । क्रतुवत् । ज्यायस्त्वम् । तथाहि । दर्शयति । इति प० ।

अर्थ–'भूम्नः' नाम समस्त उपासनाकोही तहां 'ज्यायस्त्वम्' नाम प्रतिपाद्यत्व है, भिन्न भिन्न अंगीकार नहीं. 'क्रतुवत्' यह तहां दृष्टांत है. यथा दर्शपूर्णमासादि यागको अंगसहित एक अंगी प्रयोगका अंगीकार है; भिन्न

भिन्न प्रयाजादिकोंका प्रयोग अंगीकृत नहीं तथा भिन्न भिन्न उपासनाकी निंदा कर समस्त उपासनाका उपदेश किया था; यातें सो श्रुति सर्वकोही श्रेष्ठता दिखावे है. इति ॥ ५७ ॥

अव०-एक जो सगुण ब्रह्म उपास्य ताकी शांडिल्य दहरादिउपासना अनेक प्रकारकी कही है, तथा अपर प्राणादि उपास्यमें हैं; तहां एक उपास्यकी उपासना भिन्न भिन्न है वा एक है? जा संदेहका निषेध करे हैं कि—

नाना शब्दादिभेदात् ॥ ५८ ॥

नाना । शब्दादिभेदात् । इति प० ।

अर्थ-"वेदोपासीत स क्रतुं संकल्पं कुर्वीत" इत्यादिक शब्दोंके भेदसैं एक उपास्यमैं उपासना 'नाना' नाम अनेक हैं; एक नहीं. इति ॥५८॥

अव०-इसमैं यह संदेह है कि-जे सगुण ब्रह्मादि उपासना उपास्यसाक्षात्कारसैं फलका हेतु हैं, तिनका स्वइच्छासैं विकल्प और समुच्चय अंगीकृत हैं, वा विकल्पकाही अंगीकार है? जा संशयकी निवृत्ति करे हैं—

विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ॥ ५९ ॥

विकल्पः । अविशिष्टफलत्वात् । इति प० ।

अर्थ-सर्व उपासनाका उपास्य साक्षात्काररूप अविशिष्टफल होवे है अर्थात् एक फल होवे है; यातें उक्त सर्व उपासनाओंमैं विकल्प युक्त है. एक उपासनासैं साक्षात्कार हुएसैं अपर उपासना निष्फल हैं. विरुद्ध उपास्यरूपका साक्षात्कार एकको संभवे नहीं, यातें उपास्य साक्षात्कारद्वारा फलहेतु विद्या एकही सेवनयोग्य है. इति ॥ ५९ ॥

अव०-"नाम ब्रह्म इति उपासीत" इत्यादिक जे प्रतीक उपासना तिनमैं पूर्ववत् संदेह हुए पूर्वपक्षमैं विकल्पके नियमका अंगीकार कियेसैं यह उत्तर है कि—

काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरन्न वा पूर्वहेत्वभावात् ॥

काम्याः । तु । यथाकामम् । समुच्चीयेरन् । न । वा ।
पूर्वहेत्वभावात् । इति प० ।

अर्थ-'काम्याः' नाम अदृष्टद्वारा फलका हेतु जो विद्या तिनको 'यथाकामम्' नाम स्व-इच्छा अनुसार 'समुच्चीयेरन्' नाम समुच्चय करे 'वा' नाम अथवा

नहीं समुच्चय करे. ऐसे विकल्पके नियमका साधक जो सृष्टफल तिस पूर्व-उक्त हेतुका इस प्रतीकउपासनामैं अभाव है; यातें विकल्पका नियम नहीं इति ॥ ६० ॥

पूर्वपक्षसूत्र–

अङ्गेषु यथाऽऽश्रयभावः ॥ ६१ ॥

अङ्गेषु । यथा । आश्रयभावः । इति । प० ।

अर्थ–कर्मअंग उद्गीथादिकोंमैं जे उपासनायें अंगीकार करी हैं तिनका समुच्चयकर अनुष्ठान करे वा इच्छाअनुसार करे? यह तहां संदेह है–प्रतीकउपासना स्वतंत्र है; यातें इच्छाअनुसार ताका सेवन युक्त है. 'अंगेषु' नाम कर्मअंग उद्गीथादिकोंविषे 'यथा आश्रयभावः' नाम जैसे इनके स्तोत्रादिक मिलके होवे हैं तथा उपासना संभवे है. इति ॥ ६१ ॥

शिष्टेश्च ॥ ६२ ॥

शिष्टेः । च । इति प० ।

अर्थ–यहभी पूर्वपक्षसूत्र है–यथा अंगोंका प्रतिवेदमैं शिष्टि नाम विधान है तथा तत्आश्रित उपासनाका विधान तुल्य है; यातें 'शिष्टेः' नाम तुल्य विधान होनेसैं अंगोंकी नाई उपासनाके समुच्चयका नियम है. इति ॥ ६२ ॥

पूर्वपक्षसूत्र–

समाहारात् ॥ ६३ ॥

अर्थ–ऋग्वेदउक्त प्रणवकी और सामवेदउक्त उद्गीथकी उद्गाताकरके 'समाहारात्' नाम एक उपासना किये श्रुति फल दिखावे है यातें प्रणव उद्गीथ उभयके एक ज्ञानका फल कहती हुई श्रुति सर्ववेदअंग आश्रित उपासनाका समुच्चय सूचन करे है. इति ॥ ६३ ॥

पूर्वपक्ष–

गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ॥ ६४ ॥

गुणसाधारण्यश्रुतेः । च । इति प० ।

अर्थ–ओंकारको विद्यागुण और विद्या आश्रय कर वेदत्रय साधारण अंगीकार किया है. सो उद्गीथउपासनामैं गुणरूप जो ओंकार तिसकरके वेदत्रय-

उक्त कर्म होवे है यातें सर्व कर्ममैं ओंकारका 'साधारण्यश्रुतेः' नाम श्रवण होवे है; यातें तत्आश्रित उपासनाकाभी समुच्चय कर अनुष्ठान करे. इति ॥ ६४ ॥

सिद्धांतसूत्र–

न वा तत्सहभावाश्रुतेः ॥ ६५ ॥

न । वा । तत्सहभावाश्रुतेः । इति प० ।

अर्थ–'वा' शब्द पूर्वपक्षके निरासार्थ है. यथा अंगउपासनाका समुच्चय सुना है तथा अंगआश्रित उद्गीथादि उपासनाका 'सहभाव' नाम समुच्चय 'अश्रुतेः' नाम सुना नहीं; यातें अंगआश्रित उपासनाके समुच्चयका नियम नहीं. इति ॥६५॥

दर्शनाच्च ॥ ६६ ॥

दर्शनात् । च । इति प० ।

अर्थ–अंगआश्रित उपासनाके असमुच्चयको अनेक श्रुतियां दिखावे हैं यातें सर्व उपासनाके समुच्चयका अंगीकार नहीं. इति सिद्धम् ॥ ६६ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां तृतीयाध्यायस्य
तृतीयः पादः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थपादप्रारंभः ।

पूर्वपादमैं सगुण निर्गुण ब्रह्मविद्याके उपसंहारकथनसैं परिमाण निश्चय किया है. इस पादमैं तिस विद्याको कर्म विना पुरुषार्थ साधनता निरूपण करे हैं. और विद्याके अंतरंग साधन जे शमादिक तथा बहिरंग साधन जे यज्ञादि तिनको निरूपण करे हैं. इस पादके दो अधिक पचास ५२ सूत्र हैं. तहां सप्तदश १७ अधिकरण हैं. पंच अधिक तीस ३५ गुण हैं.

तथाहि—

सङ्ख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग.
१	अ०	+	स्वतंत्रज्ञानसैं मोक्ष.
२	+	गु०	ज्ञान कर्मअंग जैमिनिपूर्वपक्ष.
३	+	गु०	ज्ञा०
४	+	गु०	ज्ञा०

सङ्ख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग.
५	+	गु०	ज्ञान कर्मअंग जैमिनिपूर्वपक्ष.
६	+	गु०	ज्ञा०
७	+	गु०	ज्ञा०
८	+	गु०	ज्ञा०
९	+	गु०	उत्तर.
१०	+	गु०	उ०
११	+	गु०	उ०
१२	+	गु०	उ०
१३	+	गु०	उ०
१४	+	गु०	उ०
१५	+	गु०	उ०
१६	+	गु०	उ०
१७	+	गु०	ज्ञान स्वतंत्र मोक्षहेतु.
१८	अ०	+	जैमिनिपूर्वपक्ष.
१९	+	गु०	सिद्धांत.
२०	+	गु०	आश्रमविचार.
२१	अ०	+	उद्गीथविधेय.
२२	+	गु०	उ०
२३	अ०	+	कथाविचार.
२४	+	गु०	क०
२५	अ०	+	विद्या स्वतंत्र.
२६	अ०	+	विद्यामैं कर्मअपेक्षा.
२७	+	गु०	शमादिविधान.
२८	अ०	+	सर्वान्न अनुज्ञा अर्थवाद.
२९	+	गु०	स०
३०	+	गु०	स०
३१	+	गु०	स०
३२	अ०	+	आश्रमकर्मविचार.
३३	+	गु०	कर्म०

सङ्ख्या।	अधिकरण।	गुण।	प्रसङ्ग.
३४	+	गु०	कर्म०
३५	+	गु०	कर्म०
३६	अ०	+	आश्रमविना कर्मअधिकार.
३७	+	गु०	आ०
३८	+	गु०	आ०
३९	+	गु०	आ०
४०	अ०	+	प्रच्युतकर्म विद्याहेतु नहीं.
४१	अ०	+	पूर्वपक्ष.
४२	+	गु०	उपपात व अंगीकार.
४३	अ०	+	अवकीर्णीसह व्यवहारनि०
४४	अ०	+	पूर्वपक्ष.
४५	+	गु०	कर्मकर्ता-विचार.
४६	+	गु०	क०
४७	अ०	+	श्रवणादिविधि.
४८	+	गु०	गृहस्थाश्रमादिअंगीकार.
४९	+	गु०	ब्रह्मचर्यवि०
५०	अ०	+	वाल्यश्रवण.
५१	अ०	+	इस जन्मका ज्ञान.
५२	अ०	+	निर्विशेषमुक्तिसिद्धि.
	१७	३५	

इति. तहां यह प्रथम सूत्र है-

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति वादरायणः ॥ १ ॥

पुरुषार्थः। अतः। शब्दात्। इति। वादरायणः। इति प०।

अर्थ-आत्मविद्या कर्मकर्ता जीवद्वारा यज्ञमैं साधन है वा स्वतंत्र पुरुषार्थका साधन है, जा संदेह हुएसैं पूर्वपक्षमैं ब्रह्मज्ञानको कर्मोंका अंग मानेसैं यह उत्तर पक्ष है. 'अतः' नाम उपनिषद्जन्य आत्मज्ञानसैं स्वतंत्रही 'पुरुषार्थः' नाम मोक्ष सिद्ध होवे है; यह वादरायण आचार्य माने हैं. 'शब्दात्' यह तहां हेतु है. "तरति शोकमात्मवित्। ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति"

इत्यादि श्रुतियोंका 'शब्द' पदसैं ग्रहण है. वे केवल विद्याको मोक्षकारणताके वोधक हैं; सगुणविद्याभी स्वतंत्र फलका हेतु है. इति ॥ १ ॥

आगे पट्सूत्रोंसैं जैमिनिका पूर्वपक्ष हे —

शेषत्वात् पुरुषार्थवादो यथाऽन्येष्विति जैमिनिः ॥२॥

शेषत्वात् । पुरुषार्थवादः । यथा । अन्येषु । इति । जैमिनिः । इति प० ।

अर्थ—आत्मा कर्मोंका कर्ता है, यातें तत्–ज्ञानभी आत्मद्वारा कर्मोंका 'शेषत्वात्' नाम अंग है. "तत्त्वज्ञानं कर्माङ्गं फलशून्यत्वे सति कर्माश्रयत्वात्" इति । यातें 'यथा अन्येषु' नाम "यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति" इत्यादिकोंमैं फलश्रुति अर्थवादरूप हैं तथा "तरति शोकमात्मवित्" इत्यादि पुरुषार्थश्रुति अर्थवादरूप है, यह जैमिनि आचार्य माने हैं. इति ॥ २ ॥

आचारदर्शनात् ॥ ३ ॥

अर्थ—बृहत्के तृतीय अध्यायके आरंभमैं यह वाक्य है कि–"जनकोह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेन ईजे" इति। यह श्रुति ब्रह्मविद्यावान् जनकमैं विद्यासहित 'आचार' नाम कर्माचारको 'दर्शनात्' नाम दिखावे है; यातें विद्या स्वतंत्र नहीं किंतु कर्मोंका अंग है. श्रुतिअर्थ—विदेहोंका अधिपति जनकराजा बहुदक्षिणायुक्त यज्ञसैं 'ईजे' नाम यजन करता भया. इति ॥ ३ ॥

तच्छ्रुतेः ॥ ४ ॥

तत्– श्रुतेः । इति प० ।

अर्थ—"यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति" जा छांदोग्य प्रथम प्रपाठक गतश्रुतिमैं विद्याको 'तत्' नाम कर्मोंका अंग 'श्रुतेः' नाम सुना है; यातें स्वतंत्रविद्या फलका हेतु नहीं. इति ॥ ४ ॥

समन्वारम्भणात ॥ ५ ॥

समन्वारम्भणात् । इति प० ।

अर्थ—"तम् उत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति स विज्ञानो भवति स चि-

१ तिस परलोकगामीको जे विहित प्रतिषिद्ध विद्या कर्म ते सम्यक् 'अन्वारभेते' नाम अनुगमन करे हैं और प्रज्ञा नाम अतीतकर्मफलवासनाभी गमन करे है.

ज्ञानम् एव अन्ववक्रामति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च" जा बृहदारण्यक चतुर्थ अध्यायगत श्रुतिमैं विद्यासहित कर्मोंका साहित्य प्रतीत होवे है यातैंभी मुक्ति विद्याका फल नहीं, किंतु विद्या कर्मोंका अंग है. इति ॥ ५ ॥

तद्वतो विधानात् ॥ ६ ॥

तद्वतः । विधानात् । इति प० ।

अर्थ—छांदोग्यसमाप्तिमैं यह कहा है—"तद्धैतत् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच, प्रजापतिर्मनवे, मनुः प्रजाभ्यः, आचार्यकुलात् वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेण अभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानः धार्मिकान् विदधत् आत्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्य अहिंसन् सर्वभूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकं अभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते" इति इसमैं 'तद्वतः' नाम सर्ववेदार्थ—ज्ञानवान्को 'विधानात्' नाम कर्म विधान किये हैं; यातैं ब्रह्मविद्या कर्मोंका अंग है. श्रुतिअर्थ—यह आत्मज्ञान हिरण्यगर्भने कश्यपको कहा था, कश्यपने मनुसे कहा था, मनुने प्रजाओंसे कहा था, कि—आचार्यकुलसैं वेद पढ़के यथा विधान है तथा गुरुकर्मसैं शेष कालकर वेद अध्ययन करके 'अभिसमावृत्य' नाम धर्मजिज्ञासा समाप्त करके 'धार्मिकान्' नाम पुत्रशिष्यनको धर्मयुक्तनको प्रेरणा करताहुआ इंद्रियोंको ब्रह्ममैं स्थापन करके स्थावर जंगम सर्व भूतनको पीडा नहीं देताहुआ भिक्षानिमित्त अटनादिकोंसैं परपीडा होवे है यातैं 'तीर्थेभ्यः अन्यत्र' यह कहा है; उक्तविध करताहुआ ब्रह्मलोकको प्राप्त होवे है; तहांसैं फिरकर नहीं आवे है. इति ॥ ६ ॥

नियमाच्च ॥ ७ ॥

नियमात् । च । इति प० ।

अर्थ—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे" जा ईशावास्य—श्रुति जीवनपर्यंत कर्म करनेका 'नियमात्' नाम नियम करे है: यातैं विद्या कर्मोंका अंग है. श्रुतिअर्थ—इस देहमैं सौ वर्ष जीवनकी इच्छा करे, परंतु कर्मोंको करताहुआ इच्छा करे.

हे नर ! जो तू इसप्रकार करेगा तो तुझमैं अशुभ कर्मोंका लेप नहीं होगा. उक्त प्रकारसैं अपर प्रकार कोई नहीं कि जिससे कर्म लिपायमान नहीं होवें. इति ॥ ७ ॥

अव०-अब सूत्रकार पूर्वपक्षका समाधान करे हैं—

अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ॥ ८ ॥

अधिकोपदेशात् । तु । बादरायणस्य । एवम् । तत्-दर्शनात । इति प० ।

अर्थ-'तु' पद पूर्वपक्षनिषेध-अर्थ है. "तत्त्वज्ञानं कर्माङ्गं फलशून्यत्वे सति कर्माङ्गाश्रयत्वात्" जा अनुमानमैं कर्मांगाश्रयत्व इतना हेतु असिद्ध-है. 'अधिकोपदेशात्' नाम कर्मकर्ता संसारीसैं अकर्ता असंसारी चिन्मा-त्रका वेदांतमैं उपदेश किया है; यातैं तत्त्वज्ञान चेतनमात्रके आश्रय है. कर्म-रूप कर्मकर्ताके आश्रय नहीं: यातैं हेतु असिद्ध है. यातैं "बादरायणस्य" नाम सूत्रकारका जो मत है सो 'एवम्' नाम जैसे कहा है; तथाहि है. "तत्-दर्शनात्" नाम "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" इत्यादिक अनेकश्रुतिमैं कर्तासैं अधिक आत्माका उपदेश देखा है यातैं बादरायण-उक्त मतही समीचीन है. इति ॥ ८ ॥

आचारशंकाका उत्तर—

तुल्यं तु दर्शनम् ॥ ९ ॥

तुल्यम् । तु । दर्शनम् । इति प० ।

अर्थ-विद्याको कर्मोंका अंग नहीं मानें तोभी आचारदर्शन तुल्य है. त-थाहि-"पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं न जुहुवांचक्रिरे" जा कौषीतकिश्रुतिमैं विद्वान्मैं कर्माचारके अभावको दिखाया है; यातैं विद्या कर्मोंका अंग नहीं. इति ॥ ९ ॥

असार्वत्रिकी ॥ १० ॥

अर्थ-"यदेव विद्यया करोति" यह जो पूर्व श्रुति कही थी सो 'असा-र्वत्रिकी' नाम सर्वविद्या इसका विषय नहीं; किंतु प्रसंगमैं जो उद्गीथविद्या ताकी बोधक है: यातैं उक्त श्रुतिसैंभी विद्या कर्मोंका अंग नहीं. इति ॥ १० ॥

विभागः शतवत् ॥ ११ ॥

विभागः। शतवत्। इति प०।

अर्थ-"तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते" जा श्रुतिमें "विभागः" नाम विभागका अंगीकार है. 'शतवत्' नाम "यथा शतमाभ्यां दीयताम्' याविध वाक्य उच्चारण कियेसैं पचास एकको और पचास एकको दिये जाय हैं; तथा "विद्यया अन्यस्यारम्भणं कर्मणाऽन्यस्यारम्भणम्" जाविध विभागका अंगीकार है; यातें विद्या कर्मोंका अंग नहीं. श्रुतिअर्थ पूर्व कर दिया है. इति ॥ ११ ॥

अध्ययनमात्रवतः ॥ १२ ॥

अर्थ-"आचार्यकुलात् वेदम् अधीत्य" जा श्रुतिमें 'अध्ययन' नाम वेद-अध्ययनमात्रवान्को कर्म विधान किये हैं, आत्मज्ञानवान्को नहीं; यातें विद्या कर्मोंका अंग नहीं. इति ॥ १२ ॥

नाविशेषात् ॥ १३ ॥

न। अविशेषात्। इति प०।

अर्थ-'कुर्वन्' यह जो नियमबोधक वाक्य कहा था तहां ज्ञानी अज्ञानी "अविशेषात्" नाम विशेष प्रतीत होवे नहीं यातें सो ज्ञानीका बोधक नहीं. इति ॥ १३ ॥

स्तुतयेऽनुमतिर्वा ॥ १४ ॥

स्तुतये। अनुमतिः। वा। इति प०।

अर्थ-'वा' नाम अथवा उक्त वाक्यमैं ज्ञानीको 'अनुमतिः' नाम कर्मकी अनुज्ञा है सो 'स्तुतये' नाम ब्रह्मविद्याकी स्तुतिके अर्थ है. इस पक्षमैंभी विद्याका प्रत्यक्ष फल दिखानेसैं कालांतरभावी फलवान् कर्मका विद्या अंग-नहीं. इति ॥ १४ ॥

कामकारेण चैके ॥ १५ ॥

कामकारेण। च। एके। इति प०।

अर्थ-परोक्षफलवान् जे कर्म तिनके साधन जे पुत्रादिक तिनको 'एके' नाम

आत्मवेत्ता 'कामकारेण' नाम स्वइच्छासैं त्याग देतें हैं; यह श्रुति कहे है. तथाहि–" एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजन्ति " जा वृहदारण्यकके पष्ठाध्यायगत श्रुति त्यागको दिखावे है. श्रुतिअर्थ–भावी त्यागी इस आत्मलोककी इच्छा करते हुए त्याग करे हैं. इति ॥ १५ ॥

उपमर्दं च ॥ १७ ॥

उपमर्दम् । च । इति प० ।

अर्थ–कर्मसेवनका हेतु जो क्रिया, कारक, व फल जा त्रयका विभाग सो सर्व अविद्यासैं होवे है; विद्यासैं ताका 'उपमर्दम्' नाम नाश माना है; "यत्र तु अस्य सर्वम् आत्मा एव अभूत् तत् केन कं पश्येत्" इत्यादिक श्रुतिसैं तिनका अभाव बोधन किया है; यातें विद्याको कर्मोंका विरोधी होनेसैं विद्या कर्मोंका अंग नहीं, किंतु स्वतंत्रफलका हेतु है. इति ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वरेतस्सु च शब्दे हि ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वरेतस्सु । च । शब्दे । हि । । इति प० ।

अर्थ–'ऊर्ध्वरेतस्सु' नाम त्यागी पुरुषोंमें विद्या निश्चित है, अग्निहोत्रादिक कर्मोंका तिनमैं अभाव है: यातें तिनकी विद्या कर्मोंका अंग नहीं. तहां यह अनुमान है—'विद्या कर्मोंका अंग नहीं परस्पर व्यभिचार होनेसैं ऋतुगमन नैष्ठिक व्रतवत्' इति । संन्यासाश्रमका साधक प्रमाण कौन है? जा शंकानिषेधार्थ 'शब्दे हि' इस सूत्रमैं कहा है 'शब्दे' नाम श्रुतिमैं ऊर्ध्वरेताश्रम सुना है. तथाहि—"त्रयो धर्मस्कंधाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः, तपः द्वितीयः, ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयः, अत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्वे एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" इति । यह छांदोग्यके द्वितीय प्रपाठकमैं कहा है. श्रुतिअर्थ–धर्मके त्रय विभाग हैं. तहां यज्ञ, अध्ययन, और दान यह प्रथम है; तप द्वितीय है; और ब्रह्मचर्य तृतीय है. ब्रह्मचारी 'अत्यंत' नाम मरणपर्यंत आचार्यकुलमैं नियमोंसैं रहे; उक्त त्रय आश्रमी पुण्यलोकवान् होवे हैं. और जो ब्रह्ममैं सम्यक् स्थित है सो पुण्यलोकसैं विलक्षण अमृत (मोक्ष) को प्राप्त होवे है. इति । यातें विद्या कर्मोंका अंग नहीं, किंतु स्वतंत्र मुक्तिरूप फलका हेतु है. इति सिद्धम् ॥ १७ ॥

अव०—संन्यास किया चाहिये वा नहीं? जा संदेहसैं कहे हैं कि—

पूर्वपक्षसूत्र—

परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ॥ १८ ॥

परामर्शम्। जैमिनिः। अचोदना। च। अपवदति। हि। इति प०।

अर्थ—"त्रयो धर्मस्कंधाः" जा श्रुतिमैं चारों आश्रमोका जो परामर्श है, सो अनुवादमात्र है यह जैमिनि आचार्य माने हैं. उक्त श्रुति 'अचोदना' नाम विधिरूप नहीं. और "वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते" यह श्रुति संन्यासकी 'अपवदति' नाम निंदा करे है; यातें संन्यासाश्रम श्रुतिसिद्ध नहीं, किंतु स्मृतिसिद्ध है. इति ॥ १८ ॥

सिद्धांत—

अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः ॥ १९ ॥

अनुष्ठेयम्। बादरायणः। साम्यश्रुतेः। इति प०।

अर्थ—"त्रयो धर्मस्कंधाः" जा श्रुतिमैं प्रामाणिक जो गृहस्थ तिसके साथही संन्यासादि अन्य आश्रमभी 'साम्यश्रुतेः' नाम तुल्य सुने हैं; यातें संन्यासाश्रम 'अनुष्ठेयम्' नाम सेवनयोग्य है यह बादरायण आचार्य माने है. 'ब्रह्मसंस्थः' जा वाक्यकरके संन्यासाश्रमका अनुवाद अंगीकृत है. इति तात्पर्यम् ॥ १९ ॥

विधिर्वा धारणवत् ॥ २० ॥

विधिः। वा। धारणवत्। इति प०।

अर्थ—'वा' नाम अथवा उक्त वाक्यमैं विधि अंगीकार हैः अनुवादका अंगीकार नहीं. 'धारणवत्' यह तहां दृष्टांत है. मृताग्निहोत्रप्रसंगमैं यह वाक्य है कि "अधस्तात् समिधं धारयन् अनुद्रवेत् उपरि हि देवेभ्यो धारयति" इति। इस श्रुतिमैं "अधस्तात् समिधं धारयन् अनुद्रवेत्" इतना विधिवाक्य है; उत्तरवाक्य अनुवाद मात्र है. स्रुक्‌दंडके नीचे समिध धारण करे यह तहां अंगीकार है, तोभी स्रुक्‌गत हविके ऊपर समिधका जो धारण सो अपूर्व है; यातें एकवाक्यताको भंग करके "उपरि देवेभ्यो धारयति" या वाक्यमैंभी विधिकल्पना करी है. इस उक्त धारणवत् 'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति' जा वाक्यमैं विधिकल्पना है यातें संन्यासको प्रामाणिक होनेसैं ब्रह्मविद्या स्वतंत्रफलका हेतु है. इति ॥ २० ॥

स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ॥ २१ ॥

स्तुतिमात्रम् । उपादानात् । इति । चेत् । न । अपूर्वत्वात् इति प० ।

अर्थ—"एषां भूतानां पृथिवी रसः, पृथिव्या आपो रसः, अपाम् ओषधयो रसः, ओषधीनां पुरुषो रसः, पुरुषस्य वाग् रसः, वाच ऋग् रसः, ऋचः साम रसः, साम्न उद्गीथो रसः । स एष रसानां रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यत् उद्गीथः" जा छांदोग्यके आरंभमैं उद्गीथविद्या सुनी है. श्रुति–अर्थ–चराचर भूतनका पृथिवी रस है अर्थात् परायण है, पृथिवीका जल रस है, जलोंका औषधी रस है, औषधियोंका पुरुष रस है, पुरुषका वाक् रस है, वाक्का ऋचा रस है, ऋचाओंका साम रस है और सामका उद्गीथ रस है; सो यह उद्गीथ रसोंकाभी रसतम है, और परम अर्थात् उत्कृष्ट परार्ध्य नाम परमात्मवत् उपास्य होनेसैं परमात्म स्थानके योग्य है, सो अष्टम है. इति । तहां कर्म अंगरूप उद्गीथकी स्तुति मात्र है वा उद्गीथ उपासनाके गुण विधान किये हैं? यह संशय है–कर्मोंका अंग जो उद्गीथ ताको 'उपादानात्' नाम उक्त वाक्यमैं ग्रहण किया है; यातें उक्तवाक्यमैं कर्मअंग विधिकी स्तुति मात्र है. यह पूर्वपक्ष है. 'इति चेत्' नाम उक्त शंका करैं तो असंगत है उद्गीथउपासना और रसतमत्वादिक गुण 'अपूर्वत्वात्' नाम अपरप्रमाणकरके अप्राप्त हैं अर्थात् विधेय हैं; यातें शंका असंगत है. इति ॥ २१ ॥

भावशब्दाच्च ॥ २२ ॥

भावशब्दात् । च । इति प०

अर्थ—"उद्गीथम् उपासीत साम उपासीत" इत्यादिक वाक्यनमैं 'भावशब्दात्' नाम विधिरूप शब्द सुना है; यातें रसतमत्वादिगुण विधये हैं, इति ॥ २२ ॥

पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ॥ २३ ॥

पारिप्लवार्थाः । इति । चेत् । न । विशेषितत्वात् । इति प० ।

अर्थ—"अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्य्ये बभूवतुर्मैत्रेयी कात्यायनी च" यह बृहदारण्यकके षष्ठ अध्यायमैं आख्यायिका सुनी है तथा अपर वेदांतमैं सुनी है. ते पारिप्लवार्थ हैं वा समीप विद्यास्तुतिके अर्थ हैं? यह तहां संदेह है. पारिप्लवअर्थही ते कथा हैं, विद्यास्तुतिअर्थ नहीं; यह पूर्वपक्ष

है. "पारिप्लवम् आचक्षीत" जा आरंभ करके "मनुर्वैवस्वतो राजा" इत्यादि वाक्यशेषमैं कोई कथाको पारिप्लवका शेष कर विशेषित किया है; यातैं उक्त शंका असंगत है. यातैं उपनिषदोंकी कथाको पारिप्लवका शेष कहिना संभवे नहीं. इति ॥ २३ ॥

कथाप्रयोजन कहे हैं—

तथा चैकवाक्यतोपबन्धात् ॥ २४ ॥

तथा । च । एकवाक्यतोपबन्धात् । इति प० ।

अर्थ—'तथा च' नाम उक्त युक्तिसैं कथाको पारिप्लव अर्थत्वका अभाव सिद्ध हुएसैं समीपताके बलसैं कथाका विद्यामैं उपयोग मानना युक्त है. 'एकवाक्यतोपबन्धात्' यह तहां हेतु है. तहां उक्त कथाका तिस तिस विद्यासैं संबंधका उपलाभ होवे है. यह हेतुवाक्यका तात्पर्य है; यातैं कथा विद्याका अंग है. पुत्रादिप्रवृत्ति राजाप्रति अश्वमेधमैं जो नाना कथाका कथन है सो पारिप्लव कहिये है, इति ॥ २४ ॥

अव०—ब्रह्मविद्या स्वफल मोक्षमैं यज्ञादिकर्मोंकी अपेक्षा करे है वा नहीं ? जा संदेहसैं कहे हैं—

अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ॥ २५ ॥

अतः । एव । च । अग्नीन्धनाद्यनपेक्षा । इति प० ।

अर्थ—'अतः' नाम ब्रह्मविद्याको स्वतंत्र मोक्षका हेतु होनेसैं 'अग्नीन्धनादि' नाम स्वआश्रमविहित कर्मोंकी अपेक्षा नहीं अर्थात् कर्म साक्षात् मोक्षके हेतु नहीं. इति ॥ २५ ॥

अव०—ब्रह्मविद्याको स्वउत्पत्तिमैं कर्मोंकी अपेक्षा है वा नहीं ? जा संशयसैं कहे हैं कि—

सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ॥ २६ ॥

सर्वापेक्षा । च । यज्ञादिश्रुतेः । अश्ववत् । इति प० ।

अर्थ—बृहदारण्यकके षष्ठ अध्यायगत चतुर्थब्राह्मणमैं यह कहा है— "एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोकानाम् असम्भेदाय । तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति" इति 'यज्ञादिश्रुतेः' नाम यह श्रुति सर्व कर्मोंके ज्ञानका साधन कहे है; यातैं

ब्रह्मविद्या स्वउत्पत्तिमैं 'सर्वापेक्षा' नाम सर्व आश्रमकर्मोंकी साधनता चाहे है. यथा योग्यतासैं रथमैं अश्वको जोड़े हैं, लांगलआकर्षणमैं नहीं; तथा मोक्षमैं कर्मोंको साधनता नहीं. इति ॥ २६ ॥

अंतरंगसाधन कहे हैं:—

शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ॥ २७ ॥

शमदमाद्युपेतः । स्यात् । तथापि । तु । तद्विधेः । तदङ्गतया । तेषाम् । अवश्यम् । अनुष्ठेयत्वात् । इति प० ।

अर्थ—जो कोई यज्ञादिकोंको ज्ञानके साधन नहीं माने 'तथापि' नाम तोभी 'शमदमाद्युपेतः' नाम शमादिसाधनयुक्त हुआ ब्रह्मविद्यार्थी अवश्य 'स्यात्' नाम होवे है. तहां हेतु कहे हैं—"तस्मादेवंवित् शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मनि एव आत्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं पाप्मा तपति विपापो विरजो विचिकित्सो ब्राह्मणो भवति एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति" जा बृहदारण्यकके षष्ठाध्यायगत श्रुतिमैं जो शमादिकोंकी विधिही है सो 'तद्विधेः' इस पदसैं अंगीकृत है; यातें 'तद्विधेः' नाम शमादिकोंकी विधिसैं यह निश्चित है, जो शमादियुक्त है सो विद्यार्थी अवश्य होवे है. इति । सो विधि स्वतंत्र नहीं किंतु 'तदंगतया' नाम विद्या अंगत्वरूपसैं अंगीकृत है. यातें विद्यार्थी जनोंकरके 'तेषाम्' नाम शमादिकोंको अवश्य 'अनुष्ठेयत्वात्' नाम सेवनयोग्य होनेसैं तिनको अंतरंग साधनता है. इति ॥ २७ ॥

सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् ॥ २८ ॥

सर्वान्नानुमतिः । च । प्राणात्यये । तद्दर्शनात् । इति प० ।

अर्थ—"मे किमन्नं किंवास इति । यदिदं किंचाश्वभ्य आकृमिभ्य आकीटपतङ्गेभ्यस्तत्तेऽन्नम् आपो वासः इति । न ह वा अस्य अनन्नं जग्धं भवति नानन्नं परिगृहीतं य एवमेतदनस्यान्नं वेद तद्विद्वांसः श्रोत्रिया अशिष्यन्त आचामन्ति अशित्वा आचामन्ति

एतमेव तदन्नम् अनन्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते" जा बृहदारण्यकके अष्टमअध्यायगत वाक्य सुना है. अर्थ–हमारा अन्न क्या है? और वास क्या है? इति। जो यह किंच अश्वकीटपतंगोंका अन्न है, सो तुम्हारा अन्न है; जल तुम्हारा वास है. इति। अनन्न भुक्त नहीं, अनन्न परिगृहीत नहीं, जो इसप्रकार प्राणके अन्नको जानते हैं ते विद्वान् श्रोत्रिय अन्नभक्षणसैं पूर्व उत्तर जलका आचमन करे हैं; ते प्राणको हम अनन्न करे हैं, यह माने हैं. जो जाको वास देवे है सो ताको अनन्न करे हैं इति। उक्त वाक्यमैं प्राण उपासकको जो सर्व अन्नकी आज्ञा है सो विद्याका अंग है वा स्तुतिअर्थ है? जा संदेहकी निवृत्तिके अर्थ कहे हैं–सर्व अन्नकी जो 'अनुमति' नाम आज्ञा है सो विद्याका अंग नहीं किंतु प्राणोंकी उपासनामैं सर्व अन्नका चिंतन स्तुतिअर्थ अर्थवादरूप है. 'प्राणात्यये' नाम परआपदामैं सुरासैं विना सर्व पुरुषोंके प्रति सर्वअन्नके खानेकी 'अनुमति' नाम प्रेरणा है; आपदासैं विना नहीं. 'तद्दर्शनात्' नाम अभक्ष्यका भक्षण आपदाकालमैं श्रुतिविषे देखा है. छांदोग्यतृतीयमैं गाथा है. कुरुक्षेत्रभूमिमैं दुर्भिक्षके हुए तहांका वासी चाक्रायणऋषि अपरदेश चलागया. तहां एक ग्राममैं हथिवान्सैं तिसका उच्छिष्ट अन्न लेकर भक्षण किया था सो आपदामैं प्राणरक्षार्थ अभक्ष्यभक्षण किया था यातें आपदामैं अन्न आज्ञा है; आपदा विना नहीं. ज्ञानीकोभी आपदाविना अभक्ष्यभक्षण करना उचित नहीं. इति ॥ २८ ॥

अबाधाच्च ॥ २९ ॥

अबाधात्। च। इति प०।

अर्थ–"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः" इत्यादिक जो भक्ष्यअभक्ष्यके विभागका बोधक शास्त्र ताका सर्वान्न आज्ञाको अर्थवादमात्र मानेसैं 'अबाधात्' नाम बाध होवे नहीं, अन्यथा बाध होवेगा; यातें सर्वान्नआज्ञा अर्थवाद मात्र है. इति ॥ २९ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ ३० ॥

अपि। च। स्मर्यते। इति प०।

अर्थ–'अपि च' नाम आपदासैं विना ज्ञानी और अज्ञानी सर्वको सर्वके अन्नभक्षणका निषेध 'स्मर्यते' नाम स्मृतिमैं कहा है. इति ॥ ३० ॥

शब्दश्चास्याकामकारे ॥ ३१ ॥

शब्दः । च । अस्य । अकामकारे । इति प० ।

अर्थ–"ब्राह्मणः सुरां न पिबेत्" इत्यादि शब्दभी अभक्ष्यके भक्षणका निषेध करे हैं; यातें 'अकामकारे' नाम स्वइच्छानुसार प्रवृत्तिके निषेधक शब्दको विद्यमान होनेसें सर्वान्नअनुज्ञा अर्थवादमात्र है. इति ॥ ३१ ॥

अव०–नित्यकर्म अनधिकारीको कर्तव्य हैं. वा नहीं? जा संदेहसें कहे हैं—

विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ॥ ३२ ॥

विहितत्वात् । च । आश्रमकर्म । अपि । इति प० ।

अर्थ–"यावज्जीवम् अग्निहोत्रं जुहोति" इत्यादि श्रुतिकरके नित्यकर्म 'विहितत्वात्' नाम विधान किये हैं; यातें अनधिकारीकोभी नित्यकर्म कर्तव्य हैं. इति ॥ ३२ ॥

सहकारित्वेन च ॥ ३३ ॥

सहकारित्वेन । च । इति प० ।

अर्थ–नित्यकर्म अंतःकरणशुद्धिका हेतु है यातें 'सहकारित्वेन' नाम अंतःकरणशुद्धिद्वारा सहकारी साधन होनेसैंभी नित्यकर्म करने योग्य है. इति ॥ ३३ ॥

सर्वथाऽपि त एवोभयलिङ्गात् ॥ ३४ ॥

सर्वथा । अपि । ते । एव उभयलिङ्गात् । इति प० ।

अर्थ–'सर्वथाऽपि' नाम नित्यत्वरूपसैं और ज्ञानार्थत्वरूपसें 'ते' नाम अग्निहोत्रादि धर्म अवश्य कर्तव्य हैं. 'एव' पद कर्मभेदके निषेधअर्थ है. 'उभयलिङ्गात्' यह तहां हेतु है. यज्ञेन यह श्रुतिरूप लिंग हैं. "अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः" यह स्मृतिरूप लिङ्ग है. ये उभय लिंग कर्मको ज्ञानका साधन कहे हैं, यातें कर्म अवश्य कर्तव्य हैं. इति ॥ ३४ ॥

अनभिभवं च दर्शयति ॥ ३५ ॥

अनभिभवम् । च । दर्शयति । इति प० ।

अर्थ–"एष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति" इत्यादि श्रुति कर्मोंको चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानसाधनतामें आत्माके 'अनभिभवम्' नाम

तिरस्काराभावरूप लिंगको 'दर्शयति' नाम दिखावे है. 'न नश्यति' जा वाक्यमैं अनभिभवका अंगीकार है; यातें सर्व आश्रम नित्य कर्मनको ज्ञानार्थत्व हैं. इति ॥ ३५ ॥

अव०—आश्रमरहितका ब्रह्मविद्यामैं अधिकार है वा नहीं? यह तहां संदेह है। 'यज्ञेन' यह श्रुति आश्रमकर्मोंको ज्ञानका साधन कहे हैं; यातें आश्रमीका अधिकार है. आश्रमरहित कृतकर्म ज्ञानके हेतु नहीं, यातें आश्रमरहितका ज्ञानमैं अधिकार नहीं यह पूर्वपक्ष है. तहां यह उत्तर है—

अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः ॥ ३६ ॥

अन्तरा । च । अपि । तु । तत् । दृष्टेः । इति प० ।

अर्थ—'अन्तरा चापि' नाम आश्रमरहित पुरुषोंकाभी ब्रह्मविद्यामैं अधिकार है. 'तु' शब्द अधिकारके निषेधका अभाव बोधन करे है. 'तत्' नाम विद्याके अधिकारको आश्रमरहित जे रैक्कादिक तिनमैं 'दृष्टेः' नाम श्रुतिस्मृतिमैं देखा है. इति ॥ ३६ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ ३७ ॥

अपि । च । स्मर्यते । इति प० ।

अर्थ—'अपि च' नाम किंच संवर्तकादिकोंमैं आश्रमकर्मविनाभी महायोगित्व इतिहासमैं 'स्मर्यते' नाम स्मरण किया है. इति ॥ ३७ ॥

अव०—ननु रैक्कादिकोंमैं पूर्वजन्मकृत संन्याससैं विद्या उपजी थी यातें तिनकी विद्याका दर्शन आधुनिक अनाश्रमीजनोंके विद्याधिकारमैं लिंग नहीं; जा शंकासैं कहे हैं—

विशेषानुग्रहश्च ॥ ३८ ॥

विशेषानुग्रहः । च । इति प० ।

अर्थ—आश्रमरहित पुरुषोंके जे जप, उपासना, देवताराधनादिक कर्मविशेष तिनसैं अनाश्रमीकाभी विद्यामैं 'अनुग्रह' नाम अधिकार है. इति ॥३८॥

अतस्त्वितरज्ज्यायो लिङ्गाच्च ॥ ३९ ॥

अतः । तु । इतरत् । ज्यायः । लिङ्गात् । च । इति प० ।

अर्थ—'अतः' नाम अनाश्रमीसैं 'इतरत्' नाम आश्रम 'ज्यायः' नाम

ज्ञानका हेतु होनेसैं उत्तम है "तेन एति ब्रह्मवित् पुण्यकृत्" इस श्रुतिमें 'पुण्यकृत्' इतना विशेषणरूप लिंग है; यातेंभी उत्तम है, स्वआश्रमउक्त कर्मकर्ता ज्ञानसैं ब्रह्मको प्राप्त होवे है, यह श्रुतिका तात्पर्य है ॥ ३९ ॥

अव०–उत्तमाश्रमसैं जो पूर्वाश्रमको प्राप्त है तिसका कर्म विद्याका हेतु है वा नहीं? जा इसमें संदेह है; ताकी निवृत्ति करे हैं–

तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्रूपाभावेभ्यः ॥ ४० ॥

तद्भूतस्य । तु । न । अतद्भावः । जैमिनेः । अपि । नियमात् । तद्रूपाभावेभ्यः । इति प० ।

अर्थ–'तद्भूतस्य' नाम संन्यासाश्रमको जो प्राप्त है तिसका 'अतत्भाव' नाम उत्तमाश्रमसैं पतित होना संभवे नहीं, यह जैमिनिआचार्यको अंगीकार है; और 'अपि' पदसैं वादरायणाचार्यकोभी उक्तअर्थ अंगीकार है. तहां हेतु कहे हैं–"अरण्यमियात्" जा श्रुतिमैं 'अरण्य' शब्दसैं एकांत उपलक्षित उत्तमाश्रमका ग्रहण है; तिसको 'इयात्' नाम प्राप्त होवे; तासैं पतित नहीं होवे; यह श्रुतिउक्त जो नियम सो सूत्रके नियमपदसैं अंगीकृत है. 'अतत्रूप' इतने पदसैं उत्तमाश्रमसैं पतित होनेका बोधक जो श्रुति तिसका अभाव कहा है. 'अभाव' पदसैं शिष्टाचारके अभावका ग्रहण है. इन उक्त त्रयहेतुसैं उत्तमाश्रमसैं पतित होना अप्रामाणिक है; यातैं पतितके कर्म विद्या उत्पत्तिके कारण नहीं. इति ॥ ४० ॥

अव०–जो प्रमादसैं नैष्ठिकब्रह्मचारी प्रत्यवरोह करे तो ताका प्रायश्चित्त है वा नहीं? जा संदेहसैं पूर्वपक्ष करे हैं:—

न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदयोगात् ॥ ४१ ॥

न । च । आधिकारिकम् । अपि । पतनानुमानात् । तत्-अयोगात् । इति प० ।

अर्थ–अधिकारलक्षण पूर्वमीमांसामैं अवकीर्णी ब्रह्मचारीका प्रायश्चित्त कहा है; सो प्रायश्चित्त 'आधिकारिकम्' कहिये सो आधिकारिक प्रायश्चित्त नैष्ठिक ब्रह्मचारीका 'न च' नाम होवे नहीं. "आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यश्च प्रच्यवते पुनः । प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुद्ध्येत् स आत्महा" यह स्मृति पतनानुमानरूप हेतु है. उक्त स्मरणसैंही 'तत्' नाम प्रायश्चित्त अयोग

है. अवकीर्ण पदसैं योनिमैं निक्षिप्त वीर्यका ग्रहण है. सो सो होवे जिसके सो अवकीर्णी ग्रहण है. इति ॥ ४१ ॥

उत्तरसूत्र—

उपपूर्वमपि त्वेके भावमशनवत्तदुक्तम् ॥ ४२ ॥

उपपूर्वम् । अपि । तु । एके । भावम् । अशनवत् । तत् । उक्तम् । इति प० ।

अर्थ—पूर्व जो पातक कहा है सो महापातक नहीं, जिसकरके ताका प्रायश्चित्त नहीं होवे 'अपि तु' नाम किंतु 'एके' नाम कोई आचार्य 'उपपूर्वम्' नाम पातकपदके पूर्व उपपदको जोड़े हैं अर्थात् उपपातक पाते हैं; यातें उपकुर्वाण ब्रह्मचारीके तुल्य नैष्ठिक ब्रह्मचारीकेभी 'भावम्' नाम प्रायश्चित्तका होना माने हैं. उभय ब्रह्मचारीमैं ब्रह्मचारित्व और अवकीर्णित्व तुल्य है; ताका प्रायश्चित्त संभवे है. गुरुअंगनादिकोंमैं जो गमन है सो महापातक है; ताका प्रायश्चित्त होवे नहीं. 'अशनवत्' नाम यथा मधुमांसभक्षण कियेसैं ब्रह्मचारीके व्रतका लोप माना है, पुनः उसका संस्कार माना है. तथा प्रायश्चित्तभी संभवे है 'तत् उक्तम्' नाम यही अर्थ पूर्वमीमांसामैं कहा है. इति ॥ ४२ ॥

अव०—प्रायश्चित्त कियेसैं तिस पतितके साथ जो शिष्टाचाररूप कर्म है सो विद्याका हेतु है वा नहीं? जा संदेहमैं कहे हैं—

बहिस्तूभयथाऽपि स्मृतेराचाराच्च ॥ ४३ ॥

बहिः । तु । उभयथा । अपि । स्मृतेः । आचारात् । च । इति प० ।

अर्थ—स्वआश्रमसैं जो पतित है तिसका पतन होना महापातक है; अथवा उपपातक है. 'उभयथापि' नाम दो प्रकारसैंही प्रायश्चित्त कियेभी शिष्टपुरुषोंने बाहिर करने चाहिये. "आरूढपतितं विप्रं दृष्ट्वा चान्द्रायणं चरेत" जा स्मृतिमैं पतितकी निंदा सुनी है और 'आचारात्' नाम अवकीर्णीसैं शिष्टोंका अध्ययनादि आचारभी होवे नहीं; यातें प्रायश्चित्त कियेसैं परलोक सिद्ध हुएभी तिनके साथ मिलकर श्रवणादिक किये हुए विद्याके साधन नहीं. इति ॥ ४३ ॥

अव०—अंगाश्रित जो उपासना तिसका कर्ता यजमान है वा ऋत्विक् है? जा संशयसैं सूत्रकार कहे हैं—

स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ॥ ४४ ॥

स्वामिनः । फलश्रुतेः । इति । आत्रेयः । इति प० ।

अर्थ–'स्वामिनः' नाम यजमानको अंगाश्रित उपासनामैं कर्तापना है यह आत्रेय आचार्य माने हैं. 'फलश्रुतेः' नाम तिस उपासनाका यजमानको फल सुना है, यातें सोई कर्ता है. इति ॥ ४४ ॥

आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रियते ॥ ४५ ॥

आर्त्विज्यम् । इति । औडुलोमिः । तस्मै । हि । परिक्रियते । इति प० ।

अर्थ–अंगाश्रित उपासना 'आर्त्विज्यम्' नाम ऋत्विक्कर्तृक है यह औडुलोमि आचार्य माने हैं 'तस्मै' नाम कर्मअर्थ यजमानने ऋत्विक्को 'परिक्रियते' नाम लिया है; यातें फल यजमाननिष्ठ हुएभी कर्ता ताका ऋत्विक्ही है ॥ ४५ ॥

श्रुतेश्च ॥ ४६ ॥

श्रुतेः । च । इति प० ।

अर्थ–"तं ह प्रणवम् उद्गीथाख्यं प्राणदृष्टया विदित्वा बको नाम ऋषिः सत्रिणाम् उद्गाता बभूव" जा वाक्यशेषसैं उपासनाका ऋत्विक्कोही कर्ता सुना है. इति ॥ ४६ ॥

सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ॥ ४७ ॥

सहकार्यन्तरविधिः । पक्षेण । तृतीयम् । तद्वतः । विध्यादिवत् । इति प० ।

अर्थ–बृहदारण्यककें पंचमअध्यायमैं सुना है– "तस्मात् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत् बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्य अथ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्य अथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्यात् तेन ईदृश एव अतोऽन्यदार्तं ततो ह कहोल उपरराम" इति । श्रुतिअर्थ– 'ब्राह्मण' पद अधिकारीका वाचक है. 'पाण्डित्य' पद श्रवणका वाचक है. बाल्य पदसैं मननका ग्रहण है. 'मुनि' पदसैं निदिध्यासन कहा है. 'ब्राह्मण' नाम कृतकृत्य होवे है. सो कृतकृत्य किसकरके होवे है? जिस किस चरणसैं होवे है तिसकरके उक्त लक्षणवान्ही ब्राह्मण होवे है इससैं अन्यत् सर्व मिथ्या है.इति उक्त-वाक्यमैं मौनका विधान है वा नहीं? जा संदेहसैं कहे हैं–श्रवण मननसैं सह-

कारी अंतर जो निदिध्यासन तामैं उक्त वाक्यकरके विधिका अंगीकार है; सो निदिध्यासन–श्रवण मनकी अपेक्षासैं तृतीय है. सो निदिध्यासनविधि 'तद्वतः' नाम परोक्षज्ञानवान् संन्यासीको है; जिस पक्षमैं भेददर्शनकी प्राप्ति है तिस पक्षमैं निदिध्यासन प्राप्त नहीं, यातें विधि अर्थवान् है; यह अर्थ 'पक्षेण' जा पदसैं सूचन किया है 'विध्यादिवत्' नाम पौर्णमासादिकोंमैं आधानादिक हैं अंगांगीसमूह विधिके जो आदिमैं सो 'विध्यादिवत्' कहिये तद्वत् निदिध्यासनरूप अंगमैं विधि है. इति ॥ ४७ ॥

कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः ॥ ४८ ॥

कृत्स्नभावात् । तु । गृहिणः । उपसंहारः । इति प० ।

अर्थ–यद्यपि श्रवणादिप्रधान संन्यास होवे तो छांदोग्यके अंतमैं गृहीका उपसंहार किया है, सो नहीं हुआ चाहिये; तोभी कर्मबाहुल्यसैं गृहस्थका उपसंहार है; संन्यासके असंभवसैं नहीं. 'कृत्स्न' नाम सर्व आश्रमकर्म शमादिक गृहस्थमैंभी 'भावात्' नाम संभवे है; यातें गृहस्थका उपसंहार है. इति उपसंहारबोधक वाक्य समग्र पीछे लिखा दिया है. इति ॥ ४८ ॥

मौनवदितरेषामपि उपदेशात् ॥ ४९ ॥

मौनवत् । इतरेषाम् । अपि । उपदेशात् । इति प० ।

अर्थ–'मौन' पदसैं संन्यास और गृहस्थका ग्रहण है. 'मौनवत् इतरेषाम्' नाम ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थका ग्रहण है. "तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयः" इत्यादि श्रुतिमैं 'उपदेशात्' नाम तिनका उपदेश किया है; यातें ब्रह्मचर्यवानप्रस्थभी सेवन योग्य है. इति ॥ ४९ ॥

अव०–पूर्व जो बाल्य कहा था सो बालकका कर्म जो खड़ा होकर मूत्रत्वादि उसका ग्रहण है वा अंतःकरण शुद्धिका ग्रहण है? जा संदेहसैं कहे हैं–

अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ॥ ५० ॥

अनाविष्कुर्वन् । अन्वयात् । इति प० ।

अर्थ–बाल्य तहां विद्याका अंग है, यातें अंतःकरणशुद्धिका ग्रहण है; बालकके कर्मका ग्रहण नहीं. इस वाक्यका विद्याअंगमैं अन्वय है; यातें 'अनाविष्कुर्वन्' नाम निदिध्यासनादिकोंसैं आत्माको परअर्थ नहीं बोधन कर्ता हुआ गर्भादिकोंसैं रहित होकर स्थित होनेकी इच्छा करे यह 'बाल्येन तिष्ठासेत्' इतेन वाक्यका अर्थ है. इति ॥ ५० ॥

अव०–विद्या इसी जन्ममैं उपजे है वा जन्मांतरमभैंभी उपजे है? जा संदेहसैं कहे हैं:—

ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ॥ ५१ ॥

ऐहिकम् । अपि । अप्रस्तुतप्रतिबन्धे । तद्दर्शनात् । इति प० ।

अर्थ–फल देनेको सन्मुख जो कर्म सो प्रस्तुतप्रतिबंध कहिये हैं. 'अप्रस्तुतप्रतिबन्धे' नाम सो नहीं होवे तो श्रवणादिक कियेसैं 'ऐहिक' नाम इसी जन्ममैं ज्ञान उपजे है. प्रस्तुतप्रतिबंध होवे तो जन्मान्तरमैं ज्ञान उपजे है. 'तद्दर्शनात्' नाम प्रतिबन्ध अप्रतिबन्धसैं ज्ञानउत्पत्तिका श्रुतिमैं अनियम देखा "तद्धैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्चेति" जा बृहदारण्यकके प्रथमअध्यायगत श्रुति प्रतिबंधको दिखाये है. इति ॥ ५१ ॥

अव०–पूर्व यथाज्ञानमैं ऐहिकत्व आमुष्मिकत्वरूप उपचयत्वअपचयत्वका नियम किया है तथा तत् फलमुक्तिमैं नियम है वा नहीं? जा संदेहकी निवृत्ति भगवान् सूत्रकार करे हैं—

एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृते-स्तदवस्थावधृतेः ॥ ५२ ॥

एवम् । मुक्तिफलानियमः । तदवस्थावधृतेः । तदवस्थावधृतेः । इति प० ।

अर्थ–'एवम्' नाम ज्ञानकी नांई मुक्तिरूपफलमैं अनियम है 'तदवस्थावधृतेः' नाम "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" इत्यादिक श्रुतिसैं ब्रह्मको निर्विशेष निश्चय किया है, यातें मुक्ति निर्विशेष है, तामैं उक्त नियम संभवे नहीं 'तदव०' यह जो पुनः पाठ ग्रहण किया है सो अध्यायकी समाप्तिअर्थ है. इति ॥ ५२ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ ४ ॥ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थाध्यायप्रारंभः ।

दोहा—जीवन्मुक्ति उत्क्रांति अरु, पुनि मन उत्तरपंथ ।
ब्रह्मलोक अभेद पुनि, कथन करूं यहि ग्रंथ ॥ १ ॥

इस अध्यायके भी चार पाद हैं. तहां प्रथम पादमैं जीवन्मुक्ति कहेंगे, द्वितीयपादमैं म्रियमाणकी उत्क्रांति कहेंगे, तृतीयपादमैं सगुणउपासकका उत्तरायण मार्ग कहेंगे, चतुर्थपादमैं निर्गुण ब्रह्मवेत्ताकी विदेहमुक्ति कहेंगे. और सगुणब्रह्मवेत्ताकों ब्रह्मलोकप्राप्ति कहेंगे. इतनेके अर्थ इस अध्यायका आरंभ है. इस प्रथमपादमैं उन्नीस सूत्र हैं. तहां चतुर्दश सूत्र अधिकरण हैं; और पंचसूत्र गुणरूप है.

तथाहि—

सङ्ख्या।	अधिकरण।	गुण।	प्रसङ्ग।
१	श्र०	+	श्रवणादि आवृत्तिवि०
२	+	गु०	अ०
३	अ०	+	अहंग्रहविचार.
४	अ०	+	प्रतीकविचार.
५	अ०	+	मनादिकोंमैं ब्रह्मदृष्टि.
६	अ०	+	आदित्य-उपासनाविधान.
७	अ०	गु०	स्थित होकर उपासना करे.
८	+	गु०	स्थि०
९	+	गु०	स्थि०
१०	+	+	स्थि०
११	अ०	+	दिशादिनियमनिषेध.
१२	अ०	+	मरणपर्यंत उपासनाविधान.
१३	अ०	+	ज्ञानसैं कर्मनाश.
१४	अ०	+	कर्मनाश.
१५	अ०	+	संचितनाश.
१६	अ०	गु०	नित्यनिमित्तनाश.
१७	+	+	कर्मफलविचार.
१८	अ०	+	साधननियमनिषेध.
१९	अ०	गु०	विदेहमुक्ति.
	१४	५	इति.

तहां यह प्रथम सूत्र है-

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ १ ॥

आवृत्तिः । असकृत् । उपदेशात् । इति प० ।

अर्थ-श्रवणादि एक वारकरके उपराम होवे वा पुनः पुनः करे? जा संदेहकी निवृत्ति भगवान् सूत्रकार करे हैं-" आत्मा द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः " जा श्रुतिमैं 'असकृत्' नाम पुनः पुनः उपदेश किया है यातें श्रवणादिकोंकी आवृत्ति कर्तव्य है अर्थात् पुनः पुनः किये चाहिये. यद्यपि श्रुतिमैं पुनः पुनः कर्तव्य सुना नहीं तथापि रज्जुसर्पभ्रमादिकोंमैं साक्षात्कारकोही अविद्याका नाशक देखा है और सूक्ष्मवस्तु साक्षात्कारको पुनः पुनः श्रवणादिकोंसैं साध्य षड्जादिस्वरोंमैं देखा है, तथा दुर्विज्ञेय आत्माके अर्थ किये जे श्रवणादिक तिनमैंभी संसार अनर्थकी मूल अविद्याके नाशार्थ साक्षात्कारके लिये आवृत्ति कर्तव्य है. यथा दृष्ट कल्पना होवे तथाहि अदृष्टकल्पना उचित है. इति ॥ १ ॥

लिङ्गाच्च ॥ २ ॥

लिङ्गात् । च । इति प० ।

अर्थ-छान्दोग्यके तृतीय प्रपाठकमैं "तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच । रश्मींस्त्वं पर्यावर्त्तयात् बहवो वैते भविष्यन्ति इति अधिदैवतम्" अर्थ-हे पुत्र ! मैंने सूर्य और रश्मियोंका अभेद कर चिंतन किया था यातें हमारेतैं एक पुत्र है यह कौषीतकिने पुत्रको कहकर कहा कि-हे पुत्र ! तैं सूर्य और रश्मियोंकी भिन्न भिन्न उपासना कर; यातें तुम्हारे बहुत प्रजा होवेगी. इति । उक्तवाक्यमैं बहुरश्मिउपासनाका विधान किया है यातें 'लिङ्गात्' नाम उक्त बहुत्वलिंगसैंभी ज्ञानसाधनासें आवृत्ति कर्तव्य है. इति ॥ २ ॥

अव०-जिस कालमैं निदिध्यासन करे तदा स्वस्वरूपसैं ईश्वर ध्यान करे वा भिन्नरूपसैं ध्यान करे? जा संदेहसैं कहे हैं-

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥ ३ ॥

आत्मा । इति । तु । उपगच्छन्ति । ग्राहयन्ति च । इति प० ।

अर्थ-'आत्मा इति' नाम आत्माको ईश्वररूपसैं चिंतन करे. "त्वं वाहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि भगवो देवते" जा

जाबालश्रुतिसैं आत्माको ईश्वररूपसैं 'उपगच्छति' नाम ग्रहण करे हैं, और "तत्त्वमसि। एष ते आत्मा" इत्यादिक वाक्य ईश्वरको 'ग्राहयन्ति' नाम आत्मारूप करके ग्रहण करावे हैं; यातें अभेदकरके चिंतन किया चाहिये. इति ॥ ३ ॥

अव०- "मनो ब्रह्म इति उपासीत नाम इति उपासीत" इत्यादिक वाक्यनमैं प्रतीकरूप जे मनादिक तिनमैं स्वआत्मबुद्धि कर्तव्य है वा नहीं? जा संशयसैं कहे हैं कि-

न प्रतीकेन हि सः ॥ ४ ॥

न । प्रतीकेन । हि । सः । इति प० ।

अर्थ-ब्रह्मकी प्रतीकरूप मनादिकोंमैं स्वआत्मबुद्धि कर्तव्य नहीं 'सः' नाम उपासक प्रतीकको स्वात्मारूपसैं अनुभव नहीं करे है और प्रतीकमैं स्व-आत्मबुद्धि करनी सुनीभी नहीं और प्रतीकस्वरूपसैं ब्रह्म भिन्नभी नहीं; यातें प्रतीकमैं स्वआत्मबुद्धि करणी असंगत है. इति ॥ ४ ॥

अव०-प्रतीकरूप जे नामादिक तिनमैं ब्रह्मदृष्टि करे वा ब्रह्ममैं नामादिक दृष्टि करे? जा संदेहकी निवृत्ति करे हैं:—

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ ५ ॥

ब्रह्मदृष्टिः । उत्कर्षात् । इति प० ।

अर्थ-निकृष्टमैं उत्कृष्टदृष्टि करनेसैं निकृष्टमैं उत्कृष्टता होवे है. यथा अमात्यमैं राजबुद्धि फलदाता है, राजामैं अमात्यबुद्धि फलदाता नहीं. 'उत्कर्षात्' नाम ब्रह्म उत्कृष्ट है यातें नामादिक निकृष्टनमैं 'ब्रह्मदृष्टि' नाम ब्रह्मबुद्धि कर्तव्य है. इति ॥ ५ ॥

अव०-"य एव असौ तपति तम् उद्गीथम् उपासीत" इत्यादिक अंगाश्रित उपासना कही है तहां है तहां आदित्यआदिकोंमैं उद्गीथबुद्धि करे वा उद्गीथआदिकोंमें आदित्यबुद्धि करे? जा संशयका निषेध करे हैं—

आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ॥ ६ ॥

आदित्यादिमतयः । च । अङ्गे । उपपत्तेः । इति प० ।

अर्थ-'अङ्गे' नाम उद्गीथादिक जे कर्मनके अंग तिनमैं आदित्यादि नाम सूर्यादिमति नाम बुद्धि करनी चाहिये सोई 'उपपत्तेः' नाम संभवे है. यथा

प्रोक्षणादिकोंसैं व्रीहि आदिकोंमैं अपूर्वता उपजे है तथा कर्म अंगरूप उद्गीथादिकोंमैं सूर्यादि दृष्टि कियेसैं फल अधिक होवे है; यातें उद्गीथमैं सूर्यबुद्धि कर्तव्य है. इति ॥ ६ ॥

अव०—उपासना आसनपर स्थित होकर करे? अथवा चलते खड़े जिस किसी प्रकारसैं करे? जा संदेहसैं कहे हैं:—

आसीनः सम्भवात् ॥ ७ ॥

आसीनः । सम्भवात् । इति प० ।

अर्थ—सजातिप्रत्ययप्रवाहरूप जो उपासना सो स्थित उपासकमैं 'संभवात्' नाम बने है; यातें 'आसीनः' नाम स्थित हुया उपासना करै; खड़ा होकर करेगा तो विक्षेप होवेगा; सोकर करेगा तो निद्रा होवेगी. इति ॥ ७ ॥

ध्यानाच्च ॥ ८ ॥

ध्यानात् । च । इति प० ।

अर्थ—उसासना ध्यानरूप है, सो ध्यान एक विषयमैं दृष्टिवान् बकादिक आसीनोंमैं देखा है; यातें एकाग्रमनसैं बैठके उपासना करे. इति ॥ ८ ॥

अचलत्वं चापेक्ष्य ॥ ९ ॥

अचलत्वम् । च । अपेक्ष्य । इति प० ।

अर्थ—"ध्यायति इव च पृथिवी" जा श्रुतिमैं 'अचलत्वम्' नाम पृथिवी अचलताकी 'अपेक्ष्य' नाम अपेक्षासैं पृथिवीमैं गौणसैं ध्यान देखा है; यातें उक्तलिंगसैंभी उपासना स्थितमैंही संभवे है. इति ॥ ९ ॥

स्मरन्ति च ॥ १० ॥

स्मरन्ति । च । इति प० ।

अर्थ—"शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः" इत्यादिक स्मृतिसे बाह्यआसन विधान किया है; यातेंभी आसीन हुआ उपासना करे. इति ॥ १०

अव०—उपासनामैं पूर्वदिशादिकोंके नियमका अंगीकार है? वा नहीं? जा संदेहका निरास करे हैं—

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात ॥ ११ ॥

यत्र । एकाग्रता । तत्र । अविशेषात् । इति प० ।

अर्थ–'यत्र' नाम जा दिशामैं, जा कालमैं व जा देशमैं चित्तकी एकाग्रता होवे 'तत्र' नाम तिस दिशा, काल व देशमैं उपासना करे. 'अविशेषात्' नाम इस दिशा मुखकर इस देशमैं इस कालमैं उपासना करे, यह नियम सुना नहीं; यातैं प्राची आदिक दिशाका, प्रदोषादि कालका, व नदीतीरादि देशका नियम नहीं. तथाहि श्वेताश्वतरके द्वितीयाध्यायगत श्रुति कहे हैं– "**समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाशयादिभिः । मनोऽनुकूले न तु चक्षुःपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्**" इति । यह श्रुतिभी चित्तएकाग्रता जा देशमैं होवे तिस देशमैं उपासनाका विधान करे है. श्रुति–अर्थ–जहां 'शर्करा' नाम सूक्ष्म पाषाण नहीं होवे, वालुका नहीं होवे, अग्नि नहीं होवे, शब्द नहीं होवे, जलाशय नहीं होवे, वा शब्द जलाशय अनुकूल होवे, जहां नेत्र पीडित नहीं होवें, मनके अनुकूल होवे, सम होवे, और पवित्र होवे. ऐसा जो वायुरहित गुफारूप देश तहां चित्तको एकाग्र करे. इति । उक्त श्रुतिसैंभी दिशादिक नियम असंगत है. इति ॥ ११ ॥

अव०–अहंग्रह उपासनाको कुछ काल करके उपराम होना चाहिये? वा जहांपर्यंत जीवे तहांपर्यंत करे? जा संदेहकी निवृत्ति करे हैं:—

आ प्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम् ॥ १२ ॥

आ प्रायणात् । तत्र । अपि । हि । दृष्टम् । इति प०।

अर्थ–'आ प्रायणात्' नाम देहपातपर्यंत उपासना करे 'तत्रापि' नाम मरणकालमैं भी "**स यावत्क्रतुः अस्मात् लोकात् प्रैति**" जा श्रुतिमैं ध्येयाकार वृत्तिके प्रवाहका 'दृष्टम्' नाम अंगीकार किया है; यातैं अहंग्रह उपासना जहांपर्यंत जीवे तहांपर्यंत करे; जहांपर्यंत इस लोकसैं उपासक गमन नहीं करे तहांपर्यंत 'क्रतु' नाम उपासना करे. यह श्रुतिका अक्षरार्थ है. इति ॥ १२ ॥

अव०–ब्रह्मविद्या उपजेसैं ब्रह्मवेत्ताके भावी पापके असंबन्धसे पूर्वपापका विनाश होवे है? वा नहीं? जा संशयसैं कहे हैं—

तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥ १३ ॥

तदधिगमे । उत्तरपूर्वाघयोः । अश्लेषविनाशौ । तत्–व्यपदेशात् । इति प० ।

अर्थ–'तदधिगमे' नाम ब्रह्मसाक्षात्कार हुएसैं ज्ञानसे उत्तरपापसैं 'अश्लेष' नाम असंबंधसे और ज्ञानसे पूर्वपापका विनाश होवे है. 'तत्-व्यपदेशात्' नाम उक्त अर्थही 'छान्दोग्यके' चौथे प्रपाठकगत श्रुतिमैं कहा है. तथाहि– "यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते" यह श्रुति उत्तरपापका असम्बन्ध दिखावे है. श्रुति–अर्थ–यथा 'पुष्करपलाशे' नाम कमलपत्रमैं 'आपः' नाम जल 'न श्लिष्यन्ते' नाम सम्बन्ध नहीं पावैं; 'एवम्' नाम तथा "एवंविदि" नाम आत्मवेत्तामैं पापकर्म संबंध नहीं पावे है. इति । छांदोग्यके पंचम प्रपाठकगत "यथा इषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयते एवं ह अस्य सर्वे पाप्मनः प्रदूयन्ते" यह श्रुति पूर्वपापका विनाश कहे है. अर्थ–यथा 'इषीकातूलम्' नाम रुई विशेष अग्निमैं पड़नेसैं दाह होवे है; तथा इस आत्मवेत्ताके सर्व पाप दाह होवे हैं. इति "भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे" यह मुंडकगत श्रुति निर्गुण ब्रह्मवेत्ताके पापका नाश दिखावे है; यातें ब्रह्मविद्यावान्सैं पूर्वउत्तरपापका सम्बन्ध होवे नहीं. इति ॥ १३ ॥

अव०–पूर्व ब्रह्मवेत्ताके पापका असंवन्ध और नाश कहा है तथा पुण्यकाभी असम्बन्ध और नाश होवे है ? वा नहीं ? जा संशयकी निवृत्ति करे हैं–

इतरस्याप्येवमश्लेषः पाते तु ॥ १४ ॥

इतरस्य । अपि । एवम् । अश्लेषः । पाते । तु । इति प० ।

अर्थ–'इतरस्य अपि' नाम पापसैं भिन्न जो पुण्य तिसकाभी 'एवम्' नाम पापवत् असम्बन्ध और विनाश होवे है. "अतः पापम् अकरवम् इति अतः कल्याणम् अकरवम् इति उभे उ हैवैष एते तरति नैनं कृताकृते तपतः" जा बृहदारण्यकके षष्ठअध्यायगत श्रुतिमैं पापके 'असम्बन्धवत्' धर्मका भी असम्बन्ध कहा है; ब्रह्मवेत्ताके बंधहेतुरूप पुण्यपापका नाश हुएसैं

'पाते' नाम देहपातके अनंतर मुक्ति अवश्य होवे है. 'तु' पद निश्चयार्थक है. इति ॥ १४ ॥

अव०–पूर्व ज्ञानसैं कर्मनका नाश कहा है सो ज्ञानजन्य नाश सर्व कर्मोंका होवे है? वा प्रारब्धसैं भिन्न कर्मोंका होवे है? जा संदेहसैं कहे हैं–

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ॥ १५ ॥

अनारब्धकार्ये । एव । तु । पूर्वे । तदवधेः । इति प० ।

अर्थ–जे धर्माधर्म इस देहमैं सुखदुःखके अनुभव–अर्थ प्रवृत्त हुए हैं तिनको आरब्धकार्य कहे हैं, तिनसैं भिन्न कर्मोंको अनारब्ध कार्य कहे हैं; ते अनारब्धकार्यरूप 'पूर्वे' नाम ज्ञान–उत्पत्तिपर्यंत संचितरूप पूर्वके विनाश होवे हैं. "तस्य तावत् एव चिरं यावत् न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये" जा छांदोग्यश्रुतिमैं 'तत्–अवधेः' नाम देहपातकी अवधि सुनी है यातें संचितका नाश अंगीकृत है. और "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" जा श्रुतिमैं जो कर्मपद है सोभी संचित कर्मोंका बोधक है; यातें विरोध नहीं. इति ॥ १५ ॥

अव०–पूर्व प्रारब्धसैं इतर कर्मोंका ज्ञानसैं नाश कहा है, तैसे नित्यनिमित्त रूप सर्व कर्मनका नाश होवे है? वा नहीं? जा संशयकी निवृत्ति करे हैं–

अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ॥ १६ ॥

अग्निहोत्रादि । तु । तत्कार्याय । एव । तद्दर्शनात । इति प० ।

अर्थ–अग्निहोत्रादिरूप जे नित्यनैमित्तिक कर्म 'तत्' नाम ते कर्म 'कार्याय' नाम ज्ञानका कार्य जो मुक्ति तत्–अर्थ हैं; अग्निहोत्रादिकोंमैं 'तत्' नाम ज्ञानकारणत्व 'यज्ञेन' इत्यादिक श्रुतिमैं 'दर्शनात्' नाम देखा है, यातें ज्ञानरूप फलसैं नित्यनैमित्तिक सर्व कर्मनका नाश संभवे है. इति ॥ १६ ॥

अव०–ननु–नित्यादिक कर्मोंको ज्ञानके साधन माननेसैं "तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्" जा वाक्यसैं विरोध होवेगा, जा शंकाका उत्तर कहे हैं:–

अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः ॥ १७ ॥

अतः । अन्या । अपि । हि । एकेषाम् । उभयोः । इति प० ।

अर्थ–'अतः' नाम अग्निहोत्रादिक नित्यादि कर्मनसैं 'अन्या अपि' नाम काम्यरूप कर्म भिन्न हैं तिनका बोधक उक्त श्रुतिवाक्य है यह 'एके'

नाम कोई आचार्य माने हैं. काम्यकर्म ज्ञानके साधन नहीं; यह अर्थ 'उभयोः' नाम जैमिनि और बादरायणाचार्यको अंगीकार है. श्रुतिका यह तात्पर्य है कि–ब्रह्मवेत्ताकी जो सेवा करे है तिस सुहृदमैं ब्रह्मवेत्ताका धर्म स्वसमान धर्मको उपजावे है; तिसका ज्ञानसैं नाश होवे है, यह अर्थ अंगीकृत है; यातें विरोध नहीं. इति ॥ १७ ॥

अव०–पूर्व जे ज्ञानके साधन नित्यादिक कहे हैं ते उपासनासहित किये चाहिये ? वा तत्–रहित किये चाहिये ? जा संशयका परिहार करे हैं–

यदेव विद्ययेति हि ॥ १८ ॥

यत् । एव । विद्यया । । इति । हि । इति प० ।

अर्थ–" यदेव विद्यया करोति तदेव वीर्यवत्तरं भवति" इस श्रुतिका 'यदेव विद्यया' जा सूत्रपदसैं ग्रहण है. श्रुतिमैं विद्यासहित कर्मनको अतिवलवान् कहा है; यातें केवल कर्मको फलहेतुत्वरूप वीर्यबल सिद्ध होवे है; यातें विद्या विना केवल कर्मभी ज्ञानका हेतु है, विद्यासहितका नियम अंगीकार नहीं. इति ॥ १८ ॥

अव०–ब्रह्मवेत्ता देहपातके अनंतरभी संसारको प्राप्त होवे है ? वा नहीं ? जा संदेहका परिहार करे हैं—

भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते ॥ १९ ॥

भोगेन । तु । इतरे । क्षपयित्वा । सम्पद्यते । इति प० ।

अर्थ–संचित कर्मनका नाश पूर्व कहा है तिनसैं 'इतरे' नाम भिन्न जे प्रारब्धरूप धर्माधर्म तिनको 'भोगेन' नाम भोगकर 'क्षपयित्वा' नाम नाश करके ब्रह्मवेत्ता 'सम्पद्यते' नाम ब्रह्मरूप होवे है अर्थात् विदेहमुक्त होवे है. "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" इत्यादिक श्रुतिसै उक्त अर्थही निश्चित है. पूर्व प्रारब्धकर्म विद्यमान था यातें कुलालचक्रवत् मिथ्याज्ञानरूप निमित्तके नाश हुएभी अविद्यालेशानुवृत्ति युक्त है. प्रारब्धभोगसैं अनंतर जन्ममरणरूप संसारका कारण कर्म कोई रहा नहीं; यातें भोगसैं प्रारब्धकर्मनाशके अनंतर ब्रह्मवेत्ता स्वरूपानंदरूप अवस्थानलक्षण मोक्षको प्राप्त होवे है. इति सिद्धम् ॥ १९ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपादप्रारंभः।

इस पादमैं निर्गुण ब्रह्मवेत्ता विना सर्व जीवोंकी उत्क्रांतिका विचार करे हैं. इस पादके एकविंशति सूत्र हैं, तिनमें एकादश अधिकरण हैं, और दश गुण हैं.

तथाहि—

सङ्ख्या।	अधिकरण।	गुण।	प्रसङ्ग।
१	अ०	+	मनमैं वाग्—लयविधान.
२	+	गु०	नेत्रादिलय.
३	अ०	+	मनका प्राणमैं लय.
४	अ०	+	प्राणका जीवमें लय.
५	+	गु०	प्रा०
६	+	गु०	प्रा०
७	अ०	+	उत्क्रांतिविचार.
८	अ०	+	अत्यंतलयनिषेध.
९	+	गु०	सूक्ष्मविचार.
१०	+	गु०	सू०
११	+	गु०	सू०
१२	अ०	+	पूर्वपक्ष
१३	+	गु०	आत्मवेत्तागमननि०
१४	+	गु०	आ०
१५	अ०	+	ब्रह्ममें कलालय.
१६	अ०	+	अत्यंतल०
१७	अ०	+	उपासकगमन.
१८	अ०	+	रश्मि—अनुसार गमन.
१९	+	गु०	र०
२०	अ०	+	दक्षिणायनमें फलप्राप्ति.
२१	+	गु०	श्रौतस्मार्तमार्गवि.
	११	१०	इति.

तहां यह प्रथम सूत्र है—

वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॥ १ ॥

वाक् । मनसि । दर्शनात् । शब्दात् । च । इति प० ।

अर्थ—"अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते, मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्" यह श्रुति विषयवाक्य है. अर्थ—हे सोम्य ! इस म्रियमाण पुरुषकी वाक् इंद्रिय मनमैं लय होवे है, मन प्राणमैं, प्राण तेजमैं, तेज परदेवतामैं लय होवे है. इति । तहां वृत्तिवान् वाक्इंद्रियका मनमैं लय होवे है ? वा वाक्की वृत्तिका लय होवे है ? जा संदेहसैं कहे हैं:— 'उक्तिर्वाक्' जाविध व्युत्पत्तिसैं 'वाक्' शब्दसैं वाक्की वृत्तिका ग्रहण है, मनकी वृत्ति विद्यमान होतेही 'मनसि' नाम मनमैं 'वाक्' नाम वाक्वृत्तिका लय होवे है. लोकमैं मनके होतेही वाक्वृत्तिका लय 'दर्शनात्' नाम देखा है. और वृत्ति वृत्तिवान्का अभेद होवे है; यांतैं 'शब्दात्' नाम 'वाङ्मनसि' जा श्रुतिसैंभी वृत्तिका लय अंगीकृत है. यद्यपि स्व-उपादानमैं कार्यका लय होवे है, वाक्का मन उपादान नहीं; यातैं वाक्-वृत्तिका मनमैं लय संभवे नहीं; तथापि यथा अग्निवृत्तिका अनुपादानरूप जलमैं लय होवे है तथा प्रसंगमैंभी संभवे है. इति ॥ १ ॥

अत एव च सर्वाण्यनु ॥ २ ॥

अतः । एव । च । सर्वाणि । अनु । इति प० ।

अर्थ—उपादानत्व अभाववान् मनमैं वाणीकी वृत्तिका लय होवे है 'अतः' नाम लोकमैं देखनेसैं और श्रुतिसैं सर्व नेत्रादिक इंद्रियांभी स्व-अनुपादानरूप मनमैं स्ववृत्तिमात्रसैं 'अनु' नाम वाक्-लयसैं पीछे लीन होवे हैं, स्वरूपसैं नहीं. "तस्मात् उपशान्ततेजाः पुनर्भवम् इन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः" जा श्रुति सर्व इन्द्रियोंकी वृत्तिका लय मनमैं दिखावे है. 'तस्मात्' नाम उत्क्रमणसैं पीछे उपशांतदेह उष्णतावान् पुनः जन्मको मनमैं स्थित इंद्रियोंसैं प्राप्त होवे है; यह श्रुति-अर्थ है. इति ॥ २ ॥

अव०—पूर्व श्रुतिमैं मनका जो प्राणोंमैं लय कहा है सो मनका स्वरूपसैं लय होवे है ? वा मनकी वृत्तिका लय होवे है ? जा संदेहकी निवृत्तिके अर्थ कहे हैं:—

तन्मनः प्राण उत्तरात् ॥ ३ ॥

तत् । मनः । प्राणे । उत्तरात् । इति प० ।

अर्थ–' तत् ' नाम सर्व इंद्रियवृत्तिके लयका अधिकरण जो मन सो 'प्राणे' नाम प्राणविषे स्ववृत्तिलयसैं लय होवे है. स्वरूपसैं नहीं; यह अर्थ 'उत्तरात्' नाम 'मनः प्राणे' जा उत्तरवाक्यसैं निश्चित है. सुषुप्तिमूर्च्छामैं वृत्तिवान् प्राणविषे मनकी वृत्तिका लय देखा है; यातें वृत्तिलयहीका अंगीकार है. यद्यपि "अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्" जा श्रुतिमैं प्राण व मनको जल भूमिका कार्य सुना है. जल भूमिका उपादान है यातें मनका स्वरूपसैं प्राणमैं लय कहना संभवे है; तथापि जल भूमिके उपादान उपादेयमात्रसैं तिनके कार्यका उपादान उपादेयभाव संभवे नहीं. यथा हिमघटका उपादान उपादेयभाव नहीं. इति ॥ ३ ॥

अव०–" प्राणस्तेजसि " जा वाक्यमैंभी तेजमैं प्राणकी वृत्तिका लय होवे है? वा जीवमैं प्राणवृत्तिका लय होवे है? यह संशय है. पूर्वपक्षमैं श्रुतिबलसैं तेजमैं लय मानेसैं यह उत्तरसूत्र है—

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ॥ ४ ॥

सः । अध्यक्षे । तदुपगमादिभ्यः । इति प० ।

अर्थ–' सः ' नाम मनलय अधिकरणरूप प्राण 'अध्यक्षे' नाम कार्यकारणसंघातका स्वामी जो जीव तामैं वृत्तिरहित हुआ लय होवे है. यथा राजाकी यात्रामैं इच्छा हुएसैं भृत्य ताके सन्मुख आवे हैं तथा इस आत्माको अंतकालमैं प्राणसहित सर्व इंद्रियां सन्मुख प्राप्त होवे हैं. यह अर्थ उपगमहेतुसैं अंगीकृत है. तथाहि श्रुति—" आत्मानमन्तकाले सर्वे प्राणे अभिसमायन्ति " इति । आदिपदसैं " तम् उत्क्रामन्तं प्राणोनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति " जा बृहदारण्यकके षष्ठाध्यायगत श्रुतिका ग्रहण है. यह श्रुति जीवका गमन हुए पीछे प्राणोंका गमन कहे है; यातें जीवमैं प्राणवृत्तिका लय होवे है. इति ॥ ४ ॥

भूतेष्वतच्छ्रुतेः ॥ ५ ॥

भूतेषु । अतच्छ्रुतेः । इति प० ।

अर्थ–यद्यपि "प्राणस्तेजसि" जा श्रुति प्राणका तेजमैं लय कहे है, जीवमैं

नहीं; तथापि 'भूतेषु' नाम सूक्ष्मरूपसैं विद्यमान तेजसहित उत्तरदेहारंभक जे पंचभूतरूप उपाधि तत् उपहितत्वरूपसैं विद्यमान जो जीव तामैं प्राणवृत्तिका लय होवे है. यह 'अतः श्रुतेः' नाम 'प्राणस्तेजसि' जा श्रुतिका तात्पर्य है, यातें प्राणका तेजमैं लय होवे है, जा श्रुतिका विरोध नहीं. इति ॥ ५ ॥

अव०-ननु 'प्राणस्तेजसि' जा श्रुतिमैं एक तेज सुना है; यातें तेजसहित भूतनमैं लयकथन संभवे नहीं, जा शंकाका उत्तर कहे हैं—

नैकस्मिन् दर्शयतो हि ॥ ६ ॥

न । एकस्मिन् । दर्शयतः । हि । इति प० ।

अर्थ-'एकस्मिन्' नाम एक तेजमैं उत्क्रान्तिसमय जीव स्थित होवे नहीं. उत्तरदेह पंचभूतनका कार्य है, यातें पंचभूतनमैं स्थिति अवश्य माननी चाहिये. 'दर्शयतः' नाम श्रुति स्मृति उभय उक्त अर्थको दिखावै हैं. तथाहि-"स वाऽयमात्मा ब्रह्म । विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयः अतेजोमयः । काममयः अकाममयः । क्रोधमयः अक्रोधमयः । धर्ममयः अधर्ममयः । सर्वमयः । तत् यत् एतदिदंमयः अदोमयः" इति. श्रुतिका अर्थ-जे आत्माके उपाधिरूप बंधन हैं, जिन्होंकरके युक्त हुआ तद्रूपही होवे है; तिनको इकाट्ठ कर इस श्रुतिमैं कहा है. सो यह संसारी आत्मा ब्रह्मरूपही है, विज्ञान नाम बुद्धि तत् तादात्म्यसैं विज्ञानमय कहिये है. 'अदः' यह परोक्षवाची है. ग्रहणयोग्य कार्यसैं आनन्दमय अंगीकृत है, तत्तत् उपाधिसैं तत्तद्रूपताका अंगीकार है, इति. और "अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां तु याः स्मृताः । ताभिः सार्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः" ॥ जा स्मृतिभी उक्त अर्थकी साधक है. इति ॥ ६ ॥

समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ॥ ७ ॥

समाना । च । आसृत्युपक्रमात् । अमृतत्वम् । च । अनुपोष्य । इति प० ।

अर्थ-पूर्व जो उत्क्रान्ति कही है सो केवल अज्ञानीकोही होवे है ? वा दहरादि सगुण उपासककोभी होवे है ? जा संदेहको भंग करे हैं-'आसृति' नाम गमनानुकूल जो देवयानमार्ग तिससैं 'उपक्रमात्' नाम पूर्व जो उत्क्रान्ति सो

१ पञ्चभूतानाम्.

सगुण ब्रह्मवेत्ताकी और अब्रह्मवेत्ताकी 'समाना, नाम तुल्य होवे है। "अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाक् मनसि सम्पद्यते" इस श्रुतिमें पुरुषमात्र सुना है यातें सर्वकी उत्क्रान्ति समान होवे है; यद्यपि सगुणविद्यामें 'अमृतत्वम्' नाम मोक्ष सुना है यातें समानता संभवे नहीं, तथापि 'अनुपोष्य' नाम रागादिक क्लेशनको नहीं दाह करके जो यह ब्रह्मलोकप्राप्तिरूप अमृत है सो सापेक्ष है, मुख्य मोक्षरूप नहीं यातें दोष नहीं. किन्तु उपासककी और अनुपासककी उत्क्रान्ति समान होवे है. इति ॥ ७ ॥

तदापीतेः संसारव्यपदेशात् ॥ ८ ॥

तत्। आपीतेः। संसारव्यपदेशात्। इति प०।

अर्थः—"तेजः परस्यां देवतायाम्" इस श्रुतिमें तेजपदसें जीवसहित, इंद्रियोंसहित, मन प्राणसहित, अपरभूतनसहित सूक्ष्मशरीरका ग्रहण है. सो परमात्मामें लय होवे है. सो लय अत्यंत होवे है? वा अनत्यंत होवे है? जा संदेहसें कहे हैं 'तत्' नाम प्राणादिसहित तेज अर्थात् सूक्ष्मशरीर 'आपीतेः' नाम मोक्षपर्यंत स्थित रहे है । "योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्" जा कठश्रुतिमें संसार नाम जन्मको "व्यपदेशात्" नाम कथन किया है. मरणमात्रसें मुक्ति होवे नहीं यातें सुषुप्तिवत् अनात्यंतिक लयका अंगीकार है, आत्यंतिकका नहीं. इति ॥ ८ ॥

अव०—सो शरीर अतिसूक्ष्म है यातें गमनकालमें प्रतीत होवे नहीं, यह कहे हैं:—

सूक्ष्मं परिमाणतश्च तथोपलब्धेः ॥ ९ ॥

सूक्ष्मम्। परिमाणतः। च। तथा। उपलब्धेः। इति प०।

अर्थ—पूर्व जो तेज कहा है सो परिमाणसें और स्वरूपसें नेत्रवत् सूक्ष्म है, तिसकी श्रुतिसें तथा सूक्ष्मत्वरूपसें 'उपलब्धेः' नाम प्रतीति होवेहै, यातें अनुद्भूतरूपवान् सूक्ष्म होनेसें नेत्रसमान प्रत्यक्ष होवे नहीं. इति ॥ ९ ॥

नोपमर्देनातः ॥ १० ॥

न। उपमर्देन। अतः। इति प०।

अर्थ—'अतः' नाम स्वच्छ सूक्ष्म होनेसें स्थूल देहके दाहच्छेदादि निमित्तसें जो उपमर्द तासें सूक्ष्मशरीरका उपमर्द होवे नहीं. इति ॥ १० ॥

अव०–सूक्ष्मदेहसद्भावमें अनुमान कहे हैंः—

अस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा ॥ ११ ॥

अस्य । एव । च । उपपत्तेः । एषः । ऊष्मा । इति प० ।

अर्थ–स्थूलदेहमें एष नाम यह जो प्रसिद्ध ऊष्मा नाम उष्णता सो 'अस्य' नाम इस सूक्ष्मदेहका धर्म है. सूक्ष्म देह होवे तो उष्णता होवे है, नहीं होवे तो नहीं होवे है, जा अन्वयव्यतिरेकसैं तिसकाही धर्म 'उपपत्तेः' नाम बने है; यातें सूक्ष्मशरीर स्थूलसैं भिन्न है. इति ॥ ११ ॥

प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात् ॥ १२ ॥

प्रतिषेधात् । इति । चेत् । न । शारीरात् । इति प० ।

अर्थ–निर्गुणब्रह्मवेत्ताकी उत्क्रान्ति होवे है वा नहीं ? जा संदेहसैं यह पूर्वपक्ष सिद्धांती करे है । "अथ अकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" जा बृहदारण्यकके षष्ठाध्यायगत श्रुति परब्रह्मवेत्ताके शरीरसैं प्राण–उत्क्रमणका 'प्रतिषेधात्' नाम निषेध करे है, यातें ब्रह्मवेत्ताका गमन नहीं होवे है. श्रुति–अर्थ–बाह्य विषयकामनाका अभाव होवे जिसके सो अकाम कहिये. मानसीविषयकामनाशून्यत्वका निष्कामपदसैं ग्रहण है. प्राप्तस्वरूपानंदसैं तृप्तत्वका आप्तकामपदसैं ग्रहण है. तहां आत्मकाम यह हेतु है. तिसके प्राण गमन नहीं करे हैं, ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मको प्राप्त होवे है. इति । 'इति चेत्' नाम उक्त शंका करें तो संभवे नहीं. तथाहि–'शारीरात्' नाम जीवसैं उक्त श्रुति प्राणगमनका निषेध करे है, देहसैं निषेध नहीं करे है. "न तस्मात् प्राणा उत्क्रामन्ति" जा माध्यंदिनिशाखागत श्रुति जीवसैं प्राणकी उत्क्रान्तिका निषेध करे है, यातें प्राणादिसहित परब्रह्मवेत्ता जीवकी उत्क्रान्ति होवे है. इति ॥ १२ ॥

सिद्धांतसूत्र–

स्पष्टो ह्येकेषाम् ॥ १३ ॥

स्पष्टः । हि । एकेषाम् । इति प० ।

अर्थ–'एकेषाम्' नाम काण्वशाखामैं परब्रह्मवेत्ताकी देहसैं प्राणगमनका निषेध स्पष्टही भान होवे है. तथाहि–"यत्रायं पुरुषो म्रियते तत् अस्मात्

प्राणा उत्क्रामन्ति आहोस्वित् न" जा आर्तभागके प्रश्न कियेसें याज्ञवल्क्यने यह उत्तर कहा है । " न तस्मात् प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते" इति ॥ १३ ॥

स्मर्यते च ॥ १४ ॥

स्मर्यते । च । इति प० ।

अर्थ–महाभारतमैंभी मार्ग और उत्क्रान्तिका निषेध स्मरण किया है. तथाहि–"सर्वभूतात्मभूतस्य सम्यग् भूतानि पश्यतः । देवापि मार्गे मुह्यन्त्यपदस्य पदैषिणः" इति । अर्थ–स्वभिन्न प्राप्यशून्य ब्रह्मवेत्ताके प्राप्य देखनेकी इच्छावान् देवताभी ताके मार्गको जाने नहीं. इति । यातें ब्रह्मवेत्ताके प्राण स्वस्वरूप ब्रह्ममैं लय होवे हैं, गमन नहीं करे हैं. इति ॥ १४ ॥

अव०–ननु प्राणोंका पृथिवीआदिकोंमैं लय सुना है यातें ब्रह्ममैं लयकथन असंगत है, जा शंकाका उत्तर कहे हैं:—

तानि परे तथाह्याह ॥ १५ ॥

तानि । परे । तथाहि । आह । इति प० ।

अर्थ–"न तस्य प्राणाः" जा श्रुतिमैं प्राणपदसैं लिंगशरीरका अंगीकार है. सो भूमिआदिकोंमैं लय होवे है? वा परब्रह्ममैं लय होवे है ? यह तहां संदेह है । "गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति" जा मुंडकश्रुति भूमिआदिकोंमैं लय कहे है यातें ब्रह्ममैं लय नहीं होवे है यह पूर्वपक्ष है. श्रुतिअर्थ–दश इंद्रियां, एक मन, पंच प्राण यह षोडशकला अंगीकार हैं. तहा मन प्राणको भूमिका कार्य मानके पंचदशका ग्रहण है. प्रतिष्ठापदसैं तिनके उपादानरूप भूतनका ग्रहण है. ते कला 'गताः' नाम स्वउपादानमैं लय होवे हैं. और नेत्रादिकरणगत जे देवता ते आदित्यादिकोंमैं लय होवे हैं. कर्म और विज्ञानमय आत्मा यह सर्व पर अव्यय अज अमृत अभय अनंत शिवरूप ब्रह्ममैं एकत्वको प्राप्त होवे हैं. इति । तहां यह सिद्धांत है. 'तानि' नाम उक्त इंद्रियां सूक्ष्मदेहरूप 'परे' नाम परब्रह्ममैं लीन होवे हैं. 'तथाहि' नाम परब्रह्ममैं लयको उत्तरश्रुति 'आह' नाम कहे है । "एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं

प्राप्यास्तं गच्छन्ति । भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्याऽस्तं गच्छन्ति । भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति " जा प्रश्नश्रुति ब्रह्ममैं लयका वोध करे है. अर्थ–यथा अनेक नदी समुद्रमैं प्राप्त होकर लयभावको प्राप्त होवे हैं. नामरूपसैं रहित होवेहैं. समुद्र तिनका नाम कहाजाय है. तथा परिपूर्ण प्रत्यग्रूप ब्रह्मवेत्ता जीवकी यह कला पुरुपको प्राप्त होकर लयभावको प्राप्त होवे है. नामरूपसैं रहित होवे है. पुरुष यह तिनकी संज्ञा होवे है. सो यह कलारहित अमृतरूप है. इति । पूर्व मुंडकश्रुतिमैं स्वउपादानमैं लय कहा है और जा प्रश्नमैं ब्रह्मविषे नाश कहा है. स्वउपादानमैं लीनहुई कला स्वउपादानसहित ब्रह्ममैं विनाश होवे हैं. यह श्रुति–उभयका तात्पर्य है. इति ॥ १५ ॥

अविभागो वचनात् ॥ १६ ॥

अविभागः । वचनात् । इति प० ।

अर्थ–सो ब्रह्मवेत्ताकी कला अनात्यंतिक लय होवे हैं वा आत्यंतिक होवे हैं ? जा संशयसैं कहे हैं. ब्रह्मवेत्ताकी कला ब्रह्ममैं ' अविभागः ' नाम आत्यंतिक लय होवे हैं. कलालयकथनसैं अनंतर 'वचनात्' नाम "स एषोऽकलोऽमृतो भवति" जा वचनमैं ब्रह्मवेत्ताको कलारहित अमृतरूप कहा है यातें इस वचनसैं कलाओंका आत्यंतिक लय होवे है, यह निश्चित है. इति ॥ १६ ॥

अव०–प्रसंगसैं परविद्याका विचार करके पुनः अपरविद्याका विचार करे हैं:–

तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॥ १७ ॥

तदोकोऽग्रज्वलनम् । तत्प्रकाशितद्वारः । विद्यासामर्थ्यात् । तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगात् । च । हार्दानुगृहीतः । शताधिकया । इति प० ।

अर्थ–पूर्व सगुण ब्रह्म–उपासककी और अनुपासककी उत्क्रांति कही है. तहां उपासककी उत्क्रांतिमैं कुछ विशेष कहे हैं. लीनवृत्तिवान् जे वागादिक

तत्समूहवान् उत्क्रमणका कर्ता जो जीव सो तत्पदसैं गृहीत है. तिसका जो ओक नाम हृदयरूप स्थान सो तदोक कहिये हैं. तदोकका जो अग्र नाम मुख सो तदोकोग्र कहिये तिस अग्रमैं प्रथम ज्वलन होवे है. अर्थात् कर्मफलनका ज्ञान होवे है. तत् नाम तिस ज्ञानकरके प्रकाशित होवें द्वार जिसके सो तत्प्रकाशितद्वार कहिये। तथाहि बृहदारण्यक षष्ठ अध्यायमैं कहा है—"तस्य ह एतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेन एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वा अन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः तम् उत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति" इत्यादि। इसमैं यह संदेह है. यथा उपासनारहितके गमनद्वारका नियम नहीं तथा उपासकके द्वारका अनियम है वा नियम है? इति। 'चक्षुष्टो वा' कहा है यातें अनियम है जा पूर्व पक्षके हुएसे यह सूत्रकारका उत्तर है—दहरादि सगुण ब्रह्मउपासक "विद्यासामर्थ्यात्" नाम उपासनाके सामर्थ्यसैं मूर्द्धद्वारा निकले है; जो द्वारका नियम नहीं करेंगे तो विद्यासैं उत्तमफलकी प्राप्ति नहीं होवेगी. ननु—द्वारके अनियमसैंभी उत्तमफलप्राप्ति हो जा शंकाका उत्तर कहे हैं। 'तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगात् च' यह मूल अक्षर हैं. तत् नाम सगुणविद्याका शेष नाम अंगरूप जो गति अर्थात् मूर्धन्य नाडीद्वारा जो मार्ग तिसका जो अनुस्मृति नाम ध्यान तिसके योगात् नाम विधान किया है यातें तिस मार्गसैं उपासकका गमन युक्त है. जो द्वारके अनियमसैं फलप्राप्ति मानेंगे तो ध्यानविधि अनर्थक होवेगी, यातें हार्द नाम हृदयमैं स्थित जो ब्रह्म तिसकरके अनुगृहीत नाम तत्भावको प्राप्त जो उपासक सो शतनाडीसैं अधिक जो मूर्धन्य नाडी तिसद्वारा गमन करे है और अनुपासक तासैं भिन्न नाडियोंद्वारा गमन करे है. इति। सो मूर्धन्यनाडी सूर्यकी रश्मिसैं मिली है. इति ॥ १७ ॥

अव०—जो उपासक दिनमैं शरीर छोड़े सोई रश्मिअनुसारी गमन करे है? वा रात्रिमैं मृत हुआ भी रश्मिअनुसारी गमन करे है? जा संदेहसैं कहे हैं।

रश्म्यनुसारी ॥ १८ ॥

रश्म्यनुसारी। इति प०।

अर्थ—उपासक दिनमैं प्राण त्यागे वा निशामैं त्यागे सो रश्मि—अनुसारीही ब्रह्मलोकमैं जावे है. इति ॥ १८ ॥

निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वा-द्दर्शयति ॥ १९ ॥

निशि । न । इति । चेत् । न । सम्बन्धस्य । यावत्–देह-भावित्वात् । दर्शयति । इति प० ।

अर्थ–दिनमैं सूर्यरश्मिसैं नाडीका सम्बन्ध होवे है, यातें दिनमृत उपासक रश्मि-अनुसारी गमन करे है. 'निशि' नाम रात्रिमैं प्राण त्यागे तो 'नेति' नाम रश्मि-अनुसार गमन करे नहीं यह शंका करें तो असंगत है. तथाहि–'सम्बन्धस्य' नाम रश्मिसैं जो नाडीसम्बन्ध सो यावत्देहभावी है अर्थात् जहांपर्यंत देह रहे तहांपर्यंत रहे है यातें दिनमैं वा निशामैं मृत उपासक रश्मि-अनुसारही गमन करे है. इति ॥ १९ ॥

अतश्चायनेऽपि दक्षिणे ॥ २० ॥

अतः । च । अयने । अपि । दक्षिणे । । इति प० ।

अर्थ–दक्षिणायन पट्मासमैं मृत हुएसैं उपासक उपासनाके फलको प्राप्त होवे है वा नहीं ? जा संदेहनिवृत्ति करे हैं–'अतः' नाम कालके अनियम-सैं 'दक्षिणे अयने' नाम दक्षिणायनपट्मासमैं मृत उपासक फलको प्राप्त होवे है. यद्यपि भीष्मने उत्तरायणमैं शरीरत्याग किया था, सो फलमैं कोई दोष माने विना संभवे नहीं; तथापि भीष्मकी जो उत्तरायणमरणमैं इच्छा थी सो, स्वइच्छासैं मरणबोधन-अर्थ थी फल-अर्थ नहीं थी. इति ॥२०॥

अव०–ननु–भगवद्गीतामैं कालविशेषका नियम किया है सो अनर्थक होवेगा, जा शंकासैं कहे हैं:—

योगिनः प्रति च स्मर्यते स्मार्ते चैते ॥ २१ ॥

योगिनः । प्रति । च । स्मर्यते । स्मार्ते । च । एते । इति प० ।

अर्थ–"योगिनः" नाम स्मृति-उक्त उपासनाके उपासकोंप्रति दिना-दिक कालविशेषका नियम 'स्मर्यते' नाम गीतामैं भगवान्ने कहा है. श्रुति-उक्त उपासनाके उपासकोंप्रति नहीं. अकर्तृत्व अनुभवरूप साङ्ख्य और ब्रह्मा-र्पण–बुद्धिसैं कृत नित्याग्निहोत्रादिक कर्मरूप योग ये "एते" नाम उभे

'स्मार्तै' नाम स्मृति-उक्त हैं श्रुति-उक्त विद्यारूप नहीं. यातें जिस किस काल-मैंभी मृत उपासक उपासनाके फलको अवश्य प्राप्त होवे है. इति ॥ २१ ॥

इति शारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयपादः समाप्तः ॥

अथ तृतीयपादप्रारम्भः।

इस पादके षोडश सूत्र हैं. तिनमें षट् अधिकरण वा दश गुण है. तथाहि:—

सङ्ख्या।	अधिकरण।	गुण।	प्रसङ्ग.।
१	अ०	+.	ब्रह्मलोकमार्गविचार.
२	अ०	+	मार्गवि०
३	अ०	+	मार्गवि०
४	अ०	+	अतिवाहिकाविचार.
५	+	गु०	अ०
६	+	गु०	अ०
७	अ०	+	कार्यब्रह्मप्राप्ति.
८	+	गु०	का०
९	+	गु०	का०
१०	+	गु०	का०
११	+	गु०	का०
१२	+	गु०	परप्राप्ति पूर्ववत्.
१३	+	गु०	पर प्राप्तव्य.
१४	+	गु०	कार्यप्राप्ति.
१५	अ०	+	प्रतीकभिन्नको ले जावे है.
१६	+	गु०	ब्रह्मप्राप्ति.
	६	१०	

देवयानमार्ग—निरूपणके अर्थ इस पादका आरंभ है. तहां ब्रह्मलोकप्राप्तिहेतुरूप मार्गमैं श्रुतिवचनोंका विवाद है. कहूं नाडीसंबंध रश्मिरूप मार्ग सुना है, कहूं अग्निआदिक मार्ग सुना है, कहूं विरज सुना है, ते मार्ग परस्पर भिन्न हैं? वा अनेक विशेषणवान् एक मार्ग है? जा संदेह प्राप्त हुएसैं कहे हैं:—

अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ॥ १ ॥

अर्चिरादिना । तत्प्रथितेः । इति प० ।

अर्थ-ब्रह्मलोकप्राप्तिकी इच्छावान् सर्व उपासक 'अर्चिरादिना' नाम अग्निआदिक एकही मार्गसें गमन करें हैं. 'तत्' नाम अर्चिरादि मार्गही पंचाग्निविद्यामें सगुणउपासकोंका 'प्रथितेः' नाम प्रसिद्ध सुना है. प्रकरणके भेदसें मार्गका भेद अंगीकार नहीं. सर्व मार्गद्वारा प्राप्तियोग्य ब्रह्मलोक एक है, यातें सर्वश्रुतिमें परस्परविशेषणयुक्त मार्ग एक प्रतीत होवे हैं । यातें ब्रह्मलोकप्राप्तिका हेतुरूप मार्ग सर्वका एक है. इति ॥ १ ॥

वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ॥ २ ॥

वायुम् । अब्दात् । अविशेषविशेषाभ्याम् । इति प० ।

अर्थ-"स एतं देवयानं पन्थानम् आपाद्य अग्निलोकम् आगच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकम्" यह कौषीतकिमें मार्ग कहा है. तिस तिस लोकको प्राप्त जो उपासक ताको तत् तत् लोकके स्वामी जे अग्निआदिक देवता ते लेजावे हैं यह श्रुतिका तात्पर्य है. छांदोग्यमें यह कहा है-"ते अर्चिषम् एव अभिसम्भवन्ति अर्चिषोऽह्नरऽह्न आपूर्यमाणपक्षम् आपूर्यमाणपक्षात् यान् षडुदङ्एतिमासान् तान्। मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरात् आदित्यम्" इति श्रुतिका अर्थ-सो उपासक देवयानमार्गको प्राप्त होकर प्रथम अग्निलोकको प्राप्त होवे है सो वायुलोकको, सो वरुणलोकको, सो इंद्रलोकको, सो प्रजापतिलोकको, सो ब्रह्मलोकको प्राप्त होवे है, यह कौषीतकिका अर्थ है । ते उपासक 'अर्चिषम्' नाम अग्निको प्राप्त होवे हैं. तासें दिनको, दिनसें शुक्लपक्षको, तासें उत्तरायण षट्मासको, तासें वरसको, वरससें आदित्यको प्राप्त होवे हैं, यह छांदोग्यश्रुतिका अर्थ है । उक्त उभयश्रुतिनमें अग्निलोक प्रथम ग्रहण किया है. अग्निके पीछे कौषीतकिमें वायुको सुना है. छांदोग्यमें सुना नहीं यातें छांदोग्यमें किसके पीछे वायुको मानना चाहिये यह तहां संदेह है? कौषीतकिमें अग्निके पीछे वायु सुना है, यातें छांदोग्यमें जो अग्निके पीछे वायु मानना चाहिये यह पूर्वपक्ष है, तहां यह सिद्धांत है. 'अब्दात्' नाम वरसके पीछे आदित्यसें पूर्व 'वायुम्' नाम पवनको उपासक प्राप्त होवे है "अविशेषविशेषाभ्याम्" यह तहां हेतु है. अविशेष

नाम कौषीतकिमैं वायु किसके पीछे है ? किसके पूर्व है ? यह विशेष प्रतीत होवे नहीं और बृहदारण्यकमैं विशेषता प्रतीत होवे है. तथाहि—"यदा वै पुरुषोऽस्मात् लोकात् प्रैति स वायुम् आगच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा रथचक्रस्य खं तेन स ऊर्ध्वम् आक्रमते स आदित्यम् आगच्छति" इति। अर्थ—पुरुष नाम उपासक यदा जा देहसें चले है तदा वायुको सो प्राप्त होवे है तिस उपासकको 'तत्र' नाम स्वआत्मामैं वायु 'विजिहीते" नाम छिद्र देवे है; यथा रथचक्रका आकाश छिद्र है 'तेन' नाम वायुकरके दिये हुए छिद्रकरके ऊपरको जावे है, ऊपर आदित्यको प्राप्त होवे है. इति। जा श्रुतिमैं 'तेन' इस पदसैं आदित्यप्राप्तिका हेतु जो वायु ताको आदित्यसैं पूर्व सुना है. यह पूर्वत्व विशेष प्रतीत होवे है, यातें आदित्यप्राप्तिका हेतु जो वायु ताको आदित्यसे पूर्व होनेकरके अग्निअनंतर वायुके पाठका बाध संभवे है. अत्र यह क्रम सिद्ध हुआ कि नाडीरश्मिप्रवेशअनंतर उपासक अग्निको प्राप्त होवे है. तासैं दिन, तासैं पक्ष, तासैं षट्मास, तासैं संवत्सरको प्राप्त होवे है. यह छांदोग्यक्रम है बृहदारण्यकमैं संवत्सरअनंतर देवलोकमैं प्रवेश करे है; तासैं वायु, तासैं आदित्य, तासैं चंद्र, तासैं विजलीलोकमैं प्रवेश करे है. इस क्रमके अनुसार सूत्रमैं जो वायुपद है सो देवलोकका उपलक्षक है. वरससैं अनंतर देवलोकसहित वायुको उपासक प्राप्त होवे है; यह सूत्रका तात्पर्य है. इति ॥ २ ॥

अव०—अग्निके अनंतर सुना जो वायु तिसका वरसके पीछे स्थान कहकर तहां कौषीतकिमैंही वायुसैं अनंतर सुने जे वरुणादिक तिनका अग्निआदिक मार्गमैं स्थान कहे हैं।

तडितोऽधि वरुणः सम्बन्धात् ॥ ३ ॥

तडितः। अधि। वरुणः। सम्बन्धात्। इति प०।

अर्थ—कौषीतकिवाक्यमैं सुना जो वरुण तिसका अग्निआदि मार्गमैं संबंध है वा नहीं ? जा संदेहके निषेधार्थ कहे हैं:—'तडितः' नाम विजलीके 'अधि' नाम ऊर्ध्व वरुणका संबंध है. जलोंका राजा जो वरुण ताका विद्युतसैं 'सम्बधात्' नाम सम्बन्ध है, यातें तडित्के ऊर्ध्व वरुणका सम्बन्ध है. वरुणसैं अनंतर इंद्रादिकोंका प्रवेश यथा कौषीतकिमैं कहा है तथाहि अंगीकार है, ताका कोई बाधक नहीं. सर्वका मिलकरके यह क्रम सिद्ध हुआ—अग्नि, दिन, पक्ष, षट्र मास,

संवत्सर, देवलोक, वायु, आदित्य, चंद्र, तडित्, वरुण, इंद्रलोक, प्रजापतिलोकसैं ब्रह्मलोकको उपासक प्राप्त होवे है. इति ॥ ३ ॥

अव०—क्रम कहकर स्वरूप कहे हैं—

आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात् ॥ ४ ॥

आतिवाहिकाः । तल्लिङ्गात् । इति प० ।

अर्थ—अग्निआदिक मार्गके चिह्न हैं ? वा उपासकोंकी भोगभूमि हैं ? वा उपासकोंको लेजानेवाले हैं ? जा संदेहसैं कहे हैं—ते अग्निआदिक कार्यब्रह्मको प्राप्त करनेवाले आतिवाहिक नाम लेजानेवाले हैं । "चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः । स एतान् ब्रह्म गमयति एष देवपथो ब्रह्मपथः" जा छांदोग्यके चतुर्थप्रपाठकगत श्रुतिमैं विजलीलोकमैं प्राप्त उपासकोंको "तल्लिङ्गात्' नाम अमानवपुरुषको लेजानेवाला सुना है. यथा अमानवपुरुष लेजानेवाला है तथा अग्निआदिकभी लेजानेवालेही माने चाहिये. गमनकालमैं उपासकोंके इंद्रिय लीन हुए हैं. इंद्रियोंविना भोग होवे नहीं, यातें अग्निआदिक भोगभूमि विशेष नहीं यातें अग्निअभिमानी जो देवता तिसको प्राप्त होकर तासैं दिनअभिमानी देवताको प्राप्त होवे है जाविध अंगीकार है. इति ॥ ४ ॥

उभयव्यामोहात्तत्सिद्धेः ॥ ५ ॥

उभयव्यामोहात् । तत्–सिद्धेः । इति प० ।

अर्थ—जो अग्निआदिक अचेतनरूप होवें तो उपासकभी देहरहित है, इंद्रियां ताकी लीन हैं, यातें 'उभय' नाम उपासक अग्नि उभयको 'व्यामोहात्' नाम चेतनारहित होनेसैं उपासकको कार्यब्रह्मप्राप्ति नहीं होवेगी. लोकमैंभी जो मूर्च्छित होवे है ताको प्रयत्नवान् चेतनही लेजावे हैं, याते प्रयत्नहीन चेतनको अपरचेतन प्रयत्नवान् लेजावे हैं जा युक्तिसहित "तत्पुरुषोऽमानवः" जा एकीकरणकरके उक्तलिंगसैं अग्निआदिक देवता "ततसिद्धेः" नाम आतिवाहिक सिद्ध होवेहैं, यातें 'अमानववत्' सर्वजगा लेजानेवाले चेतन हैं. इति ॥ ५ ॥

वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ॥ ६ ॥

वैद्युतेन । एव । ततः । तच्छ्रुतेः । इति प० ।

अर्थ—अमानवपुरुष एक ब्रह्मलोकसैं विजलीलोकमैं आवे हैं यातें ताकी संज्ञा वैद्युत है. तिस वैद्युतकरके 'तत्' नाम तिस विजलीलोकसैं ऊर्ध्वको उपासक जावे है. अर्थात् अमानव ब्रह्मलोकमैं ले जावेहै. 'तच्छ्रुतेः' नाम उत्तरश्रुतिमैं अमानवको लेजानेवाला सुना है. "आदित्यात् वैद्युतं तान् वैद्युतात् पुरुषोऽमानवः स एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः" जा बृहदारण्यकके अष्टम अध्यायगत श्रुतिमैं अमानवको लेजानेवाला कहा है. अग्निसैं लेकर विजली-पर्यंत अग्निआदिक लेजानेमैं प्रधान हैं, वरुणादिक प्रधान नहीं, यातें अग्नि-आदिक आतिवाहिक हैं. इति सिद्धम् ॥ ६ ॥

अव०—आगे फलको कहे हैंः—

कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः ॥ ७ ॥

कार्यम् । बादरिः । अस्य । गत्युपपत्तेः । इति प० ।

अर्थ—"स एतान् ब्रह्म गमयति" जा वाक्यमैं यह संशय है कि अमानव पुरुष उपासकोंको लेजाकर निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त करे है ? वा कार्यब्रह्मको प्राप्त करे है ? इति । इसका परिहार करे हैं—अमानव उपासकोंको 'कार्यम्' नाम सगुण ब्रह्मकी प्राप्ति करे है यह बादरिआचार्य माने हैं. 'अस्य' नाम इस कार्यपरिच्छिन्न ब्रह्मकीही गति नाम प्राप्ति "उपपत्तेः" नाम संभवे है; प्रत्यगूप व्यापक परब्रह्मकी प्राप्ति संभवे नहीं. इति ॥ ७ ॥

विशेषितत्वाच्च ॥ ८ ॥

विशेषितत्वात् । च । इति । प० ।

अर्थ—"ब्रह्मलोकान् गमयति" जा श्रुतिमैं गंतव्य ब्रह्मको 'ब्रह्मलोकान्' जा वचनसैं विशेषित नाम विशेषणयुक्त किया है. सावयवको अवयवके भेदसैं गंतव्य कहना संभवे है; परको गंतव्य कहना संभवे नहीं. इति ॥ ८ ॥

अव०—ननु नपुंसक ब्रह्मशब्द मुख्यताकरके परका वाचक है यातें कार्यताको वाचक मानके अमानव ब्रह्मको प्राप्त करे है यह कथन विरुद्ध हैः—जा शंकासैं कहे हैं.

सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ॥ ९ ॥

सामीप्यात् । तु । तद्—व्यपदेशः । इति । प० ।

अर्थ–'तु' पद पूर्वपक्षका निषेधक है. परही ब्रह्म सत्यकामत्वादि गुणयुक्त हुआ कार्यब्रह्म कहिये है, यातें कार्यको 'सामीप्यात्' नाम कारण परब्रह्मके नजीक होनेसैं मुख्यताकरके परब्रह्मवाचक 'तत्' नाम ब्रह्मपदका कार्यब्रह्ममैं लक्षणवृत्तिसैं व्यपदेश नाम प्रयोग है यातें शंका संभवे नहीं. इति ॥९॥

कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ॥१०॥

कार्यात्यये । तदध्यक्षेण । सह । अतः । परम् । अभिधानात् । इति । प० ।

अर्थ–कार्य नाम ब्रह्मलोकके 'अत्यये' नाम विनाश हुएसैं 'तदध्यक्षेण' नाम ब्रह्मलोकस्वामी हिरण्यगर्भके सह नाम युक्त 'अतः' नाम कार्यब्रह्मसैं पर निर्गुण ब्रह्मको उपासक प्राप्त होवे है, यह अर्थ "अभिधानात्" नाम "एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते" जा श्रुतिमैं कहा है. इति ॥ १० ॥

स्मृतेश्च ॥ ११ ॥

स्मृतेः । च । इति । प० ।

अर्थ–"ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्" यह स्मृतिभी ब्रह्मलोकमैं प्राप्तोंकी क्रममुक्ति दिखावे है, यातेंभी अनावृत्तिबोधक श्रुतिसैं अपुनरावृत्तिके विधानसैं कार्यब्रह्मको प्राप्तकी पुनरावृत्ति होवे नहीं । स्मृतिका अर्थ–'प्रतिसञ्चरे' नाम प्रलयकालमें ते नाम उपासक पर हिरण्यगर्भसहित ताके अंतमैं पर शुद्धपदको प्राप्त होवे हैं. इति । यातें कार्य ब्रह्मप्राप्तिअर्थ अग्निआदि मार्ग है, प्रत्यग्रूप परब्रह्मकी प्राप्तिअर्थ नहीं. इति ॥ ११ ॥

पूर्वपक्ष—

परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ॥ १२ ॥

परम् । जैमिनिः । मुख्यत्वात् । इति । प० ।

अर्थ–नपुंसक जो ब्रह्मपद सो परब्रह्मकाही मुख्यताकरके वाचक है यातें अमानवपुरुष उपासकोंको 'परम्' नाम निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति करे है, यह जैमिनिआचार्य माने हैं. इति ॥ १२ ॥

दर्शनाच्च ॥ १३ ॥

दर्शनात् । च । इति । प० ।

अर्थ—उपासकोंकी पुनरावृत्ति होवे नहीं । "शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः तासां मूर्द्धानम् अभिनिःसृता एका तया ऊर्ध्वम् आयन् अमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति" जा कठश्रुतिमैं मुक्तिको 'दर्शनात्' नाम गमनपूर्वक देखा है, यातें परही प्राप्ति योग्य है. इति । श्रुतिका अर्थ—एक अधिक शत हृदयकी नाडी हैं तिनके मध्यमैं मूर्द्धाको फोड़कर एक निकली है तिसकरके ऊपरको गमन करता हुआ अमृतत्वको प्राप्त होवेहै. तिस नाडीसैं भिन्न जेती नाडी हैं ते अनुपासक जीवोंके गमनमैं निमित्त हैं. इति ॥ १३ ॥

अव०—ननु मरणकालमैं उपासकका कार्यब्रह्मप्राप्तिविषे संकल्प सुना है, यातें पर गंतव्य नहीं, जा शंकासैं कहे हैं—

न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ॥ १४ ॥

न । च । कार्ये । प्रतिपत्त्यभिसन्धिः । इति प० ।

अर्थ—यह जो प्रतिपत्ति नाम प्राप्तिका अभिसंधि नाम संकल्प सो 'कार्ये' नाम कार्यब्रह्मविषयक नहीं किंतु परब्रह्मप्राप्तिविषयक है 'ते यत् अन्तरा तद् ब्रह्म' जा श्रुतिसैं परही प्रसंगमैं प्रतीत होवे है. इति ॥ १४ ॥

उक्त सूत्र त्रय पूर्वपक्षका समाधान पूर्वसूत्रोंसैं जानना चाहिये.

अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथाऽदोषात्तत्क्रतुश्च ॥ १५ ॥

अप्रतीकालम्बनान् । नयति । इति । बादरायणः । उभयथा । अदोषात् । तत्क्रतुः । च । इति प० ।

अर्थ—अमानवपुरुष सर्व उपासकोंको ब्रह्मलोकमैं प्राप्त करेहै? वा प्रतीक उपासकोंसैं भिन्न उपासकोंको प्राप्त करेहै? जा संदेहकी निवृत्तिके अर्थ कहें हैं—अमानव पुरुष 'अप्रतीकालम्बनात्' नाम प्रतीक उपासकोंसैं भिन्न उपासकोंको 'नयति' नाम ब्रह्मलोकमैं ले जावे है, यह बादरायण आचार्य माने हैं. ब्रह्मलोकमैं यद्यपि तृतीयाध्यायमैं सर्व उपासकोंका अनियम अंगीकार किया है,

यातें पूर्वउत्तरविरोध है, तथापि 'उभयथा' नाम कोई उपासकोंको ले जावे है कोई उपासकोंको नहीं लेजावे है, जाविध दोप्रकार अंगीकार कियेसैं अदोष है. पूर्व जो अनियम किया है सो प्रतीक उपासकोंसैं भिन्न उपासकोंका है. कार्यब्रह्मविषयक जो उपासना सो 'क्रतु' पदसैं अंगीकृत है. सो उपासना होवे जिसके सो 'तत् क्रतु' कहिये है. तिसको कार्यब्रह्मकी प्राप्ति होवेहै. प्रतीक उपासनामैं ब्रह्म प्रतीकका विशेषण है, यातें प्रतीकका प्राधान्य होनेसैं तत् उपासकोंको ब्रह्मउपासक कहना संभवे नहीं और पंचाग्नि-उपासकभी अब्रह्म-उपासक हैं. तोभी श्रुतिबलसैं तिनको ब्रह्मप्राप्ति होवेहै. इति ॥ १५ ॥

विशेषं च दर्शयति ॥ १६ ॥

विशेषम् । च । दर्शयति । इति प० ।

अर्थ-छांदोग्यमैं "नाम ब्रह्म इति उपासीत" यह कहकर आगे प्राण-पर्यंत अनेक ब्रह्म कहे हैं-तहां नाम प्रतीक उपासनाके फलसैं उत्तर उत्तर वाक्यादिक उपासनाका 'विशेषम्' नाम अधिक फल श्रुति दिखावे है, यातें ब्रह्मउपासकोंकोही ब्रह्मकी प्राप्ति होवे है; प्रतीक उपासकोंको नहीं. इति सिद्धम् १६

इति श्रीशारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थपादप्रारम्भः ।

सगुणविद्याके फलको कहकर निर्गुणब्रह्मविद्याकरके प्राप्यको कहे हैं । इस पादके दो अधिक वीस सूत्र हैं. तिनमैं सात अधिकरण हैं, पंचदश गुणरूप हैं. तथाहि—

सङ्ख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	प्रसङ्ग ।
१	अ०	+	मुक्तिविचार.
२	+	गु०	मु०
३	+	गु०	ज्योतिर्विचार.
४	अ०	+	मुक्तब्रह्मरूप.
५	अ०	+	मुक्तमैं गुणविधान.

६	+	गु०	तत्-निषेध.
७	+	गु०	उभयविचार.
८	अ०	+	संकल्पसैं फल.
९	+	गु०	सं०
१०	अ०	+	शरीरनिषेध.
११	+	गु०	शरीर-अंगीकार.
१२	+	गु०	उभयविधान.
१३	+	गु०	भोगविधान.
१४	+	गु०	भो०
१५	अ०	+	अपरदेहप्रवेश.
१६	+	गु०	शरीर-अंगीकार.
१७	अ०	+	ऐश्वर्य-अंगीकार.
१८	+	गु०	ऐ०
१९	+	गु०	जगद्रचनानिषेध.
२०	+	गु०	निर्गुणसिद्धि.
२१	+	गु०	भोगतुल्यता.
२२	+	गु०	अनावृत्तिविधान.
	७	१५	

इस पादका यह प्रथम सूत्र है।

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ १ ॥

सम्पद्य । आविर्भावः । स्वेन । शब्दात् । इति प० ।

अर्थ-"एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते" यह छांदोग्यमैं सुना है. श्रुतिका अर्थ पूर्व कर दिया है. इति। यथा धर्मकर्ता पुरुष अपरस्वरूप रूप फलको प्राप्त होवे है, तथा निर्गुणवेत्ताभी अपर फलको धारण करे है? वा केवल आत्मस्वरूपसैं स्थित होवे है? यह तहां संदेह है. ताकी निवृत्ति करे हैं—'सम्पद्य' नाम स्वप्रकाश

आत्माका साक्षात् अनुभव करके 'स्वेन' नाम तिसी आत्मस्वरूपमात्रसैं 'आविर्भावः' नाम मुक्त अवस्थित होवे है. 'स्वेन शब्दात्' यह तहां हेतु है. "स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते" जा श्रुतिमैं स्वशब्दका विधान किया है; यातें उक्त अर्थही अंगीकार है. इति ॥ १ ॥

अव०—स्वशब्दसैं पूर्व उत्तर स्वरूपमैं जो विशेष है सो कहे हैंः—

मुक्तः प्रतिज्ञानात् ॥ २ ॥

मुक्तः । प्रतिज्ञानात् । इति प० ।

अर्थ—जो स्वरूपसैं अवस्थित होवे है सो 'मुक्तः' नाम सर्व अनर्थरहित स्वप्रकाश परमानंदस्वरूप है. और पूर्व अवस्थात्रयकरके अनर्थभागी था यह पूर्वसैं विशेष है. 'प्रतिज्ञानात्' नाम सर्वदोषरहित आत्माकी तहां श्रुतिमैं व्याख्येयत्वरूपसैं प्रतिज्ञा करी है यातें सर्वदोषरहित मुक्त स्थित होवे है. इति ॥२॥

अव०—ननु ज्योतिकार्य विशेष है यातें ताको जो प्राप्त हुआ है सो मुक्त होवे नहीं जा शंकासैं कहे हैं—

आत्मप्रकरणात् ॥ ३ ॥

आत्मप्रकरणात् । इति प० ।

अर्थ—"परं ज्योतिरुपसम्पद्य" जा श्रुतिमैं ज्योतिसे आत्माका अंगीकार है. भौतिक ज्योतिका अंगीकार नहीं । "य आत्मा अपहतपाप्मा" जा श्रुतिमैं तहांही आत्माका प्रकरण है यातें ज्योति आत्मा है. इति ॥ ३ ॥

अविभागेन दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

अविभागेन । दृष्टत्वात् । इति प० ।

अर्थ— पूर्व जो मुक्त कहा है सो ब्रह्मसैं भिन्न स्थित होवे है? वा अभिन्न स्थित होवे है? जा संशयका परिहार करे हैं—मुक्त 'अविभागेन' नाम परमानंदरूप ब्रह्मस्वरूपसैं स्थित होवे है। 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति । तत्त्वमसि' इत्यादिक श्रुतिनमैं अभेद 'दृष्टत्वात्' नाम देखा है. इति ॥ ४ ॥

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ ५ ॥

ब्राह्मेण । जैमिनिः । उपन्यासादिभ्यः । इति प० ।

अर्थ—मुक्त सर्वज्ञतादिधर्मसहित स्थित होवे है? वा ततूरहित स्थित होवे है?

वा उभयरूपसैं स्थित होवे है? जा संदेहसैं पूर्वपक्षमैं यह अर्थ है. 'ब्राह्मेण' नाम ब्रह्मसंबंधी जे सर्वज्ञादिधर्म तिनसहित मुक्त पुरुष स्थित होवे, है यह जैमिनिआचार्य माने हैं. 'उपन्यासादिभ्यः' यह तहां हेतु है. आदिपदसैं विधि और व्यपदेशका ग्रहण है. उपन्यासपदसैं उपदेशका अंगीकार है. सो 'अन्वेष्टव्यः य आत्मा अपहतपाप्मा' इत्यादिरूप है। 'तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' इत्यादि विधिका अंगीकार है. उपदेशविधिसैं विलक्षण व्यपदेशका अंगीकार है. सो "सर्वज्ञः सर्वेश्वरः" इत्यादिरूप है. "ज्योतिरुपसम्पद्य" यह मुक्तबोधक वचन उपदेशविधि–व्यपदेशरूप नहीं यातें सर्वज्ञतादि प्रपंचसहित मुक्त स्थित होवे है. इति ॥ ५ ॥

द्वितीय पूर्वपक्ष कहे हैं—

चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ६ ॥

चिति। तन्मात्रेण। तदात्मकत्वात्। इति। औडुलोमिः। इति प०।

अर्थ–जीवात्माको 'तदात्मकत्वात्' नाम चिदेकरस होनेसैं 'तन्मात्रेण' नाम चैतन्यमात्ररूपसैं स्थित जो मुक्त तिस 'चिति' नाम ब्रह्मरूप मुक्तविषे यह सर्वज्ञ है इत्यादिक शब्दोंका अनर्थकही प्रयोग करे हैं. यह औडुलोमि आचार्य माने हैं. सर्वज्ञतादिक धर्मनको भिन्न मानें वा अभिन्न मानें उभयप्रकारसैं मुक्तके धर्म कहिना संभवे नहीं. इति ॥ ६ ॥

उभयपूर्वपक्षका समाधान करे हैं—

एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥ ७ ॥

एवम्। अपि। उपन्यासात्। पूर्वभावात्। अविरोधम्। बादरायणः। इति प०।

अर्थ–'एवम्' नाम पारमार्थिक चैतन्यमात्रस्वरूप अंगीकार कियेभी उपन्याससैं पूर्व निश्चित जो ब्रह्मका व्यावहरिक सर्वज्ञतादिमान् स्वरूप सो 'भावात्' विद्यमान है; यातें मुक्तरूप ब्रह्मके सप्रपंच निष्प्रपंच उभयरूप माननेमें भी विरोधका अभाव है, यह बादरायण आचार्य मानें हैं. अर्थात् सर्वज्ञतादिक उपाधिके धर्म हैं; यातें अविद्याकी निवृत्ति हुएपर विदेहकैवल्य निष्प्रपंचही है. इति ॥ ७ ॥

अव०–अपर विद्याका फल कहे हैं—

सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ॥ ८ ॥

सङ्कल्पात्। एव। तु। तत्-श्रुतेः। इति प०।

अर्थ-छांदोग्यके अष्टम प्रपाठकमैं यह सुना हैः—" स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते " इत्यादि विस्तारसैं कहकर खंडके अंतमैं यह कहा है-" यं यम् अन्तम् अभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते " इति। अर्थ-सो उपासक यदि पितृरूप लोककी कामनावान् होवे है अर्थात् पितरोंसैं संबंधकी इच्छावान् होवे है, तदा संकल्पमात्रसैं पितर प्राप्त होवे हैं. तिस पितृलोकभोगसैं ' सम्पन्न ' नाम इष्टप्राप्तिद्वारा पूज्य होवे है। जिस जिस प्रदेशकी इच्छावान् होवे है सो संकल्पमात्रसैं ताको प्राप्त होवे है तत्-द्वारा पूज्य होवे है. इति। तहां यह संदेह है कि ब्रह्मलोकमैं उपासकको भोगहेतु पित्रादिक संकल्पमात्रसैं प्राप्त होवे हैं? वा अपरप्रयत्नसहित संकल्पसैं प्राप्त होवे हैं? इति। ताकी निवृत्ति करे हैं-' सङ्कल्पात् एव ' नाम संकल्पमात्रसैंही उपासकको पित्रादिक विभूति प्राप्त होवे है. ' तत्-श्रुतेः ' नाम उक्त श्रुतिमैं संकल्पमात्रसैं अपर साधन विना पित्रादिकोंकी प्राप्ति सुनी है, यातें अपर साधनकी अपेक्षा नहीं. इति ॥ ८ ॥

अतएव चानन्याधिपतिः ॥ ९ ॥

अतः। एव। च। अनन्याधिपतिः। इति प०।

अर्थ-'अतः एव' नाम सत्यसंकल्पसैंही उपासक अनन्याधिपति होवे है अर्थात् ताका अपर कोई पति नहीं होवे है. जो ताका अपर कोई पति होवेगा तो तत्-अधीन भोग हुएसैं संकल्पमात्रसैं भोगकथन असंगत होवेगा, यातें ईश्वरस्वरूप उपासकको संकल्पसैंही सर्व ऐश्वर्य प्राप्त है. इति ॥ ९ ॥

अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ १० ॥

अभावम्। बादरिः। आह। हि। एवम्। इति प०।

अर्थ-" सङ्कल्पादेव " जा श्रुतिसैं उपासकोंके मन है यह निश्चित है परंतु शरीर इंद्रियां हैं वा नहीं? जा संदेहसैं कहे हैंः—यथा ' सङ्कल्पादेव '

जा श्रुतिसैं अपरसाधनका अभाव निश्चय किया है तथा शरीर इंद्रियोंकाभी अभाव है, यह वादरि आचार्य माने हैं। "मनसा एव एतान् कामान् पश्यन् रमते य एते ब्रह्मलोके" जा श्रुति शरीरइंद्रियोंका 'एवम्' नाम अभाव 'आह' नाम कहे है. जो उपासकके शरीरादिक होवें तो "मनसा एव" यह श्रुति अनर्थक होवेगी. इति ॥ १० ॥

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ ११ ॥

भावम् । जैमिनिः । विकल्पामननात् । इति प० ।

अर्थ-यथा उपासकके मन है तथा शरीर इंद्रियका 'भावम्' नाम सद्भाव है यह जैमिनिआचार्य माने हैं। "स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा भवति सप्तधा भवति नवधा चैव पुनश्चैकादश स्मृतः शतं च दश चैकं च सहस्राणि च विंशतिः" जा श्रुतिमैं उपासकके अनेक प्रकाररूपका विकल्प 'आमननात्' नाम अंगीकार किया है. शरीरके भेद विना उक्त विकल्प संभवे नहीं, यातें शरीरादिक हैं. इति। श्रुतिअर्थ-सो विद्वान् सृष्टिसैं पूर्व एकरूप हुआही त्रिधादिभेदसैं अर्थात् तेज, अप, अन्न, शब्द, स्पर्शादि अनंत भेदवान् होवे है. इति ॥ ११ ॥

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ १२ ॥

द्वादशाहवत् । उभयविधम् । बादरायणः । अतः । इति प० ।

अर्थ-'मनसा एव' जा श्रुतिसैं और 'एकधा भवति' जा विकल्पश्रुतिसैं यदा शरीरादिकोंका संकल्प होवे है तदा शरीरादिकोंको उपासक धारण करे है, यदा संकल्प नहीं होवे है तदा धारण नहीं करे है, जा 'उभयविधम्' नाम दो प्रकारका उपासकका ऐश्वर्य है, यह बादरायण आचार्य माने हैं. 'द्वादशाहवत्' यह तहां दृष्टांत है. द्वादशाहको सत्रत्व और तदभाव पूर्वमीमांसामैं प्रसिद्ध है. इति ॥ १२ ॥

अव०-ननु शरीरादिके अभावकालमैं भोग कैसे होगा? जा शंकासैं कहे हैं—

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपद्यते ॥ १३ ॥

तन्वभावे । सन्ध्यवत् । उपपद्यते । इति प० ।

अर्थ-तनु नाम इंद्रियोंसहित शरीरके 'अभावे' नाम अभावकालमैं 'सं-

ध्यवत्' नाम यथा स्वप्नमें मानसविषयका भोग जाग्रत्भोगसैं विलक्षण होवे है तथा उपासकको भोग होवे है. "मनसा एव" यह श्रुति उक्तविध मानेही 'उपपद्यते' नाम समीचीन होवे है. इति ॥ १३ ॥

अव०-ननु देहादिकों विना भोग मानेसैं शरीर मानना अनर्थक होगा? जा शंकासैं कहे हैं—

भावे जाग्रद्वत् ॥ १४ ॥

भावे। जाग्रद्वत्। इति प०।

अर्थ-'भावे' नाम देहादिक होवें तो 'जाग्रद्वत्' नाम जाग्रत्कालके समान भोग होवे है, सो स्वप्नभोगसैं विलक्षण है. इति ॥ १४ ॥

अव०-ननु विकल्प-श्रुतिके अनुसार अनेक शरीर माने हैं ते आत्मासैं रहित हैं. आत्माविना भोग होवे नहीं यातें शरीरोंका मानना अनर्थ है? जा शंकासैं कहे हैं—

प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति ॥ १५ ॥

प्रदीपवत्। आवेशः। तथाहि। दर्शयति। इति प०।

अर्थ-नवीन शरीरोंमैं आत्मा है वा नहीं? यह इसमैं संदेह है। अनादि अंतःकरणकरके भोक्ता परिच्छेदवान् है, यातें ताका अपर शरीरोंमैं प्रवेश संभवे नहीं, यातें ते शरीर आत्मासैं रहित हैं, यह पूर्वपक्ष है. तहां यह उत्तर है. नवीन देहादिकोंमैं उपासकका आवेश नाम प्रवेश उपासनाके सामर्थ्यसैं संभवे है. अनादि जो अंतःकरण है सो उपासककें प्रवेशमैं प्रतिबंध नहीं करसकता. यथा एक प्रदीप अनेक वत्तियोंमैं प्रवेश करे है तथा उपासक नवीन अंतःकरण-द्वारा सर्व शरीरोंमैं प्रवेश करे है. 'एकधा' यह श्रुति 'तथाहि' नाम तैसेही प्रवेशको 'दर्शयति' नाम दिखावे है. इति ॥ १५ ॥

अव०-ननु उपासकको शरीरवान् कहना युक्त नहीं। 'तत्केन कं पश्येत्' इत्यादिक श्रुति विशेष विज्ञानका अभाव बोधन करे है, जा शंकासैं कहे हैं—

स्वाप्ययसम्पत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ॥ १६ ॥

स्वाप्ययसम्पत्त्योः। अन्यतरापेक्षम्। आविष्कृतम्। हि। इति प०।

अर्थ-विशेष विज्ञानका जो तहां प्रसंगमैं अभाव सुना है, सो 'स्वाप्यय'

नाम सुषुप्तिकी और सम्पत्ति नाम मुक्तिकी 'अपेक्षम्' नाम अपेक्षासैं सुना है. यह उक्त अर्थ प्रकरणसैं 'आविष्कृतम्' नाम निश्चित है, यातें उक्त श्रुति सगुण उपासकके शरीर—अंगीकारमैं बाधक नहीं. इति ॥ १६ ॥

जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ॥ १७ ॥

जगद्व्यापारवर्जम् । प्रकरणात् । असन्निहितत्वात् । च । इति प० ।

अर्थ—पूर्व उपासकका जो ऐश्वर्य कहा है सो ईश्वरवत् निरंकुश है वा सांकुश है? यह तहां संशय है. उपासकका अपर कोई अधिपति नहीं यातें ताका निरंकुश ऐश्वर्य है, यह पूर्वपक्ष है. इसका ईश्वरनानात्व फल है, सिद्धांतमैं एक ईश्वर फल है, यह सिद्धांत है. 'जगद्व्यापार' नाम जगत्‌की उत्पत्तिआदिकसैं 'वर्जम्' नाम विना उपासकका अणिमादि ऐश्वर्य सांकुश है. जगद्रचनाव्यापार परमेश्वरका है, उपासकका नहीं. जहां जहां उत्पत्तिबोधक वाक्य हैं तहां तहां सर्व जगा 'प्रकरणात्' नाम परमेश्वरकाही प्रकरण है और 'असन्निहितत्वात्' नाम तहां समीप उपासकका प्रसंग नहीं यातें नित्यसिद्ध परमेश्वरकाही निरंकुश ऐश्वर्य है. जो ईश्वरकृपासैं प्राप्त हुआ है ताको निरंकुश कहना संभवे नहीं. इति ॥ १७ ॥

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिमण्डलस्थोक्तेः ॥१८॥

प्रत्यक्षोपदेशात् । इति । चेत् । न । आधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः । इति प० ।

अर्थ—ननु 'आप्नोति स्वाराज्यम्' जा प्रत्यक्ष नाम श्रुतिसैं ऐश्वर्यका उपदेश किया है यातें उपासकका ऐश्वर्य निरंकुश है, 'इति चेत्' नाम उक्त शंका करें तो असंगत है. तथाहि—स्वस्वव्यापारमैं जो सूर्यादिकोंको जोड़े सो आधिकारिक अंगीकार है, अर्थात् परमात्माका ग्रहण है; सो मंडलस्थ नाम सूर्यादिमंडलमैं स्थित है, तिसका "आप्नोति मनसस्पतिम्" जा उत्तरवाक्यमैं 'उक्तेः' नाम कथन है, यातें उपासकका ऐश्वर्य सांकुश है, यह निश्चित है. इति ॥ १७ ॥

विकारावर्ति च तथाहि स्थितिमाह ॥ १९ ॥

विकारावर्ति । च । तथाहि । स्थितिम् । आह । इति प० ।

अर्थ–सगुण ब्रह्मस्वरूपमें विकारावर्ति नाम निर्गुणस्वरूपभी स्थित है. तथाहि–" एतावानस्य महिमा " यह श्रुति सगुणको कहकर " अतो ज्यायांश्च पुरुषः" यह निर्गुणको कहे हैं यातें उक्त श्रुतियां ब्रह्ममैं सगुणत्व और निर्गुणत्वकी स्थितिको 'आह' नाम कहे है. तात्पर्य यह है–यथा सगुणमैं स्थित निर्गुणस्वरूपको उपासक प्राप्त होवे नहीं तथा तद्गत जे जगद्रचना कर्तृत्वादिक धर्म तिनकोभी प्राप्त होवे नहीं. तिन धर्मनकी उपासना नहीं करी यातें तिनको प्राप्त होवे नहीं. इति ॥ १९ ॥

अव०–निर्गुणमैं अपर प्रमाण कहे हैं—

दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ॥ २० ॥

दर्शयतः । च । एवम् । प्रत्यक्षानुमाने । इति । प० ।

अर्थ–ब्रह्ममें निर्गुणत्वको प्रत्यक्ष नाम श्रुति, अनुमान नाम स्मृति दिखावे हैं:—' न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम् ' यह श्रुति और 'न तद्भासयते सूर्यः ' यह स्मृति ये दोनों निर्गुणत्वबोधक हैं. ॥ २० ॥

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ॥ २१ ॥

भोगमात्रसाम्यलिङ्गात् । च । इति प० ।

अर्थ–' तमाहापो वै खलु मीयन्ते लोकोऽसौ ' इति । जा श्रुतिमैं उपासकका भोगमात्र उपास्यके साम्य नाम तुल्य सुना है, जगत्–व्यापारमैं तुल्यता नहीं सुनी यातें ' लिङ्गात् ' नाम उक्त साम्यतारूप लिंगसैं उपासकका ऐश्वर्य सातिशय प्रतीत होवे है । श्रुत्यर्थ–ब्रह्मलोकमैं ब्रह्मपर्यंकगत उपासकको ब्रह्मा कहे है–यह जलप्रधान पंचीकृत पंचमहाभूत कार्यसहित हमारे हैं, यातें जलमय अनेक कोटि योजन विस्तारवान् सर्वसुखभूमि यह प्रत्यक्ष सर्वद्रष्टा मम हिरण्यगर्भका निवासस्थान तुम्हारा भी हो, यह श्रुतिका तात्पर्य है. इति ॥ २१ ॥

अव०–ननु उपासकके ऐश्वर्य सांकुश माननेसैं सो लौकिक ' ऐश्वर्यवत् ' अनित्य सिद्ध होवेगा यातें उपासककी पुनरावृत्ति होवेगी. भगवान् सूत्रकार कृपालु बादरायण जा शंकाका समाधान करे हैं:—

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ २२ ॥

अनावृत्तिः । शब्दात् । अनावृत्तिः । शब्दात् । इति प० ।

अर्थ–जे अग्निआदिक मार्गसैं ब्रह्मलोकमैं प्राप्त हुए हैं तिनकी अनावृत्ति नाम पुनरावृत्ति होवे नहीं; 'शब्दात्' नाम 'न च पुनरावृत्तिर्न च पुनरावृत्तिः' इत्यादिक शब्द तिनकी पुनरावृत्तिका निषेध करे हैं यातें सो फिरकर आवे नहीं और जे निर्गुणब्रह्मके वेत्ता हैं तिनकी पुनरावृत्तिकी शंकाही नहीं. सगुणवेत्ताकी जो निर्गुणको आश्रय करकेही अनावृत्ति है तो निर्गुणवेत्ताकी पुनरावृत्ति कैसे होवेगी, यातें ब्रह्मवेत्ता पुरुष अनर्थसैं रहित हुए परमानंद परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूपसैं स्थित होवे है. सूत्रमैं द्वितीय 'शब्दादनावृत्तिः' यह पद शास्त्रकी समाप्तिके अर्थ है. इति ॥ २२ ॥

इति श्रीशारीरकसूत्रभावप्रकाशिकाभाषाटीकायां चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ शुभमस्तु ॥ श्रीरामाय नमो नमः ॥

पादसङ्ख्या ।	अधिकरण ।	गुण ।	पादसूत्रसङ्ख्या ।
१	११	२०	३१
२	७	२५	३२
३	१३	३०	४३
४	८	२०	२८
५	१३	२४	३७
६	८	३७	४५
७	१७	३६	५३
८	९	१३	२२
९	६	२१	२७
१०	८	३३	४१
११	३६	३०	६६
१२	१७	३५	५२
१३	१४	५	१९
१४	११	१०	२१
१५	६	१०	१६
१६	७	१५	२२

अध्यायसङ्ख्या ।	अ०	गु०	अध्यायसूत्रसङ्ख्या ।
१	३९	९४	१३३
२	४७	११०	१५७
३	६७	११९	१८६
४	३८	४०	७८

सर्वअधिकरण ।	सर्वगुण ।	सर्वसूत्रसङ्ख्या.
१९१	३६३	५५४

दोहा—चार खण्ड करि सूत्रकृत, कीन निरूपण जासु ।
सूत्रकार तिस वंदना, वंदन पुनि पुनि तासु ॥ १ ॥

इति भिक्षुकृता सूत्रभावार्थप्रकाशिका भाषाटीका समाप्ता ।

श्रीरामचन्द्राय नमो नमः ।